भूमिका.

इस चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हुए अनंता-काल जीवों को हुवा. परन्तु इच्छ कार्य की सिद्धी नहीं हुई. अर्थात् शारीरिक मानसिक दुःखों से छुटकारा नहीं हुवा. इन दुःखों से जब छूटेगा कि जब मोक्ष में दाखिल होगा. मोक्ष में दाखिल होने के लिये चार कारण मिलने चाहिये. यह चार कारण भगवन्त ने उत्तराध्ययन अध्ययन तीसरा में मिलने दुर्लभ फरमाये हैं. एक तो मनुष्य का भव, दूसरा सूत्र का सुनना, तीसरा श्रद्धा प्रतीति का आना. चौथा संयम में वीर्य पराक्रम का फोड़ना. सो हे भाइयो! इन चार कारणों में तीसरा कारण श्रद्धा प्रतीति का आना बहुत ही दुर्लभ श्री सूत्र में फरमाया है जैसे कि (सध्दा परम दुल्लहा) इति वचनात्. देखिये श्रद्धा आनी इसलिये दुर्लभ है कि बहुत से मनुष्य पाखंड में पड़ जाते हैं इस पंचम काल में कई मत मतांतर जैन मत में निकले हैं वे कई तरह की प्ररूपणा भगवन्त के नाम से उलटी कर रहे हैं उनके मत की और सच्चे मार्ग की तलाश जरूर करना चाहिए क्योंकि सत असत का जानकार होगा वही सत्य को धारण करेगा तथा असत को त्यागेगा, इस सत असत का जानपणा होने के लिये और जो ३२ सूत्र दास की तरफ से ७ प्रश्न जो पछिये थे पूछे उन्होंने झूठे उत्तर दी पुस्तके तरांई उस झूठ के प्रगट करने के लिये इस पुस्तक को बहुत ही परिश्रम करके साधु पंडित नाथूराम जी

गुदड़मलालजी का बनाया हुआ इस पुस्तक का कच्चा खरड़ा था उन्होंने परठा उससे नवाशहर के भाइयों ने तयार कराया है परठने का हाल प्रस्तावना में लिखा है वहां से ज्ञात हो जायगा. इस विषय की दो पुस्तकें अगाड़ी भी जैन भीनासर की तरफ से प्रसिद्ध हो चुकी हैं परन्तु इस में से बहुत ही ज्यादा करके विस्तार सहित उत्तर समझाया क्योंकि महाराज श्री तेरेपंथियों के मत के पूरे जानकार हैं और स्वमत तथा परमत के भी पूरे ज्ञाता हैं इसलिये इस पुस्तक की प्रशंसा कहां तक की जावे. पुस्तक देखने से स्वयं हो जायगा यह पुस्तक मेरे को सुश्रावक श्री मेघराजजी नवाशहर वालों के पास से प्राप्त हुई इसलिये उनको धन्यवाद देता हूं. और यह पुस्तक कहीं २ अधूरी थी जिसको मैंने महाराज साहब का परठा हुवा खरड़ा नवाशहर से मंगाकर संपूर्ण करली है तारम भी कोई २ बात खरड़े में नहीं मिली जिसको मैंने अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार लिखि है भूल हुई हो तो (मिच्छामि दुक्कडं) देता हूं.

और इस पुस्तक का छपाने का मतलब सिर्फ यह है कि इसको देखकर सत्य मार्ग की ओलखाण हो और मिथ्या की शंका हो वह निवर्तन हो, फक्त इसके लिये यह उद्यम किया है. किंतु रागद्वेष बढ़ाने के लिये नहीं क्योंकि वीतराग का मार्ग ही रागद्वेष हटाने का है. सो पाठकों से निवेदन है कि रागद्वेष पक्षपात छोड़ करके अवलोकन करोगे तो बहुत ही गुण का कारण होगा और हित का करने हुए भी दुःख रूप होवे तो उसका उपाय ही क्या है. तादृप भी जिसको

दिल दुखे उससे क्षमाता हूं; समदृष्टि का लक्षण यही है. इस पुस्तक के लिखने में भीनासर स्कूल के हिन्दी मास्टर श्रीयुत पं० कालिकाप्रसादजी शर्मा ने सहायता दी इसलिये उनको धन्यवाद देता हूं।

भीनासर
१५-११-१५

श्रीसंघका हितेच्छु—
कनीराम बांठिया

इस पुस्तक को जयणा सहित पढ़े, दीपक के उजाले में नहीं पढ़े. इस पुस्तक के प्रूफ सुधारने में भूल हुई हो तो मिच्छामि दुक्कडं।

प्रसिद्धकर्ता.

ॐ नमः सिद्धम् ॥ ॐ जिनाय नमः ॐ अर्हते नमः ॥

अथ प्रश्नोत्तर प्रदीपिका ग्रंथस्य प्रस्तावना प्रारम्भः

विदित हो कि संप्रतिकाल में बहुत लोग प्राचीन श्रीमान् वर्द्धमान् स्वामी सुधर्म स्वामी के रचे हुए सत्यागम का रहस्य यथावत् न जानके विपरीत दृष्टि से शुद्ध सरल अर्थ छोड़ के मिथ्यार्थ की कल्पना कर भोले लोगों के हृदय में मिथ्या कल्पना प्रवेश कर देते हैं. इससे बहुत भोले भाई उन लोगों के पक्षपात में ऐसे बंध जाते हैं कि वह सत्यासत्य का कुछ भी निर्णय नहीं करते हैं केवल उपदेशक के कथन को ही सत्य मान लेते हैं. न वह किसी जैनग्रन्थ सिद्धांत के ज्ञाता न्यायवादी के सन्मुख हो कर ही सत्यासत्य निर्णय करते हैं उन्हीं सर्व मित्रों के लिये यह सूचना है तथा प्रार्थना है कि हे प्रिय मित्रों! तुम पक्षपात छोड कर श्रीमान् वर्द्धमान् स्वामी के वचनों को यथार्थ भाव से श्रद्धायुक्त मान्य करो इसमें ही तुम्हारी आत्मा का हित है. इन प्रवचन सिद्धांत की यथावत् श्रद्धा उपरांत अधिक कोई लाभ नहीं है और इन अरिहंत देव प्रणीतागम का मिथ्याभाषण करने के बराबर अधिक कोई पाप नहीं है इससे ही सर्व भव्य पुरुषों को यह सूचना है कि सत्यासत्य को विना निर्णय किये अपने मन कल्पित अर्थ जैन सिद्धांत का करना अत्यन्त दूषित कर्म है और संसार में जैन धर्म की अवनति का कारण है और जिससे अन्यधर्मावलम्बी पुरुषों को भी इस जैन धर्म की उपहास्यता, घृणा,

निंदा करने का अवसर प्राप्त हो सका है कहिये ये कितना अधर्म है. और अत्यन्त संसार वृद्धि करने का कारण है इस समस्त वार्ता को ध्यान में रखकर सर्व भव्य जनों को असत्य शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए, यह सुवचन परमहितकारक है. विशेष करके इस सूचना का प्रयोजन यह है कि इस पंचम काल में संवत् १८१५ विक्रमी में बाइस समुदाय की एक समुदाय के श्री पूज्य रघुनाथ जी स्वामी के शिष्य भीषमजी की ऐसी श्रद्धा हुई कि मरते जीव को बचाने में पाप है तथा गरीब दुखी भूखे को करुणा भाव से दान में एकांत पाप है जब गुरुजी ने शिष्य भीषम जी की यह श्रद्धा समझी तब उनको उपदेश दे समझाया परंतु भीषम जी ने श्रद्धा गुरु जी की वह हित शिक्षा न मानी. तब रघुनाथजी स्वामी ने उनको अपने गच्छ से अलग कर दिया गच्छ से निकलने के पश्चात् एक नवीन तेरापंथी मत निर्माण किया. मरते हुए जीव को बचाने में एकांत पाप होता है १ तथा साधू के सिवाय अन्य किसी को दान देने में भी एकांत पाप होता है ऐसी २ बातों की प्ररूपणा जैन सिद्धांत के विरुद्ध मनके मते कर करने लगा. और श्रीमन्महावीर स्वामी ही को छद्मस्थ पन में चूका कहने लगे जिनका कि यह जैन शासन चतुर्विध संघ प्रचलित है उन परमेश्वर को चूका कहा इनके उपरांत अनेक बोलों को सिद्धांत विरुद्ध प्ररूपण कर भोले लोगों के हृदय में अपने कपोलकल्पित मत की श्रद्धा स्थापन करने लगे. जिससे कि अनेक सीधे सादे भोले जीव उनके मतानुयायी बने. अबतक तो इनके मत की प्ररूपणा हस्त लिखित पुस्तकादि से होती रही तत्पश्चात् जब भीषमजी

के चौथे पाट पर जीतमलजी तेरह पंथियों के पूज्य हुवे उन्हों ने भ्रम विध्वंसन नाम ग्रन्थ रचा और भी कई ग्रन्थ स्वकपोल कल्पित रचे गये. उनमें भ्रम विध्वंसन नाम ग्रंथ छप कर प्रगट हुवा है और भी कई ग्रंथ रचे गए हैं अब एक वार के प्रस्ताव संवत् १९५८ में श्री श्री श्री तपस्वी हुकमीचंदजी महाराज के सम्प्रदाय के श्री श्री श्री लालजी महाराज के सम्प्रदाय के आज्ञानुसारी स्वामी श्री मोतीलालजी जुवारीलालजी ने चातुर्मास्य राजपूताना-जोधपुर में किया था वहां ही पर उक्त जीतमलजी रचित भ्रम विध्वंसन ग्रंथ स्वामीजी जुवारीलालजी के दृष्टिगोचर हुवा.

उस ग्रंथ की रचना देखकर स्वामीजी सोचने लगे कि आश्चर्य है कि जीतमलजी ने जैन सिद्धांत के सत्यार्थ को उलट पलट कर दया को काटने ही के लिये इतनी चेष्टा क्यों की. ग्रंथ देखकर विचारने लगे कि ऐसे दयारहित ग्रंथको जो कोई सम्पूर्णतया सत्य मानता होवे उस से इस विषय में अवश्य कुछ प्रश्न करने चाहिए. इत्तफाक उसवक्त जोधपुर में तेरह पंथियों के पूज्य डालचंदजी का भी चातुर्मास्य यहांपर था तब स्वामिजी श्री जवाहरलालजी ने अपने बाईस समुदाय के श्रावकों को कहा कि यदि तेरह पंथियों के पूज्य डालचंदजी अपना मतका भ्रम विध्वसनग्रंथ के चंद सवालों का उत्तर देवें तो हम उन से चर्चा यानी शास्त्रार्थ करने को तय्यार हैं तब हम भी इन संप्रदायके श्रावकों ने सोचा कि अपना निर्मल दयामयी जैनधर्म से विरुद्ध भ्रम विध्वसनादिक ग्रंथ रचे. और अब यह छपके प्रसिद्ध होने से अपना दयामय धर्मरूप चंद्रको

भ्रमविध्वंसनादि ग्रंथ राहूरूप निर्मल धर्म को ग्रसने वाले प्र-
कट हुये हैं तो इनके ग्रसने से धर्म रूप चंद्र तो ग्रसनहीं सक्ता
परंतु कितनेक जैनदर्शन से अन्यदर्शन वाले या स्वदर्शनी
जैनी भोले भाइयों को यह ग्रंथ देखने से भ्रमउत्पन्न होवेगा.
तो जरूर तेरह पंथियों के पूज्य से उनके भ्रमविध्वंसन ग्रंथके
चंद सवाल पूछने चाहिए ऐसा विचार के हम श्रावक लोगों
नें स्वामीजी श्री जुवारीलालजी से सात प्रश्न धारन करके प
क इश्तहार यानी (नोटिस) प्रगट किया वो यह है ॥

बाइस समुदाय के श्रावकों को प्रश्न लिखा कि इनप्रश्नों
के उत्तर सविस्तर सूत्रार्थ के पाठ साहत तुम्हारे पूज्यजी से पूछ
करके लिखो-प्रश्न ७ निम्नलिखित है.

१-श्रीमन्महावीर भगवंत को दीक्षा लेने के अन्तर छद्म
स्थपन में चूके बतलाते हो सो पाठ दिखलाओ ?

२-साधुके सिवाय दान में एकान्त पाप कहते हो सो पाठ
दिखलाओ ?

३-४२ दूषण टाल अहार के भोगी प्रतिमाधारी उत्कृष्ट
श्रावक तपस्वी को ४२ दूषणटाल कर देने वाले को एकान्त
पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ?

४-साधुजी महाराजको किसी दुष्टने फांसी दी दयावान
ने धर्म बुद्धि से खोलदी, तुम उन दोनों को पाप कहते हो औ
र अठेते हो सो पाठ दिखलाओ ?

५-गायों से बाड़ा भराहुवा है जिसमें किसी दुष्टने लाय
लगादी किसी दयावान ने किवाड़ खोल बाहिर निकालदी

और गाएं बचगई. तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ?

६–असंजती पोसणिया १५ वां कर्मदान कहते हो और सिखलाते हो सो पाठ दिखलाओ ?

७–असंयती का जीवना नहीं वांछना कहते हो सो पाठ दिखलाओ

इन प्रश्नों के उत्तर जल्दी लिखो वाकी बहुत प्रश्न हैं ॥

तुम्हारा मत अर्थात भीखमजी का चलाया मत सूत्र विरुद्ध जैन सिद्धांतों से प्रगट दीखता है सो तुम्हारे पूज्यजी न्याय से चर्चा यानी शास्त्रार्थ करें तो हमारे साधुजी महाराज चर्चा करने को तैयार हैं. स्थान तीसरा और निष्पक्ष विवेकी समझदार तीसरे मतके मध्यस्थ मजिज मुकर्रर होवे ताकि गलवा न हो सके चर्चा जरूर होनी चाहिये. ॥ १ हफ्ते की मियाद दी जाती है क्योंकि चउमासे के दिन थोड़े रहे हैं जो इस मोकेपर चर्चा तुम्हारे पूज्यजी नहीं करेंगे तो हमलोग तो समझते ही हैं फिर और सब लोग भी तुम्हारे को झूठा समझेंगे ॥ संवत् १९५८ कार्तिक सुदी २

२२ सम्प्रदाय की तर्फ से
मुणोत अमरदास भंडारी किसनमल

यह ऊपर लिखित इश्तहार हम श्रावक लोगों ने छपवा के वांटे और कई एक इश्तिहार प्रगट करने के लिये दीवालों (भींतों) पर चिपका दियेगये और एक इश्तिहार २२ संप्रदाय के श्रावक फतेराजजी मूथा तेरेपंथियों के श्रावकों को

देवेंगे. परंतु उन तेरापंथियों के श्रावकों ने फतेराजजी से तो वह इश्तिहार नहीं लिया—और एक भीतसे उखाड़ लाये और उस इश्तिहार को बांच के प्रश्नों के उत्तर तो नहीं लिखे और लोगों को दिखलाने रूप एक पत्र लिख के कितनेक तेरापंथि श्रावक मिलके पत्र लेके भायाकी हवेली कि जहां पे स्वामी श्री मोतीलालजी जुहारीलालजी थे वहां पर आये और अपना लिखा हुआ पत्र श्रावक लोगों को सोंप गए वह पत्र यह है जैसा उन्होंने योग्य वा अयोग्य लिखा है वैसा अक्षर हम यहां पर लिखते हैं— ॥

श्रीजिनराजो जयति ॥

तेरह पंथी समुदाय श्रावकों को संवेगी बाईस टोले के श्रावकों को इत्तिला दीजाती है कि तुम लोगोंने भोले अनजान लोगों को बहकाने और अपनी बड़ाई दिखलाने के लिये जो अनुचित और असम्बद्ध नाम प्रश्नों का इश्तिहार प्रगट किया उसका उत्तर यदि तुमको चाहिये था तो वह इश्तिहार हमारे पास ले आनाथा सो हम लोगों के पास न आकर चुपके से दूसरे लोगों के मकानों पर चिपका दिया परंतु हमारे किसी मित्रने इस इश्तिहार को हम लोगों के संबन्धि जानकर भीत पर से उखाड़ करके हम को लाकर दिखलाया सो हम लोगों ने परमपूज्य महाराजाधिराज से निवेदन किया तब श्री महाराज ने आज्ञा दी कि इन प्रश्नों का उत्तर तो हम ग्राम [illegible] [illegible] इस इश्तिहार [illegible] [illegible]

फिरभी इनको वारंवार चर्चा चर्चा ऐसा कहने की जगह न रहे ॥ १ हफ्ते की मियाद लिखी सो हमतो कल परसों जव इनकी इच्छा होवे तभी तैयार हैं मियाद वह चाहता है जो उत्तर देने में असमर्थ हो ॥ और तीसरे मनुष्य के मकान पर तीसरे मत के निष्पक्ष मोजिब मध्यस्थ मुकर्रर होने की भी लिखी सो बहुत ठीक है हम श्रावक लोग तुम्हारी सभी शर्तों के लिये मंजूरी देते हैं ॥ मकान उदेमंदिर की ओर मध्यस्थ स्वामीजी गणेशपुरीजी कविराजाजी श्रीमुरारीदानजी भंडारीजी श्रीहणवंतचंदजी और इनके सिवाय और भी जो कोई जैनशास्त्र का अभिज्ञ निपक्ष हो किया जावे ॥ तुम्हारे साधूजी को चर्चा करनी होतो वे शीघ्र करें क्योंकि चातुर्मास्य के दिन बहुत अल्प रह गये है ॥ और श्रीभगवंत महावीर स्वामी के भाषे हुए सूत्र सिद्धांत के अनुसार इस दुःखम पंचम कालमें यथार्थ धर्मका उपदेश करने वाले परमपूज्य महामुनि श्रीस्वामी भीषमजी महाराज के कथन को विना विचारे एकाएक जैन सिद्धांतों से विरुद्ध लिखने से तुम्हारी तुच्छता पाई जाती है और तुम्हारे लेख से यहभी पाया जाता है कि तुम्हारी मनसा फसाद करने की है इसलिये तुमको लिखा जाता है कि चर्चा के लिये जो दिन नियत करो उसके पहिले हमको इत्तिला दो के मलवा न होने का बंदोवस्त मुनासिब कराया जावे ॥ संवत् १९५९ रा कार्तिक सुदी ६ गुरुवासरे ॥

द० भंडारी किसनमल ॥

यह पत्र हम बाईस संप्रदाय के श्रावकों को देके ऐसा कहगए कि जैसा मुनासिब होवे वैसाही इसका उत्तर हमको

लिखके भेजदेना- तब यह पत्र हम बाईस संप्रदाय के श्रावकों को पढ़ने से बड़ा आश्चर्य हुवा कि हमने जो प्रश्नों का इश्तिहार प्रकाशित किया वह सर्व प्रश्न उनके ग्रंथ भ्रमविध्वंसन में मौजूद है और हमारे गुरुजी ने उस ग्रंथसे उधारके अर्थात् निकाल के ही हमको धराये हैं तो फिर हमारे तेरेपंथी भोले मित्रों ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि अनुचित और असंबद्ध सात प्रश्नों का इश्तिहार प्रगट किया क्या इन मित्रों ने अपना परम पूज्य जी का बनाया भ्रमविध्वसन नहीं पढ़ा शायद भ्रमविध्वंसन को बांचा तो होगा परंतु अब फांसी से साधूको बचाने में पाप-और मरती गायों को बचाने में पाप ऐसी दयारहित अपनी गुरुजी की श्रद्धा लिखसे लज्जायुक्त हो के लिखदिया होवे कि यह प्रश्न अनुचित और असंबद्ध है तो उन प्रिय मित्रों को विचारना था कि अपने गुरुजी की श्रद्धा पुस्तकों में छपगई वो छानी कैसे रहै सकै-और फिर हम यह सोचने लगे कि हमारे तेरेपंथी मित्रों को अपने गुरुजी की श्रद्धा अनुचित और असंबद्ध मालूम हुई होवे तो फिर हमारे प्रियमित्रों को क्या स्वार्थ है कि जो ऐसी अनुचित और असंबद्ध श्रद्धा में बंधे हुये हैं और अपने गुरु भीषमजी को श्रीभगवान् महावीर स्वामी के भांप शास्त्रों के यथार्थ भापणे वाले कहते हो तो फिर श्रीमान महावीर स्वामी को भीषमजी चूके क्यों कहे या श्री भगवान् का सत्यशास्त्र कि जिसमें जीव बचाने में धर्म है ऐसे सत्यशास्त्र से उलटीप्ररूपणा क्यों करी कि जीव बचाने में पाप है परंतु खेर अब यह चर्चा होवेगी तो सत्यासत्य का यथार्थ मालूम हो जावेगा ऐसा विचार के एक पत्रा हम श्रावक

लोगों ने लिख के मोतीराम अमरदासजी पड्या चतुरनाथजी आदि अनेक श्रावक लोग मिलके भंडारी किसनमलजी की हवेली पर गये कि जहां इनके पूज्य जी उतरे हुवे थे इनके पूज्य जी को वह पत्र सुनाके इनके श्रावक कृष्णमलजी आदि को दिया.

नोट-१-इस पत्र की असली नकल नहीं मिलने से नहीं छपासके प्र-कर्ता.

पत्र दे इनको अमरदासजी ने कहा कि एक मकान आपने ढूंढ मंदिर के वास्ते कहा वह ठीक नहीं है क्योंकि जोधपुर में चर्चा मकान की लंबाई है सो ढूंढमंदिर में जावे और फिर ढूंढ मंदिर दूर भी बहुत है और चर्चा का मामला है एक दिन दो दिन चार दिन तक भी होवे तो प्रति दिन संवों को और सभा मध्यस्थों को आने जाने में बहुत देर लगे और संवों को पुस्तके वोक के ले जाने लाने की भी तकलीफ होवे इस वास्ते जोधपुर में आवा की हवेली या न्यात का नोहरा या और कोई नजीक पर ठीक मकान होवे सो विचार के कहो और गणेशपुरीजी को आपने मध्यस्थ ठहरावे सो वह आपके तरफदार होने से हमको मध्यस्थ मालुम नहीं होते हैं बाकी मध्यस्थ आपने लिखे वह मंजूर हैं और हमारी तर्फ से आप के लिखे मुजब जैन शास्त्र के अभिज्ञों में जो मुंशी साहब श्री मुरारमलजी महाविजे जी और दोनों तर्फ न्याय को तोलने में कविराजा जी श्री मुरारिदानजी इनको हम ने मध्यस्थ मुकर्रर किये हैं अब मकान नजीक का विचार कर कहो जो चर्चा का दिन मुकर्रर किया जावे जिसमें तेर·

पंथी श्रावक भंडारी कृष्णमलजी आदि कहने लगे कि हमारी तरफ से गणेशपुरीजी तो मध्यस्थों में मुकर्रर रहेंगे. और आपकी तरफ से गुरां साहब जवारमलजी मणीविजेजी को हम मध्यस्थों में मुकर्रर नहीं करें तब मोणोत अमरदासजी ने कहा कि जो आपने अपने पत्र में लिखा कि जैन शास्त्र का अभिज्ञ होवे उसको मुकर्रर किया जावे तो फिर तुम्हारे हमारे संप्रदाय के सिवाय तीसरे संप्रदाय के मध्यस्थ जवारमलजी मणीविजेजी गुरु साहब के सिवाय कौन ऐसा जैनशास्त्र का अभिज्ञ है सो मध्यस्थों में मुकर्रर किया जावे आप अपने लेख पर क्यों नहीं कायम रहते हो इत्यादि बहुत कुछ कहा परंतु तेरेपंथियों के श्रावकों ने दोनों गुरां साहब को मध्यस्थ मंजूर नहीं किये तब मोणोत अमरदासजी ने कहा कि आप अपने लेख पर ही कायम नहीं रहें तो ऐसा करो कि कविराजजी मुरारीदानजी को आपने मध्यस्थ मुकर्रर किये हैं और हमने भी उन्हीं को मुकर्रर किये हैं तो आप और हम दोनों तरफ के श्रावक मिलके चलिये जो कविराजजी से अपनी हकीकत करदेवें जिसपर कवीराजजी कहें वोही मकान मुकर्रर किया जावे और वह कहें वोही मध्यस्थ मुकर्रर और जो वह कहें वोही दिन और टाइम मुकर्रर अपने दोनों श्रावकों को मंजूर किया जावे और चर्चा जरूर होनी चाहिये जिसपर [illegible]

लछमणदासजी ने उत्तर : [illegible]

इस विषय की सरकार [illegible] जिस

पर जो ... [illegible]

लछमणदासजी के सुनते ही मोणोत अमरदासजी आदि बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों को बिलकुल मालूम हो गया कि चर्चा करने की इनकी हिम्मत नहीं क्योंकि अपनी शुद्धता होवे तो सभा के सामने चर्चा करने को आवे परंतु मूल सेही ऐसी श्रद्धा है कि साधु की फांसी काटने में पाप और गायों को बलते बाड़े में से निकालने में पाप है तो ऐसी श्रद्धा वाले सभा के सामने कैसे आसके तो खैर जैसी इनकी पोलपाल श्रद्धा अपने मन में समझते थे वैसी ही विदित हो गई तो अब इनको नाहक ज्यादा तंग करना ठीक नहीं ऐसा अपने मन में हम बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों ने संतोष कर तेरेपंथी श्रावकों को कहा कि खैर तुम चर्चा नहीं करावो तो तुम्हारी खुशी परंतु आप के पत्र के बदले हमारा यह जो पत्र आपको दिया है इसका आपको मुनासिब तुलै वैसा उत्तर लिख भेजना यह कहकर हम सर्व बाईस सम्प्रदाय की श्रावक मंडली वहां से चली आई और पिच्छा पत्र आने की राह देखते रहे परंतु पत्र तो आवे ही कहां से क्योंकि चर्चा करने की हिम्मत नहीं तो पत्र कैसे भेजे बस इसी तरह से चातुर्मास्य का समय बीत गया परंतु न तो सात प्रश्नों का उत्तर दिया और न हमारे पत्र के बदले उनका पत्र पीछा आया तब हम बाईस सम्प्रदाय के श्रावक तो इन तेरे पंथियों का मत जैसा था वैसा जानते ही थे परंतु जोधपुर के रहने वाले जैन दर्शन के सिवाय अन्य दर्शन वाले बहुत मध्यस्थों को भी विदित होगया कि इन तेरे पंथियों की यह श्रद्धा है और ऐसे यह तत्त्व हैं ।

बस यह चर्चा जोधपुर शहर में अविदित (छानी) नहीं

तत्पश्चात् चातुर्मास्य सम्पूर्ण होने से हमारे गुरूजी श्रीमोतीलालजी जुवारीलालजी मारवाड़ चालोतरे को गये वहांपर भी तेरे पंथियों के पूज्यजी थे तो फिर हमारे गुरूजी श्री जुवारीलालजी ने हमारे श्रावकों को कहा कि तेरे पंथियों के पूज्य जोधपुर के सात प्रश्नों का उत्तर देवे तो लेने को तैयार हैं तब श्रावकोंने चंदनमलजी लोढा विष्णु उपाश्रक जमात् के दरोगेथे. उनको कहा तब उनने तेरे पंथियों के पूज्यजी से कहा तब कहने सुनने से सुरतरामके मंदिर में चर्चा करने को तेरेपंथियों के पूज्यजी तो नहीं आये. और अपने मगनलालजी आदी साधुवों को भेजे. तब हमारे गुरूजी जवारीलालजी ने वहांपे प्रश्न किया कि श्रीमान् महावीर भगवंत को दीक्षा लेने अनंतर छद्मस्थपने में चूका कहते हो सो पाठ दिखलाओ तिसपर तेरे पंथियों के साधुजी मगनलालजी उत्तरदिया कि श्री भगवानने दश स्वप्नेदेखे जिस से चूके हैं तब बाईस संप्रदाय के साधुजी जवारीलालजी ने कहा कि श्री परमेश्वर दश स्वप्ना तो यथा तथ्य देखे हैं और यथा तथ्य स्वप्न को सूत्रदशा श्रुतस्कंधजी के ५ वें अध्ययन में तीसरी चित्त समाधी. यानी धर्म ध्यानमें कहे है सो कभी चूकना सिद्ध नहीं होता है. बस यह एकही कामका प्रत्युत्तर सुनतेही सभा के मध्यस्थो को तो बखूबी रोशन होगया कि सत्य यह है. परंतु मगनलालजी ने यह बात स्वीकार नहीं करी तब चंदनमलजी लोढा ने कहा कि हम कल जोधपुर से पंडितो को बुलाते हैं सो सत्यासत्यका निर्णय हो जावेगा आज सभा विसर्जन (बरखास्त) करो बस दूसरेदिन साहारमीना पंडितो को बुलाने की सलाह में थे परंतु बुलाकर

मौका था. जिससे स्याही सुखाने की तकलीफ होवे और गीली स्याही साधु को रात की रखनी नहीं कल्पै. इसमें पेन्सल से कचे खरड़े लिखना शुरु किया फिर जब सत्सुत्र पूर्ण हुए तत्पश्चात् कचे खरड़े आगे काम में नहीं आने लायक जान के स्वामी जी ने अपनी नेश्राय से कचे खरड़े के पत्र अलग कर दिये तब वे कचे खरड़े हमारे स्वधर्मी भाई श्रावक भंडारी जोरावरमल जी और मेघराज जी के हस्तगत हुए. क्योंकि भंडारी जी संसार के व्यवहार व्योपारादिक प्रपंच को छोड़ के फक्त संतों की सेवा और तप स्यादिक में अपने आत्मा को तत्पर करते रहते हैं और मेघ राजजी भी ज्ञानध्यान और पठनपाठन और संतों की सेवा में तत्पर रहते हैं इससे उनके हस्तगत वह पत्र हुए-तब हम श्राव-क लोगों ने उन कचे खरड़े के पत्रों को सर्व भव्यजनों को लाभ पहुचाने के लिये पंडितजी बिहारीलालजी से अच्छे कागज़ पर उतराये उक्त पंडितजी को इस विषय में बहुत परिश्रम पड़ा क्योंकि खरड़े बिल्कुल कचे चलते हरफों में लिखे हुवेथे. क्यों-कि बरसात का समय था और महाराज को व्याख्यानादिक अन्य काम बहुत था और ग्रंथ पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की प्रक्रिया से बहुत बड़ा लिखने की इच्छा से चलते हरफों में लिखे हुवे खरड़े थे. तथापि पंडितजी सिद्धांत कौमुदी पट्काव्य सिद्धांत-मुक्तावली इत्यादिक संस्कृत. काव्य. न्यायादिक ग्रंथोंके ज्ञाता थे-इससे ग्रंथ का आशयजान के शुद्ध करके लिखाई. तथापि कोई विषय में दृष्टिदोष से अशुद्ध रह गया होवे तो विद्वान जन शुद्ध करलेना. ॥ इति शुभंभवतु ॥

पाठकगण सज्जन भव्यजनों से यह हमारी प्रार्थना है कि इस ग्रंथ को यत्न से कुटिलता द्वेषता त्याग करके चित्त की व्याकुलता छोड़ करके समदृष्टि से देखें कि जिससे इस ग्रंथ से यथार्थ तत्त्व का बोध यानी सत्यासत्य निर्णय रूप ज्ञान प्राप्त होवे-इस हेतु से इस ग्रंथ का नाम "प्रत्युत्तर दीपिका" रक्खा है. क्योंकि प्रश्न जो हमारे यानी बाईस संप्रदाय की तर्फ से तेरपंथियों को प्रश्न पूछे गये. तिसका विरुद्ध उत्तर जैन सिद्धांत ग्रंथों का नाम लेके तेरे पंथियों का श्रावक कृष्णमलजी भंडारी ने प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक छपवाया तिसका भ्रमरूप अंधकार को दूर करने के लिये यह प्रत्युत्तर दीपिका नाम ग्रंथ है सो भव्यजनों को सत्यासत्य निर्णय में प्रवेश होने के लिये दीपक रूप समझ के कथा ग्रहोपंडितजी के पास लिखा है. परंतु द्वेष और क्लेश या विरोध बढ़ाने के लिये नहीं. इस लिये भव्यजनों से प्रार्थना है कि द्वेषभाव न बढ़ावें-किंतु सत्य को ग्रहण करें ॥

इस ग्रंथ में जहां पर 'पूर्वपक्ष' ऐसा सूचवन आवे तहां ऐसा समझना कि तेरपंथियों कि तर्फ से ग्रंथकर्त्ता की कथन है. और जहां पर 'उत्तरपक्ष' ऐसा सूचवन होवे तहां समझना कि बाईस संप्रदाय के श्री संघ के तर्फ से ग्रंथकर्त्ता ने कथन किया है ॥ और जिस जगह इस ग्रंथ में सूत्र के पाठ का अर्थ लिखा हुवा है. वह सिद्धांतों के पहनों में गुजराती भाषा में जैसा है वैसे ही अक्षर लिखे गए हैं परंतु मन के मने ज्यादा कमती नहीं किये गये हैं. सिर्फ सिद्धांतों की पन्नों में तो नीचे पाठ और ऊपर टबार्थ है और इसमें समझना के लिये ऊपर पाठ

को शुद्ध श्रद्धा की प्राप्ति हुई वैसी अन्य को भी होवेगी।

प्रश्न–यह प्रतापमलजी कौन है.?

उत्तर–देश मारवाड़ में पंचभद्रा नाम ग्राम के रहने वाले प्रतापमलजी चोपड़ा तेरे पंथियों के बड़े भाविक श्रावक थे. पश्चात् उनको तेरे पंथियों की श्रद्धा सिद्धांतों से विरुद्ध मालूम हुई. तथापि विचारा कि अपने तेरे पंथियों के पूज्य जी डालचंद जी कि जिनका चातुर्मास जोधपुर शहर में है उनसे सिद्धांत का पाठ पूछ के अपनी शंका को निवर्तन करे और अपने तेरे पंथियों की श्रद्धा सिद्धांत से ठीक मिले तो उनके ही श्रावक बने रहें और अपने पूज्य जी सिद्धांत का न्याय अपने को नहीं दिखावें और अपनी शंका निवर्तन नहीं करे तो फेर जो कोई न्याय श्रद्धावान् न्याय मार्ग में चलने वाले मुनिराज मिल जाय तो उनसे सिद्धांत के पाठ से अपनी शंका का समाधान पूछें जो वह मुनि अपनी शंका को मेट देवे तो उनकी न्याय श्रद्धा धारन करनी, क्योंकि संसार समुद्र से डरने वाला भव्य प्राणी को किसी का पक्षपात में नहीं पड़ना चाहिये किंतु वीतराग कथित न्याय मार्ग की श्रद्धा का प्रतीत करना योग्य है कि जिसके आत्मा अनादि संसार से मुक्त होवे ऐसी दृढ प्रतिज्ञा करके जोधपुर में आये अपने पूज्य जी से अपनी शंका विषयक सिद्धांत पाठ पूछने लगे तो पूज्य जी ने कहा कि तुम्हारे को भीषन जी महाराज के वचनों की प्रतीत है कि नहीं, तब प्रतापमल जी ने कहा कि मेरे को तो श्री भगवंत महावीर प्रभु जी के वचनों की प्रतीत है तब पूज्य जी ने कहा कि तू भीषमजी महाराज की श्रद्धा में नहीं रहा,

तब फिर भी प्रतापमलजी ने कहा कि, आप मेरे गुरू जी हो सो मेरी शंका सिद्धांतों से निवृत्त कर देवो परंतु तेरह पंथियों के पूज्य डालचंद जी ने सिद्धांत पाठ से प्रतापमलजी की शंका निवृत्त नहीं करी।

अब पाठकगण! विचारो कि तेरह पंथियों के पूज्य जी प्रतापमल जी को सिद्धांत पाठ बतावे तो कैसे, क्योंकि सिद्धांतों में तो ठाम २ श्री भगवान् ने मरते जीव को बचाने में महान धर्म फरमाया है शंका होवे तो इस पुस्तक का ५ वां या ७ वां प्रश्न देखना. सिद्धांतों के मूल पाठ से जीव बचाने में महान् धर्म सिद्ध किया है, और तेरह पंथी तो कोई कसाई गाय मारता होवे कोई दूसरा धर्म जान के छोड़ा देवे तो अठारां पाप गाय छोड़ाने वाले को होता है. ऐसा कहते हैं. या गायों के वाड़े में लाय लगी होवे उसको धर्म जानके कोई खोल देवे तो १८ पाप गायों को बचाने वाले को लगना बताते हैं, शंका होवे तो देख लेना तेरह पंथियों की बनाई प्रश्नोत्तर पुस्तक का पृष्ठ ११ मां पंक्ति ८ वीं पर लिखा कि सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को भी बचाने में धर्म नहीं, किंतु पाप माना है या इसके पूज्य जीतमलजी कृत भ्रम विध्वंसन में भी जीव बचाने में पाप माना है तो ऐसी दया रहित श्रद्धा का पाठ सर्वोत्कृष्ट दयामय जैन सिद्धांत में कहां से आवे, कि जो तेरह पंथियों के पूज्य जी डालचंदजी प्रतापमल जी को बतावै. तब प्रतापमलजी ने जोधपुर शहर में तलाश करनी विचारी, कि कोई न्याय मार्ग बताने वाले मुनि मिलें तो उनसे अपनी श्रद्धा शुद्ध करे. प्रतापमल जी के पुण्य भाग से जोधपुर

मे श्री श्री श्री पूज्य जी महाराज श्री श्रीलालजी महाराज के संप्रदाय के श्री मोतीलाल जी जुवारीलाल जी का भी चातुर्मास्य वहां पर था, तब मनापमल जी ने उनके चरन भेट के अपनी शंका का समाधान करने अर्थ अपना प्रश्न निवेदन किया स्वामी जी श्री जुवारीलालजी ने उसी वक्त सिद्धांतों की पहनें खोलके सिद्धांत पाठ दिखलाया. बस मनापमलजी ने सूत्र पाठ देखते ही उनका मिथ्यात्व श्रद्धा रूप अंधकार ऐसा दूर हुवा कि जैसे सूर्य की किरणों से अंधकार दूर हो जावे. मनापमलजी का सिद्धांत रूप सूर्य की वचन रूप किरणों से अज्ञान रूप अंधकार दूर हुवा, तब मनापमल जी १०, दिन तक ठहर के अपने चित्त को सत्य श्रद्धान से पूर्ण दृढ किया. पश्चात् अपने पंचभद्रा ग्राम को गए. बस यहां पर इस बात को लिखने का यह प्रयोजन है कि मनापमल जी जैसा जो कोई भव्य जीव निष्पक्षपाती होके इस ग्रंथ को अवलोकन करेगा तो न्याय मार्ग वीत राग की शुद्ध श्रद्धा का फल को प्राप्त होवेगा इति ॥ शुभं भवतु ॥

इस सूचना के पश्चात् अब ग्रंथ प्रारम्भ करते हैं ॥

आपका

श्रावक लोग बाईस संप्रदाय

नया शहर (ब्यावर)

॥ ॐ श्री जिनाय नमः ॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

अथ प्रत्युत्तर दीपिका प्रारंभः

तत्रादौ शार्दूल विक्रीडित छंदसा मंगलाचरणम्

वीरः सर्व सुरासुरेंद्र महितो वीरं बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतश्च कर्म निचयो वीराय नित्यं नमः ॥
वीरात्तीर्थ मिदं प्रवृत्त मतुलं वीरस्य घोरं तपः ।
वीरः श्रीधृति कीर्ति कांति निचयः श्रीवीर भद्र दिश ॥१॥

अस्यार्थः—हे श्रीवीर देव कल्याण देवो कैसे वीर हैं संपूर्ण जो देवेन्द्र असुरेन्द्र उन करके पूजित और संपूर्ण जो पंडित हैं वह वीर के ही आश्रित हैं और वीर ने ही संपूर्ण कर्म समूह को हना है ऐसे वीर के वास्ते नमस्कार होय, वीर से ही यह अतुल तीर्थ प्रवृत्त हुवा और वीर की घोर तपस्या है फेर वीर कैसे हैं लक्ष्मी और धीर तथा कांति कीर्ति इनका समूह है जिससे ऐसे श्रीवीर कल्याण देवो ॥इति श्लोकार्थः॥

श्रीशासन के स्वामी वर्द्धमान स्वामी के चरणारविंद में शरण प्राप्त होके भव्य जनों के हितार्थ सत्यासत्य प्रश्नोत्तर का निर्णय यानी सत्य और असत्य को प्रकट दिखलाने रूप प्रत्युत्तर प्रदीपिका का अर्हन देव के शरण हो के गुरु कृपा से रचना हूं ॥

प्रश्न पहिला-बाईस सम्प्रदाय की तर्फ से श्रीमान् महावीर भगवंत स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपन में चूके बतलाते हो सो पाठ दिखलावो ?

उत्तर-तेरेपंथियों के तर्फ से प्रश्नोत्तर पुस्तक का पृष्ठ दूसरा की पंक्ति चौथी से लगा के १६ मीं पंक्ति तक लिखा वह यह है।

(क) श्रीभगवान् महावीर स्वामी ने दश स्वप्ने देखे जिसमें पिशाचों को जीते और भुजा से समुद्र को तिरे यह बात ठाणागंग सूत्र के दशमें ठाणे में है तात्पर्य यह है कि स्वप्न का आना मोहनी कर्म का उदय है और जब तक मोहनी कर्म का उदय है जबतक राग द्वेष है जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है और राग द्वेष मिट जाते हैं इसीसे केवली को वीतराग कहे जाते हैं और वीतराग को स्वप्न नहीं आता निद्रा का आना दर्शनावरणी कर्म का उदय है और स्वप्न निद्रा का संसर्ग विना नहीं आता है क्योंकि जाग्रत और निद्रा की मध्यावस्था स्वप्नावस्था है और केवलियों के निद्रावस्था नहीं है इसलिये निद्रा का संसर्गवाली स्वप्नावस्था वाले को केवली नहीं कह सक्ते हैं किन्तु छद्मस्थ ही कह सक्ते हैं और छद्मस्थ के चूक जाने का संभव है इति ॥

अब इसका प्रत्युत्तर सत्यासत्य का निर्णय एकाग्र चित्त करके श्रवण करिये. हे तेरेपंथी मित्रो ! भगवंत का यथार्थ स्वप्न देखने को तुमने मोह कर्म का उदय ठहराया. यह लेख

इतना अज्ञानता को सूचित करता है कि जिसकी हद लिखी नहीं जावे.

पूर्व पक्ष इस लेख में अज्ञानता कैसे हुई.

उत्तर पक्ष–ध्यान लगा के सुनिये. अज्ञानता यह है कि प्रथम तो तुम्हारा यह लिखना अत्यन्त विरुद्ध है कि जो तुमने लिखा कि (श्री भगवंत महावीर स्वामी ने दश स्वप्न देखे जिसमें पिशाचों को जीते) सूत्र में तो एक पिशाच को जीतने का खुलासा पाठ है तथा च सूत्रम् । (एगं, महं, घोर, रूवं, दित्तधरं, ताल, पिशायं,) इति ।

यह देखो सूत्र के तो मूल पाठ में एक पिशाच का जीतना कहा और तुम ने पिशाचों यानी बहुत पिशाचों का जीतना क्योंकर लिख दिया क्या तुमारे गुरु जी को इतना भी धारणा नहीं है जो तुमको एक पिशाच की जगह बहुत पिशाचों की धारणा कराई और एक वचन बहु वचन का ज्ञान भी तुम उत्तर के छपाने वाले को या उत्तर के धारन कराने वाले को नहीं तो फिर किस जाणपने से उत्तर का पुस्तक छपवाया. वाह रे वाह,उत्तर छपवाने वाले जी.तुम्हारी बुद्धि और दूसरा भी यह तुम्हारा लिखना बिलकुल अज्ञानता को सूचन करता है कि जो तुम ने लिखा कि (जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है.) इति ।

देखो यह लिखना कितना अज्ञानपने का है क्योंकि सिद्धांत में तो यह नियम है कि मोहनी कर्म का क्षय तो द्वादश में गुण स्थान म [illegible] है [illegible] त्रयोदश गुण स्थान

प्राप्त होवे जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और हे मित्रों तुम ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है आहाहा तुम्हारे पूज्य जी ने कैसे ऊटपटांग लेख सिखलाये और तुम्हारे सारीसे शल्यज्ञों ने भी कुछ नहीं विचारा कि जो एक साधारण जैन का जानपनेवाला समझदार लड़का भी समझ सक्ता है. कि मोह कर्म के क्षय हुए बगैर केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है तो फिर तुम ने केवल ज्ञान हुए पश्चात् मोह कर्म का क्षय होना कैसे लिखा. अगर तुम्हारे को छोटे से लड़के के बराबर भी ज्ञान नहीं तो फिर पुस्तक बनाने का साहस कैसे किया पाठकगण विचारना चाहिये कि तेरह पंथियों के पूज्य जी और श्रावक जी कैसे विद्वान हैं बस भोजन के पहिले ग्रास में ही कटु या जहरादिक है तो अगाड़ी शुद्ध भोजन होवे ही कहां से, ऐसे ही संपूर्ण प्रश्नोत्तर चोपड़ी को समझना तथापि आगे को फिर दिखाते हैं तीसरी इस लेख में यह अज्ञानता है कि स्वप्न देखना भगवंत ने क्षयोपशम भाव में कहा है और तुमने मोह कर्म का उदय बतलाया यह अत्यन्त अज्ञानता हुई और मोह कर्म में है इसकी साक्षी भी किसी सिद्धांत की तुम ने नहीं लिखी फकत केवल ज्ञानी स्वप्न नहीं देखने से ही मोह कर्म के उदय में कह दिया अब बुद्धिमान पुरुषो विचारो कि थोड़ा भी जैन सिद्धांत का ज्ञान होता तो ऐसी मिथ्या वार्ता नहीं लिखते क्योंकि केवल ज्ञानी नहीं देखे उन सर्व कामों को मोहनी कर्म का उदय कहना अनंत संसार की वृद्धि का कारण है क्योंकि चार ज्ञान मति १ श्रुति २ अ

सेजहा. नामए. केइपुरिसे. अव्वत्तं, सुमिणं, पासिज्जा, नेणं, सुमिणेत्ति, उग्गहिए. नोचेवणं, जाणइ, केवेस, सुमिणेत्ति. तओईहं, पविसइ, तओ, जाणइ अमुगे, एस. सुमिणे, तओ. अवायं, पविसइ, तओ. सेउवगयं, हवइ, तओ, धारणं. पविसइ, तओणे. धारेइ संखिज्जं, वा, कालं, असंखिज्जं-वा, कालं ॥ इति ॥

अस्यार्थः (से जहा. नाम के) यथा दृष्टांते नाम इति संभावनाई (केई. पुरिसे. के०) कोइ पुरुष (अवत्तं. सुमिणं. पासेज्जा, के०) अवक्तं स्वप्न प्रते देखे (नेणं. सुमिणेत्ति. उग्गहीए. के०) ते स्वप्न सुने ग्रहे परं (णोचे. के.) नही निश्चय परि जाणे जे (केवेस० के०) कोण छे यह स्वप्न (तउ० के०) तिवारे विचारणा मांहे ते (तउ के०) तिवारे जाणे जे (अमु० के०) अनुकोयय स्वप्न छे (तउ० के०) तिवारे पछे निर्धार थाई (तउ० के०) तिवारे धारणा मा प्रवेश करे (तउणे के०) तिवारे पछे धारे. (संखे० के०) संख्याता काल लगे अथवा (असं० के०) असंख्याता काल लगे ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो भाई यहां सूत्र के मूल पाठ और अर्थ में यहा कि स्वप्न का देखना नो इन्द्रियजनित ज्ञान यानी मन करके मतिज्ञानरूप ' इते ' इहा ' अवाय धारणा रूप मतिज्ञान का भेद में है फिर जो इन्हीं मतिज्ञान का भेद में स्वप्न है ऐसा इसी सूत्र के टीकाकार जी लिखते हैं तथा च टीका—

एवं स्वप्न मपिकृत्यतो इन्द्रियव्यापार व ग्राहादयः मतिपादितव्याः । अनेन चोइन्द्रियने नान्यत्र.पि विषये वेदितव्याः ॥ इति ॥

टीकार्थः-ऐसे स्वप्न का अधिकार करके जो इन्द्रिय परिग्रह उसे इहां अपाय धारणा की सरूपणा कथन करी इस कथन करके अन्य विषय में भी जानना ॥ इति ॥

हे बुद्धिमानों अब तो जरा सिद्धान्त शैली से विचारो कि स्वप्न का देखना तो जो इन्द्री मति ज्ञान में है ऐसा सूत्र का मूल पाठ अर्थ टीका में खुलासा स्पष्ट लिखा है तो फिर तुम ने स्वप्न देखना मोह कर्म के उदय में कैसे लिखा.

पूर्वपक्ष-क्षयोपशमभाव में स्वप्न है ऐसा खुलासा पाठ दिखलाओ.

उत्तरपक्ष सूत्र साक्षी तो लिख ही दी है क्योंकि मति ज्ञान क्षयोपशम भाव में है और स्वप्न का देखना मतिज्ञान में है तो स्वप्न का देखना क्षयोपशम भाव में स्पष्ट रीति से सिद्ध हुआ है अब बुद्धिमानो विचार लेवो कि यह मति ज्ञान क्षयोपशम भाव में है यह भी पाठ अक्षरों के बाहने लिखते हैं सूत्र अनुयोग द्वार में सूत्र पाठ—

से किंतं, खओवसमनिप्फन्ने, २ अणेग, विहे, पण्णत्ते, तंजहा, खओवसमिया, आभिणि, बोहिय. णाण, लद्धी ॥ इति ॥

भावार्थः-(से किं तं खओवसम, निप्फन्ने, २ क०) अथ क्या है वो कहिये जो कहिये उपशम भी नीपजे (अणेग, विहे, पण्णत्ते तंजहा, क०) अनेक प्रकार बतलाते कहे हैं. (खओ, वसमिया, आभिणि, बोहियणाण, लद्धी, क०) आभिनिबोधिक ज्ञान ने मति ज्ञान कहिये तेहनी प्राप्त कहिये. [illegible]
[illegible]

विहे, सुविणे, दंसणे, पण्णत्ते, तंजहा अहातच्चे, १ पयाणे २ चिंता सुविणे ३ तव्विवरीए ४ अव्वत्त दंसणे ५ इति ॥

अस्यार्थः--(कइ, विहेणं, भंते, सुविणे, दंसणे, पण्णत्ते, के०) के तले भेदे हे भगवन् स्वप्न दर्शन कयो शयनक्रिया, भगवार्थ विकल्पतेहनो दर्शन कहिये अनुभवन ते परूप्यो इति प्रश्नः--उत्तर (गोयमा, पंच, विहे, सुविणे, दंसणे, पं० तं० के०) हे गौतम पांच भेदे स्वप्न दर्शन परूप्यो ते कहे छे अहातच्चे ति० के०) जिणे प्रकारे सत्य तिणे प्रकारेंज ते य- थातथ्य कहतां साचो १ पयाणेत्ति के० प्रतान कहिये वि- स्तार ते रूप जे स्वप्न ते यथातथ्य तेहथी अनेरो प्रतान सहवो कहिये विशेषण कुलदीप एवंरूने विषे भेद इम आगे पणि कह्या हवो २ चिंता, सुविणेत्ति, के० जागतां थकां चिं- ता अर्थ चिंतन ते स्वप्न माहि देखे ते चिंता स्वप्न कहिये. ३ तव्विवरीए, के०) जेह वस्तु स्वप्न ने विषे दीठी तेहथी विपरीत अर्थनो पामवो जाग्या हुवे ते विपरीत स्वप्न कहिये ४ अव्वत्त, दंसणे के०) अव्यक्त ते प्रकट नहीं दर्शन अनुभ व स्वप्नार्थ नो जिहां ते अव्यक्त दर्शन ५ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखिये यहां सूत्र के मूल पाठ में कहा कि स्वप्न का देखना पंच प्रकार का है और सूत्र नंदी जी में स्वप्न देखना क्षयोपशम भाव में कहा है क्योंकि मति ज्ञान में होवे से और ऐसे ही ज्ञान ४ और अज्ञान तीन यह भी क्षयोपश म भाव में कहे हैं परंतु ज्ञान को ज्ञान और अज्ञान को अज्ञा- न समझना ऐसे ही यथातथ्य स्वप्न सम्यक्त्व और उसकी अपेक्षा से अन्य विकल्प जंजाल का स्वप्न कुस्वप्न जानना

भेदसे दो प्रकार का स्वप्न होता है. अर्थात् जैसे देखे वैसे ही अर्थ को प्राप्त होवे और जैसा देखे वैसा ही फल को प्राप्त होवे जिसमें दृष्टार्था विसंवादी स्वप्न तो जैसे कोई स्वप्न को देखे कि मेरे हस्त में फल दिया फिर जागता हुवा उसको वैसे ही देखता है और फला विसंवादी स्वप्न तो जैसे कोई भी श्वेत हस्ति आदिक पर चढता हुवा अपने को देखता है फिर जागता हुवा कालांतर में संपत्ति को प्राप्त होता है ॥ इति

टीकार्थः ॥ अब देखो यहां टीका में भी कहा है कि यथातथ्य स्वप्न दो प्रकार से जानना कि जैसा स्वप्न देखे वैसा ही अर्थ को प्राप्त होवे और जैसा स्वप्न देखे वैसा ही फल को प्राप्त होवे, जैसे कि कोई श्वेतहस्ति आदिक पर चढा हुवा अपने को देखे. और कालांतर में संपत्ति रूप फल को [illegible] होवे. इसको यथातथ्य स्वप्न कहिये तो फिर श्री भगवान महावीर स्वामीजी भी मेरु पर्वत की चूलिका पर हाथ चढे वैसा स्वप्न देखा. जिसका फल में श्री भगवान् समव शरण में सिंहासन पे विराज के द्वादश प्रकार का सभा को धर्मोपदेश देते हुए और स्वप्न में समुद्र तिरने से संसार रूप समुद्र को तिरे और विग्राम को जीतने से मोहकर्म को जीते. और सूर्य को स्वप्न में देखने से केवल ज्ञान को प्राप्त हुए, इत्यादिक विस्तार सहित सूत्रपाठ में आगे लिखेंगे, परंतु यह ख्याल में नहीं आता कि तुम्हारे मेरे पंथियों के पूज्यश्री जीतमलजी ने भ्रम विध्वंसन में ऐसा खुलासा कर दिया कि भगवान ने दश स्वप्न देख वह विपरीत स्वप्न है सो इस भ्रमविध्वंसन का लेख सुनो बताते हैं भ्रम विध्वंसन के पत्र ०-८ सा में (बलि

भगवंत छद्मस्थपनें १० सुपना दीठा ते पीण विपरीत छे) इति ॥

यह देखो तुम्हारे गुरूजी ने सूत्र अर्थ टीका से विपरीत लेख कपोल कल्पित क्योंकर लिख दिया. जीतमलजी को यह भी ख्याल नहीं आया कि जो मैं मतपक्ष करके श्री भगवान् दश स्वप्न देखे तिन को मैं विपरीत कह देऊंगा तो फिर कोई मेरे से पूछेगा कि भगवान ने देखे वह स्वप्न विपरीत है तो फिर यथातथ्य कौनसे हैं तब मैं क्या उत्तर देऊंगा. शोक है कि इतना भी ख्याल उनको नहीं आया तो जान लिया कि मतपक्ष का कारण है, परंतु श्री भगवान ने स्वप्न देखे वे तो यथातथ्य मूलपाठ से ही सिद्ध है क्योंकि सूत्र भगवतीजी के १६ मां शतक के छट्ठे उद्देश में श्री भगवान ने स्वप्न देखे वहां ऐसा पाठ है सो सुनिये ॥ सूत्र

समणे, भगवं, महावीरे, छउमत्थ, कालियाए, अंतिम, राइयं, सि, इमे, दस, महा, सुविणं, जाव, पडिबुद्धे ॥

अस्यार्थः–(समणं, भगवं, महावीरं, छउमत्थ, कालियाए, अंतिम, राइयंसि, के०) श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामी छद्मस्थ कालपणानि रात्रिने अंतिमभागे (इमे, दस, महा, सुविणे, पासि, त्ताणं, पडि, बुद्धे, के०) एह दस स्वप्न देखी ने जाग्या इति सूत्रार्थः ॥

यह देखो श्री सूत्र के मूल पाठ में कहा कि दश महा स्वप्न श्री भगवान ने छद्मस्थ पने की छेल्ली रात्रि के अंत भाग में देखे तो सूत्र में महा स्वप्न कहा इसने तो स्पष्ट रीति से ही सिद्ध है कि पंच प्रकार के स्वप्न के भेद है जिसमें श्री भगवान् ने स्वप्न देखे वे पहिले भेद में यानी यथातथ्य स्वप्न में है.

नथा फेर इसी भगवतीजी के १६ मां शतक के छट्टा उद्देश में ऐसा पाठ है तो सुनिये ॥

सूत्र—संवुडेणं, भंते, सुविणं, पासइ, असंवुडे, सुविणं सुविणं, पासइ, संवुडा, सवुडो, सुविणं, पासइ, गोयमा, संवुडेवि, सुविणं, पासइ, असंवुडा, विसुविणं, पासइ संवुडा, संवुडवि, सुविणं, पासइ, संवुडे, सुविणं, पासइ, अहातच, पासइ, असवुडे, सुविणं, पासइ, तहा, वातं, होज्जा, अण्णहा, वातं होज्जा, संवुड़ा, संवुडे, सुविण, पासइ, एवं चेव, इति ॥

अस्यार्थः-हिवे स्वप्ननोज तथ्य अतथ्य विभाग देखाडवाने अर्थ स्वप्न होज कहे छे (संवुडेणं, भंते, सुविणं, पासइ, असंवुडे, सुविणं, पासइ, संवुडा, संवुडे, सुविणं, पासइ के०) रोद्धते हे भगवन् रूंध्या जणे आश्रव द्वार ते सर्वे विरति इत्यर्थः ते स्वप्न प्रते देखे इत्यर्थः ॥

जिणे आश्रव रूंध्या नहीं ते असंवृत अविरति इत्यर्थः ते स्वप्न देखे, अथवा संवृत असंवृत एतले देश विरति ते स्वप्न देखे, इति प्रश्न ॥

उत्तर-(गोयमा, संवुडे, सुविणं, पासइ, असंवुडे, वि, सुविणं, पासइ, संवुडा, संवुडे, वि, सुविणं, पासइ, संवुडे, सुविण, पासइ, के०)

हे गौतम संवृत ते पणि स्वप्न देखे, असंवृत ते पणि स्वप्न देखे, संवृत असंवृत पणि स्वप्न प्रत देखे ते संवृत स्वप्न देखे [illegible] अनुरूप [illegible] सांये साम मल [illegible] अनुग्रह [illegible] । अहा तच, पासइ, [illegible] सुविणं, पासइ, के० मन्यस्वप्न होज देखे असंवृत

स्वप्नदेखे. (तहा. वाने. होज्जा अन्नहा. वा तं होज्जा. के०) तेनि परीत एटले यथार्थ ते स्वप्न देखे अथवा अन्यथा पण ते स्वप्न हुवे. (संवुडा. संवुडे. सुविणाई पासइ. एवं चेव के०) संवर अनगार स्वप्न देखे ते पणि इमहीज कहे छे॥ इति सूत्रार्थः॥

अब देखो यहां सूत्र के मूलपाठ में कहा कि संवुड साधु स्वप्नदेखे तो यथातथ्य ही देखे-तो फिर श्रीमान महावीर स्वामी तो प्रधान संवर में वर्तने वाले थे. और छद्मस्थ पने की छेली रात्री में दश स्वप्न देखे. यानी रात्रि को तो स्वप्न देखे. और दिनको केवल ज्ञान पाये. और सूत्रकृता श्रुतस्कंध के पंचमे अध्ययन की टीका. और अर्थ में भी श्रीभगवान के दश स्वप्न का देखना यथातथ्य महा कल्याणकारी कहे हैं. सो आगे लिखेंगे. जिससे सूत्र का लेख से ही श्रीभगवान महावीर स्वामीजी ने यथातथ्य स्वप्न ही देखे. परंतु अन्य विपरीत स्वप्न का देखना. किसी सिद्धान्त प्रमाण से सिद्ध नहीं होता. फिर हेभाई यह विचारो कि जब संवृत आत्मावंत साधु को भी स्वप्न ही देखना कहा. और तुम यथातथ्य स्वप्न देखने में भी पाप लगना कहते हो या चूक जाने में कहते हो. और फिर तुम्हारे गुरु की श्रद्धा ऐसी है कि एक दोष सेवन करे उसमें भी साधुपना नहीं. तो फिर स्वप्न देखने में दोष लगा तो संवुडा अनगार यानी साधुपना कैसे रहा. तो तुम्हारी श्रद्धाके अनुसार तो. संवृत साधु यानी निर्दोष साधु को स्वप्न देखना ही नहीं रहेगा. या स्वप्न देखना रहगयोतो. संवुडापना नहीं रहेगा. परस्पर विरोध आवेगा. और भगवंत ने तो. संवुडा अनगार को स्वप्न देखना कहा है और संवुडेपने का

ज्ञाइं, दस. चित्त. समाहि. ठाणाहिं, असमुप्पण. पुव्वायं, स-
हु, पज्जिज्झा, तंजाहा, धम्मचिंतावासे, असमुप्पणपुव्वा, समु-
प्पज्जेज्झा, सव्व, धम्मं, जाणित्तए ॥ १ ॥ सन्निणाणे, वासे,
असमुप्पणपुव्वे, समुप्पज्जेज्झा, अहंसराणि, अरणो, पोराणिय,
जातीं, समरित्तए. ॥ २ ॥ सुमिण. दंसणे, वासे, असमुप्पण-
पुव्वे. समुप्पज्जेज्झा, आहा, तच्च, सुविणं पासित्तए ॥ ३ ॥

अस्यार्थः–आवट्टीणं के०) मोक्षनामर्थी एतलें दीर्घ का-
लनी विधिना अर्थी.

आयहियाणं के०) ३६३ पाखंडी तेहनो संग वर्जवोने
आत्माना हेतु.

आयजिपोणं के०) आत्मा ना प्रकाशवंत.

आयपरिक्कमाणं के०) आत्मा सुख भणी पाक्रम फोरइ
एवा माक्रमी ।

परिवय पोसहिए के) पक्षी ते अर्द्धमास तिके पक्षी तेह-
नो पोसो उपवास करइ थके ते पोपे ते पोसो कहिये सुसमाहि,
पत्ताणं के०) पोसो करवइ भली समाधि पामी छइ तेह नइ
झियाय, माणाणं, के०) धर्म शुक्ल ध्याननां ध्यावणहार
इमाइ के०) ए आगलि कहै स्थवरें ।

दस के०) दस संख्या चित्त के०) चित्त ने समाहि ठा-
णाइ के०) समाधियानिक भाव समाधिना थानिक असमु-
प्पण, पुव्वाय के०) किवारे पणि अतीत काले पूर्वइ जीवनइ
उपना न थी एतले पाम्या नथी ते ।

समुप्पज्जिज्झा के०) उपजइ तंजाहा के०) तेजीम छै
तिम कहे छै पूर्व गुण सहित साधु साध्वी ने धम्म, चिंता-

ग्राम. के०) धर्मनी चिंता ते जीव द्रव्य अजीव द्रव्य तेह विषय चिंता जे नित्य छै किंवा अनित्य छै रूपी छै किंवा अरूपी छै एहवी चिंता असमुप्पण, पुव्वा, के०) पूर्वइं उपनी न थी तेहनेइं समुप्पज्जेज्झा-के०) उपजे तिवारे सव्व, धम्मं. जाणित्तए, के०) सर्व धर्म जाणे तिवारे परवा दीनाधर्म असोभनीक पूर्वा परे विरुद्ध माटे श्री जिन धर्म निर्वाण हेतु जाणे ॥ १ ॥

सन्निन.णे, वासे के०) सम्यक् प्रकारइं जाणे ते संज्ञी पंचेंद्री मन सहित तेहने जाति स्मरण असमुप्पण, पुव्वे, के०) पूर्व उपनो तो नहीं।

समुप्पज्जेज्झा के०) ते जाति स्मरण सम्यक् प्रकारे प्रगट होइ अहसरामि के०) हूं पूर्व भव ने विषइ एहवो हतो संभारे अपेणो, पोराणिय, के०) आपणो पाछला भवनी जाती, सारित्तए, के०) जाति नइ पूर्व भव में हुं कुण हुतो संभारे ॥ २ ॥

सुमिण, दंसणे, वासे के०) स्वप्न नो देखन उत्ते स्वप्न दर्शन जिम भगवंतइ भगवती सूत्र शत १६ उ० ६ स्वप्न ना फल कह्या ते इवा यथातथ्य।

असमुप्पण, पुव्वे, के०) अतीत काले उपनान थी समुप्पज्जेज्झा के०) ते उपजे देखेइ श्रीवीरनी परइ-अहातच्च, सुमिणं पासित्तये. के०) यथातथ्य स्वप्न देखे तेह चोहीज फल पामइ ॥ ३ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब हे मित्रों ज्ञान नेत्र खोल के देखो कि यहां सूत्र के मूल पाठ में श्री भगवान् ने अपने साधु साध्वी को खुला के

कहा कि इन जिन शासन के जो निर्दोष चरित्र के पालनेवा-
ले और ज्ञान दर्शन चारित्र की समाधि वाले और धर्म शुक्ल
ध्यान के ध्यावने वाले ऐसे महा गुणवान् साधु साध्वी को दश
चित्त समाधि के स्थान यानी भाव धर्म प्राप्ति के स्थान जीव
को गए काल मे कभी उत्पन्न न हुए ऐसे अपूर्व महा कल्याण-
कारी उत्पन्न हुए जिन दश चित्त समाधि यानी भाव धर्म की
समाधि के स्थान में यथातथ्य स्वप्न का देखना तीसरी चित्त
समाधि में श्रीमुख से परमेश्वर ने फरमाया है तो फिर हे भव्य
तुम लोग ऐसे यथातथ्य स्वप्न देखने में श्री भगवान को चूक
जाना या पाप लगना कैसे कहते हो और पुस्तकों में छपाते
हो।

पूर्वपक्ष-हमारे को तो हमारे पूज्य जी ने जैसी धारणा
कराई है तैसी ही हमने पुस्तकों में छपवाई है.

उत्तरपक्ष-हे भव्य अवश्य तुम्हारे पूज्य जी ने ऐसी
सिद्धांत विपरीत धारणा तुमको कराई होगी. परंतु तुम लोग
पूज्य जी के कपोल कल्पना को ही सत्य मानते हो. कि श्री
त्रिलोकीनाथ महावीर प्ररूपे सिद्धांत को सत्य मानते हो.

पूर्वपक्ष-सत्य तो हम अर्हंत प्रभु प्रणीत (प्ररूपे) सिद्धांत
को ही मानते हैं परंतु यह दशा श्रुतस्कंध सिद्धांत का पाठ
हमारे पूज्य जी ने क्या नहीं पढ़ा. जो ऐसे महाकल्याणकारी
चित्त समाधी भावधर्म की प्राप्तिरूप यानि श्री भगवान्
महावीर प्रभु ने देखे जिन स्वप्नों को मोहकर्म के उदय में
और श्री भगवान् को चूक जाने में हमको कैसे सिखाया.
शायद हमारे पूज्य जीने इस दशाश्रुतस्कंध के सूत्रपाठ की टीका

में कोई दूसरी तरह का अर्थ होवे. उससे हमको धारण कराई होगी तो क्या जाणिये. क्योंकि हमारे भ्रम विध्वंसन में दशा श्रुतस्कंध की टीका की साखी १ महिने की साधू की पडिमा को अधिकार में दी है सो हमको टीका दिखलाओ.

उत्तरपक्ष-हे भाई ग्रंथ बहुत बढ जावेगा तथापि तुम्हारी शंका दूर करने को हम टीका लिखते हैं सो सुनिये.

टीका-समाहिपत्ताणंति. समाधि माप्तानां ज्ञानदर्शन चारित्र रूप समाधिवतां. झियायमाणंति धर्म शुक्र ध्यान ध्याय मानानां. इमोइंति मानि अनंतर वक्ष्यमाण स्वरूपाणि दश चित्त समाधि स्थानानि. असमुप्पण पुव्वाइंति असमुत्पन्न पूर्वाणि इत्यर्थः समुत्पद्यरन्नितिशेषः तंयहाधम्मेत्यादि सेति निर्दिशे तस्य एवं गुणजातीयस्य निर्ग्रंथस्य. निर्ग्रंथ्यावा धम्मचिंतति धर्मोनाम स्वभावः जीव द्रव्याणामजीव द्रव्याणां चतद्विषया चिंता कथंरूपा अमीनित्या उतानित्या रूपिण उतारूपिण इत्यादिरूपा. असमुप्पण पुव्वति माग्वत्सरयं धर्मं ज्ञातुं अथवा धर्म चिंता यथा सर्वेकुसमया अशोभना अनिर्वाहका पूर्वा पर विरुद्धाः॥ अयसर्वेषु धर्मेषु शोभन तरोयं धर्मो जिन मणीतः एवं रूपा इत्येक १ सणीत्यादि सम्यग् जानातीति संज्ञः तस्य यत् ज्ञानं संज्ञि ज्ञानं यथा पूर्वान्हे गां दृष्टा पुनरपरान्हे प्रत्याभिजानीते असौ गौरिति अप्पणेत्यादि मागवत् अहं सरामीति अहं स्मरामि अमुकोहे पूर्वभवे आसं सुदर्शनादिवत्-इति ॥ २ ॥

सुमिणेत्यादि स्वप्न दर्शनं यथा भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः मग्नस्तांशनिपाटितं स्वप्न फलं तथा. अथ स्त्रीं वा पुरुष वा एकां मह-

सूत्र—आहातच्चं तु सविणं, खिप्पं पासति,संवुडे ससव्वंवा, उहंत रति, दुखा, दोयवि, मुचति ॥ इति ॥

अस्यार्थः—आहातच्चं के०· यथातथ्य ते· सुविणं. के०· स्वप्नएतले सफल एहवो स्वप्न। खिपं. के·' तेतत्कालइ पासति के०' देखइ–संवुड़े के०' संवर द्वारनोधनी साधु– सव्वं' वाउ, हतंरति· के०. सर्वते निखशेष एहवो ओघ कहिए संसार समुद्रनी परे समुद्र अपार एहवा संसार समुद्र नइतरई एतले पुनरपि संसारी न थाय· कर्मना अभाव थकी दुखादोय के०' दुख ते शरीरी मानसीथ की विमुचति के०'·मुकाइ अथवा विविध प्रकारना दुख थकी मुकाइ ॥ इति सूत्र गाथार्थः ॥

अब देखिये देवानुप्रिया जी श्री भगवंत ने फरमाया कि यथातथ्य स्वप्न के देखने से मुनि संसार समुद्र को तिरे और दुख रहित होवे यह सूत्र के मूल पाठ में कहा. तो हे भव्यों! अब तो विचार लो कि ऐसे मोक्ष फल के देने वाले स्वप्नों को मोह कर्म के उदय में कह के श्री भगवंत महावीर प्रभु ने यथातथ्य दश स्वप्न केवल ज्ञान लाभादि के देने वाले देखे, तिसमें तुम परमेश्वर को चूके या पाप लगने का महा भयंकर आल चढा के तीर्थंकर भगवान् की आशातना क्यों करते हो? भाई संसार का भय होवे तो अब भी छोड़ दो तथा इस चित्त समाधि की तीसरी गाथा की वृत्ति यानी टीका में भी ऐसा खुलासा है कि ऐसे चरम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी ने दश स्वप्न देखे और तत्काल फल को प्राप्त हुए और संसार समुद्र को तिरके मोक्ष प्राप्त होने का फल को प्राप्त हुए सो टीका लिखते हैं सो सुनिये।

उत्तरपक्ष-हे भव्य देवदर्शन की महत्वता भी. श्रीभगवान् ने इसी दशाश्रुतस्कंध में पंचमाचित्त समाधिनामा अध्ययन में फरमाई है सो मूलपाठ से दिखलाते हैं ॥

सूत्रगाथा-पन्ताइ. भयमाणस्स विवित्तं. सयणासणं, अप्प, हारस्स, दंतस्स. देवदंसेति. ताइणो. ॥

अस्यार्थः-पन्ताइ. भयमाणस्स के० अल्पमूलना अथवा जीर्ण तेह नइ सेवे एतले भोगवना सेवनहार. विवित्तं, सयणासणं के०, स्त्री पशु पंडकर हित तथा जीव रहित सेज्या जीव रहित आसन- अप्प, हारस्स, दंतस्स. के०-अल्प आहार लेणहार नइ. इन्द्रीना दमण हारनइदेव, देसेति, ताइणो, के० देवतानो. दर्शन होइ छकायना रख पालनइ ॥ ४४ ॥ सू. दशा. अ. पंचमा. इति सूत्रार्थ

अब विचारो भाई! इस सूत्र पाठ में देवदर्शन का महत्वता श्रीभगवान् ने श्रीमुख से फुरमाई है, कि जो मुनि अंत प्रांत यानी अल्प मोल के वस्त्र पात्रादिकन का सेवन वाला और निर्दोष उपासरा, यानी मकान या पाट पटले आसन के सेवने वाले और अल्प आहार के करने वाले और छ काय जीव की रक्षा करने वाले, ऐसे महामुनि को देवदर्शन होवे यह प्रगट देव दर्शन की महिमा सूत्र में श्रीभगवान् ने फुरमाई है. सो बुद्धिमान् श्रद्ध लेवो कि देवदर्शन भी चित्त समाधि धर्म प्राप्ति के दश बोल में से चौथे बोल में है.

पूर्वपक्ष—सिद्धांत में अव्रती को आने जाने की तारीफी अनुमोदनी करनी वर्जी है इसहेतु से देवदर्शन की तारीफी क्योंकर होवे--

उत्तरपक्ष—हे भोलेभाई! आने जाने का तो कथन यहां है

ही नहीं, तो फिर तुम विनाही विचारे तर्कना क्यों करते हो
यहां तो देवदर्शन काहीज कथन है. आने जाने का नहीं.

उत्तरपक्ष—आने जाने बिना नहीं होवे परंतु आने जा
की प्रशंसा नहीं, देव दर्शन की प्रशंसा है. जैसे साधू
वंदना करने को गृहस्थलोग कोई पैर से चलके, कोई सवा
करके, कोई स्नान करके आते हैं, क्योंकि आये बिना तो सा
को वंदना होना संभव नहीं होता है, परंतु भगवान् तो महत्व
यानी प्रशंसा, वंदना करने की ही ज करी है, परंतु आने जा
की नहीं. सो सूत्र उत्तराध्ययनजी का २६ मा अध्ययन
दशमें बोल में कहा है सो सुनिये.

सूत्र—वंदण एणं, भंते, जीवे, किं जणइ; वंदण ए
नीया; गोयं कम्मं, खवइ, उच्चा, गोयं, कम्मं, निबंधइ, सो
भंगचणं, अप्पडिहयं, आणाफलं, निव्वत्तेइ, दाहिण, भावंच
जणयति. ॥ १० ॥ इति सूत्रपाठः

अन्वयार्थ—वंदण एणं, भंते, जीवे, किंजणइ; के० वां
णआचार्यादि ज्ञानी उचित प्रतिपत्ति नइ करीवेकरी हे भग
जीव कीसुं उपजावइवंदण, एणं, नीया, गोतं, कम्मं, खवे
के० गुरु कहइ अधम कुल नइ विषे उत्पत्तिनु हेतु कारण. या
नीचे गोत्र कर्म खपावइ-उच्चा, गोयं, कम्मं, निबंधइ, के० त
तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिकन उकारण उच्चगोत्र कर्म अतिशय करी
बांधइ सोहग्गं, चणं, अप्पडिहयं, आणाफलं, निव्वत्तेइ, के०
वली सौभाग्य सर्व लोक नें स्पृहणीकपणु, कोई हणी न
सकइ एह वूं आज्ञा फल आज्ञा सारपणुं नियजावइ उपजावइ
दाहिण भावं, चणं, जणयति, के० वली दक्षण भाव भाहि

धर्मरुचिजी की श्रद्धा कैसे हुई जो तुम्हारे गुरु जीतमलजी की श्रद्धा से विरुद्ध तुम को स्वप्न देखना ही सावद्य कहे मे पानी पान करने में और मोहनी कर्म के उदय में बतला कराना. हे बुद्धिमानो! न्यायवान् होवो. तो ज्ञान नेत्र खोल के अच्छी तरह से विचारना. दूसरा यह भी लिखना विरुद्ध है कि भगवंत पिशाचों को जीते. क्योंकि सूत्र में तो (एगं. महं घोर.रूवं. दित्तधरं. ताल. पिसायं) ऐसा पाठ है यहां तो एक पिशाच को भगवंत ने जीता ऐसा लिखा है और तुमने पिशाचों यानी बहुत पिशाचों को जीतना लिख दिया. यह जैन सिद्धांत से तुमने अति विरुद्ध लिखा. तथा जीतना भी कई तरह का है सिद्धांत ठाणांग के चौथे ठाणे का चौथा उद्देश में भी श्री भगवान् महावीरजी के ४०० साधु देवता मनुष्यों की परिषदा को पराजय करने की अर्थात् जीतने की लब्धिधारी मुनि कहे है तो क्या वे मुनि देवता मनुष्यों को जीते तो क्या क्लेश करके जीते कि ज्ञानबल से ?

पूर्व पक्ष-ज्ञानबल से जीते.

उत्तर पक्ष-जो महावीर स्वामी ने भी पिशाच को पराजय किया ऐसा सूत्र में कहा परंतु क्लेश करा ऐसा सूत्र अर्थ टीकादिक कहीं भी नहीं कहा. तो सूत्र से अतिरिक्त बतलाया करके भगवान् महावीरजी को क्लेश करने का कलंक देना अच्छा नहीं. भगवंत ने तो पिशाच जीतने का स्वप्न देखा परंतु पिशाच से क्लेश किया ऐसा स्वप्न तो कहीं भी नहीं और यह भी विचारो कि छद्मस्थ पने में पिशाच को जीते. और केवल पने में इसी पिशाच का जीतना यथातथ्य स्वप्न दे

कहा और यथातथ्य स्वप्न का देखना चित्त समाधि रूप धर्म ध्यान में है फेर अति महत्वता श्रीमुख से कही तो फिर भगवंत तो महत्वता कहते हैं और तुम चूकना किस भगवान् का वचन से कहते हो और सिद्ध करते हो सो जरा बुद्धि से विचारो, और समुद्र का तिरना रूप समुद्र का समाधान ऐसे समझना कि कच्चा पानी का संघट्ट नहीं करना भी भगवंत ने फुरमाया और कारण से नदी उतरने का भी विधिवाद श्रीभगवंत ने फुरमाया, तो भगवन के विधिवाद आज्ञा से साधु भी नदी उतरते हैं और तुम भी साधुपने में कुछ भी दोष नहीं उतरने का कहो, फिर हो, तो फेर प्रत्यक्ष नदी उतरने से कच्चा पानी को उपमर्दन होने से तो तुम साधु को चूकना नहीं कहना हो तो फिर भगवन तो स्वप्न में समुद्र तिरे परन्तु साक्षात् समुद्र तिरे नहीं, तो भगवन्त को चूके कहने में कितनी बड़ी आशातना होती है सो सोच के अब भी छोड़ देवो ?

पूर्वपक्ष-नदी का तिरना तो साधु को कारण से है और विधि आज्ञा भी है परंतु समुद्र तिरण का क्या कारण है और विधि आज्ञा भी क्या है ?

उत्तर पक्ष-हे मित्रो ! तुमने दश स्वप्नों का फल सहित सूत्रपाठ भगवतीजी का १६ मा शतक का छठा उद्देश में या ठाणांग का दशमा ठाणा से अच्छी तरह से शुद्ध समकितवंत विद्वान् गुरुमुख से सुना होता तो यह तर्कना नहीं उत्पन्न होती परंतु फिर अब भी सूत्रपाठ एकाग्रचित्त से सुनिये कि भगवंत का तिरने का स्वप्न और पिशाच को जीतना रूप स्वप्न का

देखना सार्थक यानी परमार्थ सहित कहा कि निरर्थक कहा है सो सूत्रपाठ लिखते हैं सुनिये।

सूत्र-जणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं, महं, घोररूवं, दित्तधरं, ताल, पिसायं, सुविणे, पराजियं, पासित्ताणं, पडिबुद्धे, तंणं, समणेणं, भगवया, महावीरेणं, मोहणिज्जे, कम्मे, मूलउ, ग्घातिउं ॥ १ ॥ जंणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं, महंसागरं, जावपडिबुद्धे, तंणं, समणेणं, भगवया, महावीरेणं, अणादीए, अणवदग्गे, जाव, संसार, कंतारे, तिणे इति सूत्रपाठः

अस्यार्थः-जंणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं, महं, घोररूवं, दित्तधरं, तालपिसायं, सुविणे, पराजियं, पासित्ताणं, पडिबुद्धे के जेह श्रमण भगवंत श्रीमहावीर स्वामी एक मोटा भयानक रूप दीप्ति धर ताल पिशाच प्रेत स्वप्न ने विषे जीतो एहवो स्वप्न ने विषे देखी ने जाग्या-तंणं, समणेणं, भगवया, महावीरेणं, मोहणिज्जे, कम्मे, मूलओ, घातिओ, के तेह समान श्रमण भगवंत श्रीमहावीरे मोहनीय कर्म मूल थकी घात कीधो ॥ १ ॥ जंणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं, महं सागरं, जाव, पडिबुद्धे, के जेह श्रमण भगवंत श्रीमहावीर स्वामी एक-मोटो सागर यावत् प्रति देखी जाग्या, तंणं, समणेणं, भगवया, महावीरेणं, अणादीए, अणवदग्गो, जाव, संसार, कंतार, तिणे, के-तेह 'श्रमण भगवंत श्रीमहावीरे जेहनी आदि नहीं तथा जेहनी अंत नहीं यावत् संसार कांतार तिर्यो ॥ इति सूत्रार्थः ॥

यह सूत्र भगवतीजी और ठाणांगजी में एकसाही कथन है इति।

यहां सूत्र के मूलपाठ में कहा कि श्रीभगवान् पिशाच

को जीते जिस समान मोहकर्म को जीते और जो श्रीभगवत्
समुद्र को तिरे जिस समान श्री भगवान् संसार समुद्र को तिरे
तो हे बुद्धिमानो ! जरा विचारो कि जिस स्वप्न के देखने में
महाघोर जो मोहकर्म के जितने रूप और महा संसार रूप
समुद्र तिरने रूप प्रयोजन है तो फिर इससे ज्यादा क्या कारण
यानी परमार्थ श्रद्धने का प्रयोजन होता है सो जरा गंभीर
बुद्धि से विचारो और यह भी ख्याल करो कि एक ग्राम
नगर या देश में रहने से प्रतिबद्ध का प्रसंग करके चारित्र
मलिन होजाता है इससे चारित्र का निर्मलपना रखने के वास्ते
साधु नदी अधिक उतर करके भी विहार करजाते हैं तथापि
भगवन् की आज्ञा को उल्लंघन नहीं करते हैं और अन्यथा बिना
कारण से साधु एक बिंदुमात्र भी अपकाय की उपमर्दना करे
तो सूत्र निशीथ जी का १२ मा उद्देश का ६ सूत्र में लघु चातुर्मास
प्रायश्चित कहा है. तो विचारना चाहिये कि थोड़ी सी भी चारित्र
की शुद्धि के वास्ते साधू नदी उतर जावे तो दोष नहीं, तो फिर
मात्र स्वप्न में समुद्र तिरने से संसार समुद्र को तिरजाय और मोक्ष
का लाभ होवे उस परमार्थरूप स्वप्न को देखने में पाप लगना
या चूक जाना कहना कौन बुद्धिमान् का काम है. हां अन्यथा
अपकाय का संघट्टा से चारित्र विराधना होती है. तैसे ही
यथातथ्य स्वप्न के सिवाय विकल्परूप जजाल में विराधना होती
है परन्तु भगवंत जिस स्वप्न की महत्त्वता फुरमाई और प्रशंसा
करी उसमें किसी तरह से दोष सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्ष-क्या आप नहीं जानते हो कि आवश्यक सूत्र में
पगामसिज्झाय की पाटी में (सुयण, वत्तियाए) ऐसा पाठ है.

इसमें सकट स्वप्न निद्रा में देखा होय तो मिच्छामि दुक्कडं इसी पाटी के अन्त में है तो फिर स्वप्न देखना अच्छा यानी श्रेष्ठ कैसे होवे.

उत्तरपक्ष-हे भोले भाइयों! इसका अर्थ तुमने अच्छी तरह से जाना. सूत्रपाठ में भी तुम्हारी दृष्टी नहीं पहुंची. परंतु हम तुम्हारे हितार्थ के लिये सूत्र पाठ सहित लिखते हैं सो सुनिये ॥

सूत्र-आउत्त, मउत्ताए, १ सुवण, वत्तियाए. २ इत्थि. विप- रियासियाए. ३ दिट्ठी, विपरिया, सियाए. ४ मण, विपरिया, सियाए. ५ पाण, भोयण, विपरियासियाए. इति ॥

अस्यार्थः—इस का टबा से भावार्थ ऐसा है कि भोग से आकुल व्याकुल चित्त विभ्रमहो १ स्वप्नमांई अनेक चित्र कौतुक देखने करि २ स्वप्नमांही स्त्रीके भोगों की वांछा से स्त्री का स्नेह स्वप्नमांहि उत्पन्न होवे यानी सम्भोगकर नजर स्वप्न में हुवे. ४ स्वप्नमांहि जो विहार उपवास में वस्तु भोजन पान करना. अकल्पनीक वस्तु खाना पीना. यह पूर्वोक्त बातें स्वप्न में होवे. इनको सुवण, वत्तियाए ऐसे कहते हैं. यह टबे का भावार्थ लिखा. अब टीका का भावार्थ संक्षेप से लिखते हैं. प्रथम जो लिखे सूत्र के ६ पद हैं जिनमें आदि के २ पद यानी आउत्त, मउत्ताए, सुवण, वत्तियाए. इन दो पद की व्याख्या पीछे है और पीछे के चारपद यानी इत्थि. विपरियासियाए. १ दिट्ठी विपरियासियाए. २ मण. विपरियासियाए. ३ पाण. भोयण विपरियासियाए. ४ इन चारपद की व्याख्या पीछे है.

इसमें व्याकरण के नियमानुसार अच्छी तरह से अर्थ होता है (इत्थि, विपरियासियाए) साधू को स्त्री नहीं सेवने योग्य है उसको सेवने के भावमें विपरियासिया, कहिए १ (दिट्ठि, विप्परियासियाए) स्त्रीका विपरीत पना करके दृष्टि विपरीत होय है.

(मण, विपरियासियाए) दृष्टि विपरीत होने से मन विपरीत होता है मन स्त्री में नहीं रखणा. इसवास्ते विपरीत होय है. ३ (पाण, भोयण, विपरियासियाए,) जो मन की विपरीतता सु नहीं विपरीत होवे तो उस विपरीतता करके पान भोजन में विपरीत होय है. रात्रि में अथवा दिन में अष्टपनीक या एक भक्त से अधिक या उपवास में भोग लिया तो पाण, भोयण, विपरीयास हुवा (सुपण, वत्तियाए) यह पूर्वोक्त काम नहीं करने योग्य स्वप्न में करलेवे उसको स्वप्नादि यानी सुपणा वत्तिया कहते हैं ५ (आउल, माउलाए) अनि आकुलता करके साधू स्वप्न में काम भोग पर आकुला करे ऐसा मन स्वप्न में होवे उसको मिच्छामि दुक्कडं है. इति

इसकी मूलटीका आवश्यक जी सूत्र में देखलेना इसमें यहां ग्रंथ गौरव के भय से संक्षेप से भावार्थ लिखा है अब बुद्धिमान पुरुषों विचारो कि टीकाकारजी और टबाकार जी स्पष्ट रीति से लिखते हैं कि विपरीत काम का स्वप्न यानी स्त्री आदिक का संसर्ग करने से मिच्छामि दुक्कडा है तथा तुम्हारे भ्रमविध्वंसन में भी इस विषय का ऐसा अर्थ किया है (सुपण वत्तियाए) कहतां सुपना में जंजालादिक देखवे करी तथा आगलकभे (पाण भोयण, विपरियासियाए) कहतां सुपना में पाणी नो पीवो भोजन नो करवो ते अतिचार नो मिच्छामि

सुकड़ो. इहां स्वपना जंजालादिक जूठा साधुने आवना कहा है इति–

भ्रमविध्वंसन का पत्र ७६ ओली ३॥

वाह ! यह लेख देखके विचारना कि यथातथ्य स्वप्न का भगवंतने किसी सिद्धांत में प्रायश्चित नहीं कहा है. बल्कि समवायांग भगवती. स्थानांग. दशाश्रुतस्कंध में यथातथ्य स्वप्न की भगवंतने प्रशंसा और संसार समुद्र तिरने का फल कहा है भावधर्मरूप चित्त समाधि में यथातथ्य स्वप्न कहा. और हे बाल मित्रो ! तुमने स्वप्न को एकांत सावद्यकर्म में कह दिया. वाहरे मित्रो ! तुमारा भोलापन. तुमने प्रत्यक्ष प्रमाण का भी कुछ ख्याल नहीं किया. कि प्रत्यक्ष में कईक साधु श्रावक समदृष्टि को ऐसे स्वप्न भी आते हैं कि स्वप्न में गुरु महाराज का दर्शन किया. और गुरु महाराज का व्याख्यान सुना. किसीसाधुने स्वप्न में स्वाध्याय किया. किसीने नोकारगुणा. कहो भाई यह काम सावद्य है कि निरवद्य है.

पूर्वपक्ष–गुरु महाराज का दर्शन करना. स्वाध्याय करना. नवकार स्मरण यह कार्य तो निरवद्य है.

उत्तरपक्ष–तो हे भाई ! तुम तेरापंथियों ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि सब स्वप्न सावद्य कर्म है. अफसोस है कि ऐसी प्रत्यक्ष बात का भी तुमको ज्ञान नहीं हुवा. तो फिर सिद्धांत की बात को क्योंकर समझ सकोगे और समुद्र तिरना जिहाज का जीतना. सावद्य कर्म कहते हो तो साधु का नदी उतरना. साध्वी जल में डूबती हुई को साधु काढे, यह सूत्र ठाणांग ४ का उस ठकाणे में बताते. तो कहो भाई यह प्रत्यक्ष

जल की उपमर्दन का कार्य निरवद्य कहते हो कि सावद्य. अगर कहोगे कि इन कामों की सूत्र में आज्ञा है. इससे निरवद्य है तो विचारो कि सूत्र में तो विधिवाद आज्ञा है. कि साधु कारण से नदी उतरे तो इस तरह से उतरना परंतु अवश्यमेव नदी को उतरनी ही चाहिये ऐसी आज्ञा नहीं. और चित्त समाधि को तो अवश्यमेव प्राप्त करने की सूत्र में श्रीभगवान ने एकांत आज्ञा फरमाई है. सो हमने ऊपर सूत्र के मूलपाठ से लिखा है. और यथातथ्य स्वप्न का देखना, चित्त समाधि को श्रीगुरु से कहा है और हमने सूत्र के मूलपाठ से लिखदिया है सो समझ लेवो. भ.ई कि मत्यक्ष नदी उतरने से साधु को विराधिक पना नहीं तो यथातथ्य स्वप्न को देखना तो मात्रधर्म चित्त समाधि का कार्य है तो ऐसे उत्तम कार्य में तो चारित्र का विराधना या चूक आना मुनि को होवे ही कैसे. अपितु, कभि नहीं होवे. चेतो चेतो चेतो. अब भी सूत्र वचन श्रद्धो यही आत्मा का कल्याण है. इति तजो इत्वाद भजो अप्रमादं ॥ १ ॥

इतना सिद्धांत का पाठ सहित हमने खुलासा भव्य प्राणियों के हितार्थ के लिये किया है तथापि दश स्वप्न का फल सहित पाठ सर्व भव्यों के लिये या जिनका भगवंत के स्वप्न देखने में चूक जाने की शंका है उनके लिये विस्तार से सूत्रपाठ लिखते हैं

सूत्र ॥ जणं, समणे, भगवं महावीरे, एगं, महं, घोररूवं, दित्तधरं, तालपिसायं, सुविणे, पराजियं. पासित्ताणं, पडिबुद्धे, तंणं, समणे, णं, भगवया, महावीरेणं, मोहणिज्जे, कम्मे, मूलउग्घातिउ. ॥ १ ॥

जणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं, महं, सुक्किलं, जाव, पडिबुद्धे, तंणं, समणे, भगवं, महावीरे, सुक्कज्झाणो, वगए, विहरइ ॥ २ ॥

जंणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं, महं, चित्तविचित्त, जाव, पडिबुद्धे, तेण, समणे, भगवं, महावीरे, विचित्तं, ससमय, परसमय, दुवाल, संगं, गणिपिडगं, आघवेति, पणवेति, परूवेइ, दंसेइ, निदंसेइ, उवदंसेइ, तंजहा, आयारं, सूयगडं, जाव, दिट्ठिवायं ॥ ३ ॥

जणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं महं दामदुगं, सव्वरयणामयं, सुविणे, पासित्ताणं, पडिबुद्धे; तंणं, समणे, भगवं, महावीरे, दुविहे धम्मे, पणवेइ, तंजहा, आगार, धम्मवा, अणगार, धम्मं, वा; ॥ ४ ॥

जणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं, महं; सेय, गोवग्गं, जावपडिबुद्धे, तंणं समणस्स, भगवउ, महावीरस्स, चाउवण्णाइं, समणसंघे, पणत्ते, तंजहा,–समणाउ, समणीउ, सावियाउ, सावियाउ ॥ ५ ॥

जणं, समणे, भगवं; महावीरे एगं, महं, पउमसरं, जाव-पडिबुद्धे, तंणं, समणे, जाव महावीरे, चउव्विहे, देवे, पन्नवेइ, तंजहा भवणवासीः वाणमंतर, जोइसिए, वेमाणिए, ॥ ६ ॥

जणं, समणे, भगवं, महावीर, एगं महं सागरं, जावपडिबुद्धे, तंणं समणेणं भगवया महावीरेणं अणादीए अणवदग्गोः जाव संसार कंतारे तिणे ॥ ७ ॥

जणं, समणे, भगवं, महावीरे, एगं महं, दिणयरं, जाव-

पड़िबुद्धे, तणं समणस्स भगवउ, महावीरस्स, अणंते अणुत्तरं जाव केवल वरणाण दंसणे, समुप्पण ॥ ८ ॥

जणं समणेणं जाव वीरेणं एगं महं दारिय वेरुलिय जाव पड़ियुद्धे तणं समणस्स भगवउ महावीरस्स उराला कित्तिवण सद्दसिलोयास देव मणुया सुरे लोगे. परिभवन्ति, इति, खलु, समणे भगवं, महावीरे इति खलु० २ ॥ ६ ॥

जणं, समणें, भगवं, महावीरे, मंदिरे, पव्वए, मंदिर, चूलियाए, जाव, पड़िबुद्धे, मणं, समणे, भगव, महावीरे, सदेव, मणुया, सुराए, परिसाए, मज्झगए, केवली, धम्मं, आघेवइ, जाव, उवदं, सेइ, ॥ १० ॥ इति सूत्रपाठ ः ॥

सूत्र ठाणांग का दशवां ठाणा का यह पाठ है. और भगवती जी का १६ मां शतक का छठा उद्देश में भी ऐसा ही पाठ है. इसका अर्थ सुगमही है. तथापि संक्षेप से लिखते हैं.

जो भगवंत स्वप्न में पिशाच को जीता. तिस समान भगवंत ने मोहकर्म को घात किया ॥ १ ॥ अरु जो भगवंत उज्व लपंखवाला कोकिल पक्षी स्वप्न में देखा. तिस समान भगवंत शुक्ल ध्यान में अरूढ हो के विचरे. ॥ २ ॥ अरु जो भगवंत चित्र विचित्र पंखवाला कोकिल पक्षी स्वप्न में देखा. तिस समान भगवंत ने विचित्र स्वसमय के पर समय के भाव यानी कथन सहित द्वादश अंगरूप आचार्य की सिद्धांत की पेटी प्ररूपी. आचारांग से ले के यावदृष्टि वाद पर्यंत ॥ ३ ॥ अरु जो भगवंत एक रत्न की माला का युगल यानी जोड़ा स्वप्न में देखा. तिस समान भगवंत ने दो प्रकार का धर्म प्ररूपा-आगार धर्म, और अणगार धर्म ॥ ४ ॥ अरु जो श्रमण भगवंत ने

वर्ग यानी गायें का यूथ देखा. तिस समान भगवंत ने कीर्णज्ञानादि गुण करके युक्त ४ वर्ण श्रमण संघ प्ररूपै साधु ाध्वी, श्रावक, श्राविका. ॥ ५ ॥ अरु जो भगवंत १ मोटा ा सरोवर स्वप्न में देखा. तिस समान भगवंत चार जाति देवता प्ररूपे. भवणवति, वाणमंत्रा, ज्योतकी, विमाणिक. ६ ॥ अरु जो श्रमण भगवंत महावीर जी एक मोटा समुद्र निक कलोलों से संकीर्ण को भुजा से स्वप्न में तिरे. तिस मान भगवंत अनादि अनंत दीर्घ चतुर्गति रूप महाअर्णव यानी सार समुद्र को तिरे ॥ ७ ॥ अरु जो भगवंत एक मोटा दिन र यानी सूर्य करणों करके देदीप्यमान स्वप्न में देखा. तिस मान भगवंत को जिसका अंत नहीं, प्रधान ऐसा केवल ज्ञान रु केवल दर्शन उत्पन्न हुवा ॥ ८ ॥ अरु जो भगवंत एक ोटा वैडूर्य रत्नमय मानसोत्तर पर्वत को अपनी आंतों से एक रिवीटा, अनेक वीरवीटा, ऐसा स्वप्न देखा तिस समान भग ान की उदार प्रधान तीन लोक में कीर्ति फैली ॥ ९ ॥ अरु ो श्रमण भगवंत महावीर स्वामी, एक मोटा मेरुगिरि तिसकी ूल का ऊपर सिंहासन पर आप बैठे हुए स्वप्न देखा. तिस समान भगवंत देवता मनुष्यों की सपदा में बैठके धर्मोपदेश ेते भये. ॥ १० ॥ इति संक्षेप स्वप्नार्थ. अब विचारो रे बुद्धि ानों की भगवंत के स्वप्न में देखने में कैसा महत्वता की श्लाघा ौर प्रधानता है कि जिन स्वप्नों को रात्रि के विषे देखें और देन में केवल ज्ञान को प्राप्त हुए हैं क्योंकि सूत्र के पाठ में कहा कि छद्मस्थपने की देखी रात्रि में ऐसे ऊपर लिखे मुजा वेके केवल ज्ञानादि महत्व फल का महास्वप्न आये हैं तो है

भाइ! अबतो चेत जावो,चेतजावो,सूत्र में, टीका में,अर्थ में,भग
वंत के स्वप्न मोहकर्म में या चूक जाने में कहीं भी नहीं का
है, तो हे मित्रों यथातथ्यस्वप्न को देखने से भगवंत को चूक
जाने कहने रूप महापाप से बचजावो यह हमारा हितपूर्वक
नम्रता से चेत कराना है।

पूर्वपक्ष-क्या यथातथ्य स्वप्न देखने से संसार समुद्र के
तिर जाय और तिर जाय तो फिर संयम लेने का क्य
प्रयोजन है.?

उत्तरपक्ष-भाई यथातथ्य स्वप्न में समुद्रादि तिरने स
संसार समुद्र भगवंत तिर गए. ऐसा कथन मूल पाठ से दिख
चुके और अर्हंत गणधरजी महाराज जिस बात को कह चुके
तो फिर सिद्धांत का मूल पाठ को छोड़ के विपरीत बात क
बुद्धिमान् तो कभी नहीं उठावे. और संयम लेने का क्य
प्रयोजन है यह भी भोले भाई का विपरीत तर्क है क्योंकि
प्रथम तो हम ऊपर कथन ही कर आए हैं कि सूत्र दशाश्रुत
स्कंध के पंचमे अध्ययन में वैसे गुणवंत साधु साध्वी क
वैसा स्वप्न आता है और जो समुद्रादि तिरने का यथातथ्य
स्वप्न देखेगा. वह निश्चय संयम लेवेगा और संयम लेवेग
वह ही स्वप्न वैसा देखेगा दूसरा सामान्य पुरुष या स्त्री वैसा
स्वप्न नहीं देखेगा सो फिर हम तुम्हारे हित के लिये सूत्र
भगवती जी का शतक १६ मा उद्देश छठा में स्वप्न का माहात्म्य
चला सो लिखते हैं. स्त्री या पुरुष स्वप्न के मध्य में घोड़ों की
पंक्ति हस्तियों की पंक्ति देखता हुवा उनके ऊपर चढ़ा ऐसा
अपने आत्मा को मान यानी उनके ऊपर चढगया ऐसा देख

के तत्काल जाग जावे तो वह इसी भव में मोक्ष जावे १. ऐसे ही कोई पुरुष या स्त्री स्वप्न में एक रस्सी पूर्व पश्चिम में लंबी दोनों तरफ समुद्र में फसी ऐसी देखके उसको इकट्ठी करे. इकट्ठी मैंने करली ऐसी निश्चयता देख करके उसी क्षण में जागे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे २. ऐसे ही स्वयं रस्सी को छेदना देखे. यानी रस्सी को मैंने काट डाली ऐसा स्वयं देखे वह भी उसी भव में मोक्ष जावे ३. ऐसे ही पंच वर्ण का सूत्र को उवेले खुल जाय ऐसा स्वयं देखे तो वह उसी भव में मोक्ष जावे ४. ऐसे ही लोहे तांबे तरु वा शीसा इनकी राशि को देखे उनपर चढा हुवा माने यानीं उनपर मैं चढगया ऐसा स्वप्न देखे वह दो भव करके मोक्ष जावे ५ ऐसे ही सुवर्ण. रूपा. रत्न. वज्र. इनकी राशि पर स्वयं चढा हुवा स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ६. ऐसे ही घास काष्ठ. गोबर इनकी राशि को और कचेर की राशि को विखेरी हुई देखे यानी पूर्वोक्त राशि को मैंने विखेर डाली ऐसा स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ७ ऐसे ही अनेक प्रकार के स्तंभ को मैंने उखाड़ डाले ऐसा स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ८ ऐसे ही दूध. दधि. घृत. मधु. इनके घड़े को स्वयं तोड़ा हुवा स्वप्न में देखे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे ६ ऐसे ही मदिरा का घडा चर्बी का घड़ा उनको स्वयं फोडे ऐसा स्वप्न देखे वह पुरुष दो भव से मोक्ष में जावे १० ऐसे ही पद्मसरोवर फूलों से छाया हुवा आप गिरा ऐसा स्वप्न देखे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे ११ ऐसे ही एक मोटे सरोवर में सैकड़ों कल्लोलों सहित स्वप्न में देखे

उदय में है. परन्तु स्वप्न दर्शन मोह कर्म का उदय कोई सिद्धांत में नहीं कहा है. बस इतने लेख का सारांश यह है कि स्वप्न मोह कर्म में नहीं.अपितु क्षयोपशम भाव में है. और नोइन्द्रिय मतिज्ञान का भेद में है. सो सूत्र से सिद्ध किया. और स्वप्न देखने से भगवंत को चूकना कोई प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है. और बहुत सिद्धांत पाठ से सिद्ध कियाहै सो सज्जन पुरुष समदृष्टि ने समझ लेना. इति स्वप्न का यथार्थ निर्णयः ॥

पूर्वपक्ष-हमने और भी कारण चूक जाने के विषय के प्रश्नोत्तर के पृष्ठ पहिले में कहे हैं. प्रथम प्राणातिपात जीव की हिंसा करलेवे १ दूसरा मृषावाद झूंठ बोल लेवे २ तीसरा चोरी कर लेवे ३ चोथा शब्द. रूप. रसगंध. स्पर्श. में रतिभाव मान लेवे. ४ पांचवा पूजा श्लाघा में हर्ष लावे.,५ छटा सावद्य आहारादिक भोग लेवे. ६ सातवां प्ररूपणा के अनुसार नहीं चले. ७ इन सात बोलों से साधु छद्मस्थ कहा जाता है) यह हमारा लेख है और भगवंत भी छद्मस्थ थे चूक जावे इसमें क्या आश्चर्य है.

उत्तर पक्ष-हे अल्प बुद्धिवाले मित्रों तुम्हारा प्रथम कारण स्वप्न देखने से ही चूकना किसी सिद्धांत से सिद्ध नहीं हुवा तो दूसरा तो होवे ही कहां से तथापि हम तुम्हारे हित के लिये इसका भी उत्तर लिखते हैं ध्यान लगा कर सुनिये. प्रथम तो हमारा पूछना भगवंत महावीर स्वामी का था. और तुमने छद्मस्थ का चूक जाना बतलाया और भगवंत को चूक जाना ठह राया. पर ऐसे हुवा किसी बुद्धिमान ने किसी साधु महा पुरुष भगवंत की आज्ञा में चलने वाले के गुण वर्णन किये कि यह

पापी ही तुमको मानने पड़ेंगे तो फिर तुम्हारे छद्मस्थ गुरु जी को साधु कैसे मानते हो. सो तुम तेरे पंथीजीजरा मध्यस्थता से विचार लीजियेगा और सर्व छद्मस्थ मुनि को तुम सात बातों के सेवने वाले या चूक जाने वाले मानोगे तब तो तुम को एक श्री महावीर प्रभु जी को छद्मस्थ अवस्था में चूके मानने से फिर तुम को ऋषभदेव जी आदिक तेईस तीर्थंकर परमेश्वर भी छद्मस्थ अवस्था में रहके पीछे केवल ज्ञान पाए हैं तो उनको भी छद्मस्थ अवस्था में तुम को चूके श्रद्धने पड़ेंगे अगर फिर मतपक्ष के लिये ऐसी विपरीत श्रद्धा करके सर्व छद्मस्थ तीर्थंकर भगवान् को चूके मान लेवोगे तब तो तुम सर्व तीर्थंकर भगवान् की आशातना करने के भागी बनने से अनंत संसार में परिभ्रमण करने रूप और दुर्लभ बोधरूप महा मिथ्यात्व मोहनी कर्मबंध को हासिल करने वाले ठहरोगे सो जरा जन्म मरण का भय होवे तो तुम तेरेपंथी विचारना.

पूर्वपक्ष–जब सात प्रकार से छद्मस्थ जानना ऐसा सूत्र ठाणांग जी में कैसे कहा ?

उत्तरपक्ष–भाई सिद्धांत के वचन तो अनेकांत और सापेक्ष हैं सो सिद्धांत का आशय तो यह है कि यह सात कार्य छद्मस्थ को लागे परन्तु केवली को नहीं तो जो छद्मस्थ हिंसादिक करे उसको उस पाप का भागी कहना. परंतु सर्व छद्मस्थ मुनि पूर्वोक्त सात कार्य के कर्ता नहीं सो हम तो ठाणांग जी के वाक्य को ऐसे श्रद्धते हैं और तुम को भी ऐसे सौंज श्रद्ध के श्री भगवान् महावीर जी की आशातना छोड़नी

उचित है नहीं तो तुम्हारा श्रद्धा से छद्मस्थ पन में साधुप
ही नहीं ठहरेगा सो विचार लीजियेगा.

पूर्वपक्ष-हम ने प्रश्नोत्तर के तीसरे पृष्ट की पहली पंक्ति
से के २५ मी तक लिखी है जिसका मतलब यह है कि १
गौतम स्वामी जी महाराज आनंद श्रावक को अवधिज्ञा
विषय का उत्तर देने में चूके हैं विचारिये जैसे केवल ज्ञान
प्रथम श्री भगवान में ४ ज्ञान थे और गौतम स्वामी ४ ज्ञा
छते चूके हैं तो वैसेही श्री भगवान् के भी छद्मस्थपने में च
जाने का असंभव नहीं यह हमारा लेख है इसका मतलब
गया है.

उत्तरपक्ष-हे मित्र यह तुम्हारा लेख विभ्रम है. क्योंकि
गौतम स्वामीजीका खलाने का दाखला देके श्रीभगवान् के
चूके कहना अति अज्ञानता का काम है. क्योंकि गौतमस्वा
जीको और श्रीभगवानका सदृशपना नहीं है सो देखो १
भगवान तो देवलोक से चवके गर्भमें आये तहांभी तीन ज्ञा
सहित आये. और दीक्षा लेतेही चौथा ज्ञान उत्पन्न हुव
वैसे गौतम स्वामीको दिक्षा लेने से चौथाज्ञान उत्पन्न नहीं हु
और ३ ज्ञान सहित गर्भ में भी नहीं आये और भगवान
कल्पातीत और गौतमस्वामी स्थिवर कल्पी. तथा भगवान
स्वयंबुद्धि और गौतमस्वामी भगवानके उपदेश से बोध पाये
इत्यादिक श्री भगवान के और गौतमस्वामीजी के बहु
विषय का फर्क है सो गौतमस्वामीजी के खलनाने से श्रीभ
वान को चूके कहना. महामिथ्यात्व का प्रताप है तथा यह भी
विचारो कि प्रथम तो गौतमस्वामीजी आनंद श्रावक को उत्त

देने में खलना पाये तभी भगवंतने उनको खलना बतलाई. परन्तु गौतम स्वामीजी की खलना से श्रीभगवंत की खलना किस पाप से बनाते हो. क्या यह नियम है कि एक ४ ज्ञानवाला खलना पावे तो वैसे सर्वही ४ ज्ञानवाले खलनापावे इस गोलमाल लेख से तो पूर्वोक्त छद्मस्थ का समुच्चय कथन में भगवन्त को चूक जाने कहने में जो दोष आते हैं. वैसे यहां भी आते हैं सो यह कहना बिलकुल अनुचित है क्योंकि गौतमस्वामीजी को तो आनंदका सम्बंध से खलना होने से ही खलना कहा है परंतु श्री भगवान में तो कोई खलनाका कारण किसी सूत्र में नहीं है तो फिर तुम क्योंकर छातीचलाकर परमेश्वर दोष ठहराते हो. और स्वप्नको कारण बतलाया वह तो बिल्कुल जैनसिद्धान्त से विरुद्ध है सो हम ऊपर अच्छी तरह से सूत्रपाठ सहित खुलासा कर चुके हैं.

पूर्वपक्ष—स्वप्नके सिवाय औरभी तीन कारण हमने भगवंत के प्रश्नोत्तर के चौथे पृष्ठ की तीसरी पंक्ति से लेकर १३ पंक्ति तक लिखे हैं कि

(ख) श्री भगवान महावीर वर्धमान गोशाला से डरे थे यह बात भगवती सूत्र के १५ वे शतक में है

(ग) और श्री भगवान महावीरस्वामी ने गोशालाको [illegible] बतलाया और उसने भगवंतके वचनसे [illegible] करने के लिये उपद्रव किया यह बात सूत्र भगवती के १५ शतक में है

(घ) श्री भगवान ने तेजु शीतल लेश्या प्रगट करके गोशाले को बचाया. और लेश्या फोरने से उपन ३ उत्कृष्ठ

उचित है नहीं तो तुम्हारा श्रद्धा से छद्मस्थ पन में साधुपना ही नहीं ठहरेगा सो विचार लीजियेगा.

पूर्वपक्ष-हम ने प्रश्नोत्तर के तीसरे पृष्ट की पहली पंक्ति से ले के २५ मी तक लिखी है तिसका मतलब यह है कि श्री गौतम स्वामी जी महाराज आनंद श्रावक को अवधिज्ञान विषय का उत्तर देने में चूके हैं विचारिये जैसे केवल ज्ञान से प्रथम श्री भगवान् में ४ ज्ञान थे और गौतम स्वामी ४ ज्ञान छते चूके हैं तो वैसेही श्री भगवान् के भी छद्मस्थपने में चूक जाने का असंभव नहीं यह हमारा लेख है इसका प्रत्युत्तर दिया है.

उत्तरपक्ष-हे मित्र यह तुम्हारा लेख विभ्रम है. क्योंकि गौतम स्वामीजीका खलाने का दाखला देके श्रीभगवान् को चूके कहना अति अज्ञानता का काम है. क्योंकि गौतमस्वामी जीको और श्रीभगवानका सदृशपना नही है सो देखो श्री भगवान तो देवलोक से चवके गर्भमें आये तहांभी तीन ज्ञान सहित आये. और दीक्षा लेतेही चौथा ज्ञान उत्पन्न हुवा वैसे गौतम स्वामीको दिक्षा लेने से चौथाज्ञान उत्पन्न नहीहुवा और ३ ज्ञान सहित गर्भ में भी नहीं आये और भगवान तो कल्पातीत और गौतमस्वामी स्थिवर कल्पी. तथा भगवान तो स्वयंबुद्धि और गौतमस्वामी भगवानके उपदेश से बोध पाये इत्यादिक श्री भगवान के और गौतमस्वामीजी के बहुत विषय का फर्क है सो गौतमस्वामीजी के खलनाने से श्रीभगवान को चूके कहना. महामिथ्यात्व का प्रताप है तथा यह भी विचारो कि प्रथम तो गौतमस्वामीजी आनंद श्रावक को उत्त

देने में खलना पाये तभी भगवंतने उनको खलना बतलाई. परन्तु गौतम स्वामीजी की खलना से श्रीभगवंत की खलना किस पाप से बताते हो. क्या यह नियम है कि एक ४ ज्ञानवाला खलना पावे तो वैसे सर्वही ४ ज्ञानवाले खलनापावे इस गोलमाल लेख से तो पूर्वोक्त छद्मस्थ का समुच्चय कथन से भगवन्त को चूक जाने कहने में जो दोष आते हैं. वैसे यहां भी आते हैं सो यह कहना बिलकुल अनुचित है क्योंकि गौतमस्वामीजी को तो आनंदका सम्बध से खलना होने से ही खलना कहा है परंतु श्री भगवान में तो कोई खलनाका कारण किसी सूत्र में नहीं है तो फिर तुम क्योंकर छातीचलाकर परमेश्वर दोष ठहराते हो और स्वप्नको कारण बतलाया वह तो बिल्कुल जैनसिद्धान्त से विरुद्ध है सो हम ऊपर अच्छी तरह से सूत्रपाठ सहित खुलासा कर चुके हैं.

पूर्वपक्ष—स्वप्नके सिवाय औरभी तीन कारण हमने भगवंत के प्रश्नोत्तर के चौथे पृष्ट की तीसरी पंक्ति से लेकर १३ पंक्ति तक लिखे हैं कि

(ख) श्री भगवान महावीर स्वामी ने गोशाला को दीक्षादी यह वार्ता भगवती सूत्र के १५ में शतक में है

(ग) और श्री भगवान महावीरस्वामी ने गोशालाको तिलका छोड़ बतलाया. और उसने भगवंतके वचनको असत्य करने के लिये उखेड़ डाला. यह वार्ता सूत्र भगवतीजी का १५ शतक में है.

(घ) श्री भगवान ने वेशु शीतल लेश्या मूकर करके ... था. और लेश्या फोड़ने में कथन है उन्होंही

५ क्रिया कही है यह वार्ता सूत्र पन्नवणाजीके ३६ मा प
इस कारण हम भगवंत को चूक कहते हैं.

उत्तरपक्ष—भगवंतने गोशाले को दीक्षादी इसमें क्याप
हुवा सो भगवतको चूक कहते हो.

पूर्वपक्ष—जो गोशाले को दीक्षा नहीं देते तो २ साधु
घात नहीं होती, और भगवंतपर तेजुलेश्या भी गोशाला
मेलता. और मिथ्यात्व भी नहीं बढ़ता तो सर्व काम ऐसे
योग्य को दीक्षा देने से हुए इससे चूके हैं.

उत्तरपक्ष—तो हे भोले भाई तुम ने सूत्र भगवती जी
१५ मा शतक का मतलब अच्छी तरह से नहीं धारण कि
तिसके प्रताप से शंका उत्पन्न हुई है. अब सूत्र का प
सुनिये. गोशाला ने भगवान् से शिष्य होने की प्रार्थना की औ
गोशाला कुपात्र तो पीछे हुवा है परंतु भगवंत ने दीक्षा
उस वक्त कुपात्र नहीं था सो सूत्र पाठ से दिखाते हैं चि
लगा के सुनिये.

सूत्र—तएणंसे, गोसाले, मंखलि, पुत्ते, हट्ठ, तुट्ठे, म
तिरक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, जाव, णमंसित्ताए, वंवंया
तुब्भेणंभंते, ममं, धम्मायरिया, अंहंणं, तुब्भं, अंतेवासी, तरा
अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स रायमट्ठं, पडिसुणे
तराणं, अहं, गोयमा, गोसालेणं, मंखलि, पुत्ते, णंसाद्धिं, पणि
भूमिए. छवासाइं, लाभं, अलाभं, सुहं, दुक्खं, सक्कार, मसक्का
पचाणुब्भवमाणे, अणिच, जागरियं, विहरित्था, ॥ इ
सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः॥तएणंसे, गोसाले, मंखलि, पुत्ते, हट्ठ तुट्ठे,

तिवारते गोसाले मंखलि पुत्र हर्ष संतोषपाम्यो ममं, तिक्खुत्तो, आयाहिणं- पयाहिणं- जाव, णमंसित्ता, एवं, वयासी, के० तुम्हे मने तीन वार जीमणा पासा थीमदक्षिणा इत्यादि यावत् नमस्कार करी इम कहे-तुब्भेणं, भंते, मम, धम्मायरिया, अहणं तुज्झं, अंतेवासी: के० -तुब्देणं वाक्यालंकारे- माहरा धर्माचार्य हूणं वाक्यालंकारे तुम्हारो शिष्य तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, एयमट्ठं, पडिसुणेमि: के० तिवारे हुं हेगोतम गोशालानो मंखली पुत्र नो एहवो वचन सांभलू तएणं, अहं, गोयमा गोसाले,णं, मंखलि पुत्तेणं, सद्धिं, पणिय भूमीए: के०- तिवारे हूं हे गोतम गोशाला मंखलि पुत्रे करी सहित मनोहर भूमिकाने विषे छ वासाइं, लाभ, अलाभ, सुहं, दुक्खं, सक्कार, असक्कारं, पच्चणु- भवमाणे, अणच्च, जागरियं, विहरित्था, के०' छ वर्ष लगे विहार कीधा लाभमते अलाभ मते सुख मते दुख मते. सत्कार मते असत्कार मते अनुभव मानता थका अनित्य जागीका अनित्य चिंता करता थका विचरता थया. ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में कहा कि गोशाले ने तीन वार प्रार्थना करी तब चौथी वार की प्रार्थना से भगवंत ने गोशाला को ग्रहण किया, तो यहां तो वंदनादिक विधि साचवन करके भगवंत अर्ज करी है तो यह विनय का कारणादिक नो योग्यपने का कार्य है तो अयोग्य पीछे हुवा है.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी ने भ्रम विध्वंसन के पत्र ८२ में टीका की साक्षी दी है कि (ए अयोग्य ने भगवान् अंगीकार कीधो ते अखीण रागपणा करीनेहना परचे करी स्नेह अनुकंपाना

सद्भाव थी अने छद्मस्थ छे ते माटे आगमीया कालरा दोषना अजाणवा थकी) यह हमारा गुरु जी का कहना है जिसमे हम कहते हैं कि राग से गोशाला को दीक्षा देने से चूके सिद्ध होते हैं.

उत्तरपक्ष–हेभाई तुमने टीका की साक्षी बताई है परंतु टीका से भी भगवान् को चूकना सिद्ध नहीं होता है जिसका हमखुलासा टीका लिखते हैं परंतु याद रखना कि हम फिर अगाड़ी टीका की साक्षी बतलावेंगे बदलना मत कि हम टीका को नहीं मानते हैं. सुनिये टीका का खुलासा—

टीका–एयंमट्ठं, पडिसुणेमिति, ॥

अभ्युपगच्छामि यच्च तस्याऽयोग्य स्याप्यभ्युपगमनं भगवतस्तदीक्षण राग तया परिचयेनेषत्स्नेह गर्भानुकंपा सद्भावात् छद्मस्थनया. वानागत दोषा नवगमादवश्यं भावित्वा चैतस्यार्थ स्येति भावनीयमिति पणिय भूमी एत्ति. पणित्त भूमेरारभ्य प्रणीत भूमोवा. मनोज्ञभूमौ विहृतवानिति योगः । अणिच जागरियंति अनित्य चिंता कुर्वेमिति वाक्यम् ॥ इति.

टीकार्थः–यह अर्थ मैंने प्रतिसुणाया अंगीकार किया जो इस अयोग्य को भगवान अंगीकार कियो. अक्षीणरागपणा करी. परिचय कछुक स्नेहगर्भ अनुकंपा सद्भाव से छद्मस्थपना करके अनागत दोष का अजानपना करके अवश्य भाविभाव से इतना अर्थ सम्बन्ध भावना करनी योग्य है मनोज्ञ भूमि के विषे विचरता हुवा अनित्य जागरण अनित्य चिंता करता थका. ॥ इति ॥

अब बुद्धिमान विचारो कि इस सूत्र के पाठ अर्थ टीका में यहां भी भगवन चूक गये ऐसा नहीं कहा है तो फिर तु

की सरागता से सेवा करते गुरु सराग से शिष्य को ज्ञानादिक ग्रहण कराते हैं यह कथन सूत्रों में ठाम ठाम में हैं क्योंकि सराग संयमी जो जो धर्म विनायादिक सराग से ही करते है और भी हम तुम से पूछते हैं कि तुम्हारे माने हुए भीषमजी से लगा के आज दिन तक के सर्व तुम्हारे गुरु एक दूसरे की व्यावचादिक सराग से करते कि वीतराग से या चेला करने को यानि तुम्हारे गुरु शिष्य करने को कई कोश बंध जाते है यह सराग से चेला करने जाते हैं कि वीतराग से और व्याख्यान सुनाना गुरु की सेवा करनी एक दूसरे की वंदना करनी यह सराग से करते कि वीतराग से करते हैं क्योंकि वीतराग का जंबूजी महाराज के मोक्ष पधारे पीछे पंचमा आरे के जन्मे को विच्छेद हैं तो तुम्हारे गुरुजी सराग से चेले करते कि वीतराग से इस पर तुम को कहना पड़ेगा कि राग से कदाचित तुम हठ करके नहीं कहोगे तो वीतराग पना से बनही नहीं सक्ता क्योंकि वीतराग पने का तो विच्छेद है।

अब विचारो कि जो राग एकंतपाप में है तो तुम्हारे गुरुजी चेले मूंडने से श्रावक करने से राग भाव उत्पन्न हुवा तो वह राग पाप मे है कि धर्म में है वाह ! रे मित्रो ! ! तुम की बात का परस्पर कुछ भी संबंध नहीं विचारते हो. और भी तुम लोगों को तुम्हारे साधुजी पूज्य के दर्शन करने का उपदेश देते हैं और आखड़ी भी दिलाते हैं कि पूज्यजी का दर्शन किये बिना कुशिल रात्री भोजनादि नहीं सेवना. फिर तुम पूज्यजी के दर्शन करने को गाड़ी घोड़ा रेल आदि की सवारी, मे या पैरों से, जाते हो तो यह तुम्हारा पूज्यजी के

पास जाना राग से होता है. कि वीतराग से सो तुम वीतराग तो होई नहीं किंतु सरागी हो तो सराग से जाना ठहरा तो तुमको पाप हुवा कि धर्म. और आखड़ी दिवाने वाले को क्या हुवा. तब तो भाई झटपट बोल उठते हो कि हमारे गुरुजी का चेलादिक का मूंडना. या हमारे पूज्यजी का दर्शनादिक करना एकांत धर्म में है वाह रे वाह मित्रो तुम्हारी समझ का व्याख्यान कहां तक किया जावे कि आप का गुरुजी का सरागपने से चेले मूंडने में या परस्पर बंदनादिक सरागता से करने में धर्म और भगवंत श्रीमहावीर स्वामी ने थोड़ा सा राग का सद्भाव करके गोशाला को ग्रहण किया. ऐसा टीका का लेख से भगवंत को चूके कहना और पाप लगना बताना यह क्या अंधाधुंध लेख है. अफसोस है कि वर्तमान के अपने मनमाने पूज्यजी का ढंग पर भी कुछ नजर नहीं डाल के चार ज्ञानवान् भगवंत को चूके कहना और मनमाने को धर्मात्मा कहना विद्वान का काम नहीं है।

पूर्वपक्ष—भगवान ने तो अयोग्य को ग्रहण किया इससे चूके कहते हैं और हमारे गुरुजी तो पहिचान करके चेले मूंडते हैं तिससे उनको चेला मूंडना धर्म में हैं।

उत्तरपक्ष-हे भाई इस अयोग्य विषय का कथन तो हम पूर्व ही कथन करचुके हैं तथापि फिर सुनो कि भगवंत ने गोशाला को ग्रहण करने समय में गोशाला अयोग्य हुवा कि छे वर्ष पीछे हुवा जो कहो कि ग्रहण करने समय में था तो बताइये कि ग्रहण समय में गोशाला की क्या अयोग्यता थी क्या शरीर का हीण था क्या अविनय से भगवान् के साथ

हुवा तो यह तो कभी नहीं सिद्ध होता क्योंकि ४ बार बहुत भगवान को वंदना करके प्रार्थना करी तब भगवंत ने ग्रहण किया श्रौर श्रीमुख से फरमाया कि हे गौतम गोशाला के साथ ६ वर्ष तक प्रणीत यानी मनोहर भूमि में धर्म ध्यान ध्याते हुए हम विचरे. तो विचारो कि ६ वर्ष तक तो श्रीमुख से फरमाया कि अनित्य जागरणा धर्म ध्यान करते हुए रहे तो निश्चय हुवा कि अयोग्य तो पीछे हुवा है इसी वास्ते टीकाकारजी ने भी लिखा है कि अनागत दोष का अज्ञान पणा करके क्योंकि छद्मस्थ थे इससे टीका की साक्षी तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भी भ्रम विध्वंसन में ८२ मां पत्र पर लिखा कि (छद्मस्थ छे माटे आगमीया कालना दोषना अजाण थां थकी कीधो) इति भ्रमः।

अब विचारो कि भाई जो भगवान ने आगमीया कालका अयोग्यपना को नहीं जान के ग्रहण कियातो इसमें २ बातें तो अच्छी तरह से सिद्ध होगई कि आगम्य काल में अयोग्य और अवगुणी हुवा तो वर्तमान काल में ग्रहण करती वक्त तो नहीं हुवा. द्वितीया बात आगम्य कालका दोषका अज्ञान से ग्रहण किया तो इससे भगवंत में किसी प्रकार का दोष रहा ही नहीं क्योंकि भगवंत ने तो अच्छा जान के ग्रहण किया परन्तु आगम्य काल में बुरा हुवा. इसमें भगवान क्याहो भगवंत ने तो उपकारही किया. और उपकारी उपकारको और उसे उपकारमें कोई कृतघ्नी होजाने तो उस कृतघ्नी के दोष है परन्तु उपकारी को दोष किसी शास्त्र में नहीं है क्योंकि उपकारी को तो यह खबर ही नहीं कि यह आगम्य

काल में कृतघ्नी होवेगा. और यह तो तुमलोग और तुह्मारे गुरु मानते हो कि भगवंत ने गोशाला का आगम्य काल में दोप नहीं जाना. जिस से ग्रहण किया तो फिर अवगुण नहीं जाना तो अवगुण का प्रतिपक्ष तो गुण हुवा. और गुण जान के ग्रहण किया तो दीक्षा देने में चूके यहभी कहना मिथ्या ठहरा

पूर्वपक्ष—भगवान ने गोशालापर उपकार किया तो ऐसा कथन किस सूत्र में है.

उत्तरपक्ष-इसी भगवतीजीका शतक १५ वां में जिसवक्त गोशाला समव सरण आके भगवंत को अवर्णवाद बोलनेलगा तिसवक्त सर्वानुभूतिजी और सुनक्षत्रजी ने कहा. तथा भगवंत ने श्रीमुख से कहा कि हे गोशाला जो तथा रूप श्रमण महाण के समीपे एक भी आर्य धर्म सम्बन्धी सुवचनको श्रवणकरे वहभी सुनने वाला अपने धर्माचार्य को वांदे यावत् सेवाभक्ति करे तो. हे गोशाला तुमने तो मेरे से ही दीक्षा पाई यावत् मेरे सेही बहु श्रुति हुवा. और मेरे से ही मिथ्यात्व पना अंगीकार करता हे- तिस वास्ते तू इस तरह मत होवे इति सूत्र भगवतीजी का मूल सूत्र शतक १५ वां से भावार्थ' अब बुद्धि मानों विचारो कि छद्मस्थपन में भगवंत ने गोशालापर उपकार किया. और केवल पनमें कहा कि मैने तेरे उपकार किया है और मेरे सेही मिथ्यात्व धारन करना नहीं चाहिये तो विचारो कि भगवंत ने तो उपकार किया है सो श्रीमुख से वतलाया परंतु भगवंत ने ऐसा तो नहीं कहा कि तेरे ऊपर उपकार किया सो बुरा काम किया या. तेरे वास्ते मैंने दोप

लगाया तो अनंत ज्ञानी उपकार करा कहे तो तुम उस काम को बुरा कहके भगवान की आशातना मतकरो. तथा तुमारे भ्रमविध्वंसन में भी पत्र ८४ मांपर लिखते हैं कि (पहिलो पूतजनम्या विना कुपूत किम हुवे पूत थया कुपूत हुवे. तिम शिष्य कीधा सूं शिष्य कुशिष्य हुवे इणन्याय गोशालो पैला शिष्य थयो छे तिवारे कुशिष्य कह्या वो वली भगवती शतक नवमा उ. ३३ मां में कह्या (एवं, खलु गोयमा, ममं, अंते-वासी, कुसिस्से, जमाली, णामं, अणगारे) इहां जमाली नें कुशिष्य कह्यो. ते पहिली शिष्य थयोहुतो ते माटे कुशिष्य कह्यो तिम गोशाला पिण पहिला शिष्य थयो ते माटे गोशाला नें कुशिष्य कह्यो) इति भ्रमविध्वंसनका लेख ॥

अब बुद्धिमानों विचारो कि तुम्हारा गुरु जी ने गोशाला जमाली को पहले शिष्य लिखे तत्पश्चात् मोह कर्म के उदय से दोनों कुशिष्य हुये हैं और दोनों को दीक्षा देने वाले भगवान हैं तो तुम या तुम्हारे गुरु जी मानते हो कि जमाली को दीक्षा देने में धर्म भगवान को हुवा तो गोशाला को दीक्षा देने में तुम ने पाप कहां से निकाला क्योंकि दोनों ही तो पहिले शिष्य हुये. और वह दोनों पीछे कुशिष्य हुए तो एक में तो धर्म और एक में पाप यह कल्पना कौन बुद्धिमान करे अपितु सत्यवादी तो कभी नहीं करे दोनों ही काम भवितव्यता से हुए हैं और दोनों ही काम में धर्म है.

पूर्वपक्ष-गोशालाको शिष्य करा यह भवितव्यता में कहां है.

उत्तरपक्ष-हे भव्य यह तो भगवती जी की टीका में खुलासा लिखा है और तुम्हारे भ्रम विध्वंसन में ८२ मा पत्र

और अवश्य भाविभाव सो ग्रहण किया इतना टीका में खुलासा है तो भी अर्थ नहीं किया खैर मतपक्ष को छोड़ना मुश्किल है. परन्तु इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रक्खा जो मध्यस्थपन से कोई विद्वान् इस ग्रंथ को देखे तो जरूर मालुम पड़े कि यह ग्रंथ भ्रम को दूर नहीं करता है किं भ्रम को उत्पन्न करता है. अगर हम इस ग्रंथ की भ्रांति का हाल लिखें तो एक बड़ाभारी ग्रंथ बनजावे. जिससे यहां इस विषय का ज्यादा तर्क नहीं करते हैं यहां तो हमने गोशाले को ग्रहण भगवंत ने भाविभाव यानि होनहार से करा ऐसा टीका से और भ्रम विध्वंसन में लिखी हुई टीका से ही यह हमने सिद्ध किया है और जैसे जमाली को भगवान जानते थे कि यह कुशिष्य होवेगा तो भी भवितव्यता यानी होनहार से परमेश्वर ने दीक्षा दी जैसेही गोशाले को भी होनहार से दीक्षा दी यह टीका से ही खुलासा हमने लिखा है तो भी दीक्षा देने से भगवान चूके यह किसी तरह सिद्ध नहीं होता है

पूर्वपक्ष—जमालीजी को भगवंत ने केवलपने में दीक्षा दी परन्तु गोशाले को तो छद्मस्थपने में किंचित् राग से दी इस से रागपना से चूके कहते हैं।

उत्तरपक्ष—हम अभी ऊपर अच्छी तरह से सिद्धांत के पाठ सहित खुलासा कर आए हैं कि छद्मस्थ का तो गुरु का चेले पर और चेले का गुरु पर और भी धर्म विषय में राग रहता ही है क्योंकि सराग संयम के सद्भाव से जो छद्मस्थ सराग संयमी अनंत मुनियों ने छद्मस्थ तीर्थंकरों ने शिष्य किये है वह क्या चूकने में हैं जो तुम्हारे गुरुजी का भी चेला

के वास्ते ॥ इति दीक्षा देने से नहीं चूके इसका सत्य निर्णय
और जो तुम्हारी शंका है कि भगवान गोशाले को दीक्ष नहीं देते तो साधु की घात या मिथ्यात्व नहीं बढ़ता तो य भी हमने टीका से ही खुलासा ऊपर कर दिया कि अवश भाविभाव से भगवंत ने ग्रहण किया है जैसे जमाली को दीक्ष दी उस समय भगवान केवली थे और जानते भी थे कि मिथ्यात्व का उदय इस को आवेगा और खोटा पंथ निकालेगा तो फिर उसको दीक्षा क्यों दी तब तुम क्या उत्तर देवोगे सिवाय भवितव्यता के दूसरा उत्तर नहीं होवेगा. ऐसे ही गोशाले कुं भवितव्यता से ग्रहण किया यह टीकाकारों अच्छी तरह से खुलासा लिखते हैं संशय होवे तो टीका देख के श्रद्धा शुद्ध करलेना केवल गुरुजी की लिखी कल्पना पर ही भरोसा नहीं करना चाहिए. निर्पक्ष होके जिनागम की प्रतीत करोगे तो तिरोगे ॥ इति ॥

और भी तुम्हारा लेख है कि भगवान् ने गोशाले को तिलका छोड़ (पोधा) बतलाया और उसने भगवान् के वचन को असत्य करने के लिये उखेड़ डाला इससे तुम लोग चूकने की शंका करते हो सो भी भ्रम का ही प्रताप है परंतु भ्रम दूर करना होवे तो इसका प्रत्युत्तर ध्यान लगा कर सुनो. प्रथम तो यह विचारो कि तिलका छोड़ भगवंत ने तो गोशाले को नहीं बताया. परंतु गोशाला भगवन्त के संघाते सिद्धार्थ ग्राम नगर से कूर्म नगर को जाता हुवा बिचाले एक तिलका छोड़ स्वय देखके पूछने लगा कि हे भगवन् यह तिलका छोड़ निपजेगा कि नहीं निपजेगा और इस तिलके

यह ७ फूल के जीव मरके कहां उपजेंगे. यह प्रश्न किया तब भगवंत ने उत्तर दिया कि हे गोशाला यह तिलका छोड़ निपजेगा और इसके सात फूल के जीव मरके इसी तिलकी एक सांगरी यानि फली में ७ तिल होवेंगे यह सुनके गोशाला भगवान् के वचन को नहीं श्रद्ध के और भगवान के वचन को झूठा करने के वास्ते उसने चुपके से जाके तिलका छोड़ को उखेड़ डाला ॥ इति ॥

यह कथन सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वां में है अब जरा विचारना चाहिए कि सिद्धांत में तो तिलका छोड़ गोशाला को भगवान ने नहीं बतलाया किंतु उसने स्वयं तिलका छोड़ देखके तिल निपजने का प्रश्न किया. उसका उत्तर भगवान ने दिया और तुमने लिख दिया कि श्रीभगवान् महावीर स्वामीजी ने गोशाला को तिलका छोड़ बतलाया. यह लिखना सूत्र से विरुद्ध है अफसोस इस बात का आता है कि सूत्र से विपरीत कथन को भी सूत्र का नाम लेके लिखने में क्या मनोरथ सिद्ध होता है. कुछ भी नहीं तथा भूल के या भ्रम से लिखा तो अब भी सूत्र देख के ठीक श्रद्धा कर लेवो खैर हमारा तो इतनी ही बात का बतलाना तुम्हारे ऊपर हितबुद्धि से है कि तुम भूल खाके जैन सिद्धांत का लेख आक वाक मत लिखो यह हित से कहना है. अब तुम्हारी शंका का समाधान सुनिये कि श्री भगवान ने तो प्रश्न पूछा जिसका यथावस्थित उत्तर दिया. और गोशाले ने मोहकर्म के उदय से नहीं श्रद्धा तो परमेश्वर को दोष किस बात का लगा ।

पूर्व पक्ष—भगवंत गोशालाजी को कोई उत्तर नहीं देते तो तिलका छोड़ गोशालाजी नहीं उखाड़ते. यह तो उत्तर दिया तब इतनी हिंसा गोशालेजी ने करी तो इससे हम भगवान को चूके कहते हैं।

उत्तरपक्ष—हे अल्पज्ञों कुछ भी तुमको सिद्धांत का ज्ञान है कि नहीं. सुनिये. भगवतीजी का १५ वां शतक में क्या अधिकार है कि. भगवंत सावथी नाम नगरी के कोष्ठक नाम बाग में पधारे और उसी नगरी में हलाहलो कुंभ कारिणी की शाला में गोशाला भी था. वह निमित्त बल से केवली नाम धराता था. तब गौतम स्वामीजी गौचरी में फिरते थे. सो गोशाला का हाल सुन के भगवंत से भरी सभा में प्रश्न किया कि हे प्रभु गोशाला केवली नाम धराता है. सो कैसे है और गोशाले का चरित्र कैसे हुवा सो फरमावो तब भगवंत ने गोशाले के जन्म से ले के संपूर्ण सावथी में रहा तां तक का चरित्र कहा और फरमाया कि यह गोशाला मंखली का पुत्र है और जिन नहीं है केवली नहीं है यह श्री गौतम स्वामीजी के प्रश्न का उत्तर श्रीभगवान ने भरी सभा में फरमाया कि तिसको सुन के बहुत से लोग गोशाला का हिलना उपहास करते भए तिससे गोशाले को श्रीभगवान के ऊपर अति क्रोध आया, और समव सरण में आके भगवान के पास अनेक प्रकार के आलवचन यानी ७ वार शरीर में अंतर प्रवेश रूप को लुप्त पढ़िहार मेरे हुए. इससे गोशाला मैं नहीं हूं किंतु राजपुत्र हूं ऐसा वचन फैला के सच्चा बना तब श्री मुख से श्रीभगवान ने एक चोर का दृष्टांत फरमाया कि चोर

तुमने धर्म माना ही है सो जरा सोच के बात चलावो।

पूर्वपक्ष—गौतम स्वामीजी को गोशाले का चरित्र विषय का उत्तर दिया उस वक्त तो भगवान् वीतराग केवली थे. इस से धर्म हुवा और गोशाले को तिल छोड़ का उत्तर दिया उस वक्त छद्मस्थ सरागी थे इससे पाप कहते हैं।

उत्तर पक्ष—अरे भाई केवली उत्तर देवे वह तो धर्म में है. और छद्मस्थ उत्तर देवे वह पाप में है यह बात तुम्हारे गुरुजी ने किस शास्त्र से सिखलाई है जैन सिद्धांत में यथातथ्य यानी सत्य उत्तर केवली देवे तो या छद्मस्थ साधु देवे तो दोनों को ही सत्य होने से धर्म कहा है किंतु पाप नहीं क्यों कि भगवंत के छद्मस्थ अवस्था में भी ४ ज्ञान थे सो ज्ञान में उपयोग लगा के तिल निपजना फरमाया और गोशाला के उखेड़ने से भी तिलका छोड़ मूल सहित उखेड़ा और दिव्य पानी की वृष्टि के कारण से वाही चिप गया और भगवंत ने फरमाया उसी तरह से तिल निपजे और गोशाले ने पीछे तपास करी तो ७ ही तिल निकले परंतु मिथ्यात्व के उदय से उलटी श्रद्धा धार के भगवंत से बाहिर निकला वैसाही गौतम स्वामीजी को यथातथ्य स्वरूप भगवान् ने गोशाले का फरमाया परंतु मिथ्यात्व के उदय से गोशाला क्रोध मच्छर का के साधवों को जलाये. प्रश्न का उत्तर तो जैसा छद्मस्थपने में गोशाला को बतलाया वैसाही केवलपने में गौतम स्वामीजी को गोशाला का हाल बतलाया परन्तु गोशाले ने प्रबल मोह कर्म के उदय से तिलका छोड़ उखेड़ डाला और साधु जलाये तो उसके कर्म की गति परंतु परमेश्वर का ज्ञान बतलाना

दृष्टांत सुना कि तालाव के नाला रूंधने से पानी नहीं आता है यह बात सची है कि झूठी इसलिये तलाव का नाला रूंध के देख लेवे फिर उसने रोक के देख लिया तो तुम्हारे गुरु को पाप लगना तुमको मानना पड़ेगा क्योंकि नाला रूंधने में तो तिलका छोड़ उखेड़ने से भी ज्यादा आश्रव का संभव है तथा तुम्हारे गुरुजी ने करुणा का खंडन करने के लिये ढालां जोड़ी हैं सो सुनिये-ढाल (पेटदूखें तलफल करे जीव दोरा हो करे हाय विलाय सातावपराई सो जणा मरवा राख्या होत्याने हो को पाप भ० ७) ॥

अब विचारो कि उक्त गाथा में ऐसा कहा कि सो जणा को हुक्को पाय के उनके पेट दूखते या, मरते राखे, ऐसे दृष्टांत की उन्हीं की व्याख्या या गाथा सुन के किसी भोले ने विचारा कि हुक्का पीने या पिलाने से पेट दूखता रहे कि नहीं. मैं परीक्षा करूं तब उसने हुक्का पेट दुखते वक्त पिया, या पिलाया. तो उसका पाप करने वाले को लगा कि तुम्हारे गुरुजी को लगा. अगर कहोगे कि हमारे गुरुजी को लगा, तो यह ढाल सावद्य ठहरेगी और सावद्य के उपदेश देने से तो तुम्हारे गुरुजी में तुमको साधूपना ही नहीं मानना पड़ेगा. अगर कहोगे कि हमारे गुरुजी तो ज्ञान बतलाते हैं और कोई दुर्बुद्धि करेगा तो करने वाले को लगेगा. परन्तु हमारे गुरुजी को नहीं तो हे मित्रों श्री भगवान के वास्ते यह विचार क्यों नहीं करते कि भगवान ने तो ज्ञान बतलाया. और गोशालाजी ने विपरीत बुद्धि से पाप करा तो. गोशाला को पाप कहो. परंतु पक्ष कपाते खींचे हुए भगवंत पर क्यों पाप कहते हो । इति.

पूर्व पक्ष–हमने आजतक नहीं सुना कि फलाना मनुष्य किसी साधू से गंगादिक नदी का कथन सुन के गंगादिकों को तैरने गया. या तलाव का नाला रूंधा. या हुक्का पिया. यह तो कल्पना मात्र है और गोशाले ने तो तिलका छोड़ प्रत्यक्ष उखेड़ा है।

उत्तरपक्ष–अगर हमारे कहे हुए दृष्टांत कल्पना मात्र हैं तो तुम्हारे गुरुजी का दृष्टांत है कि हुक्का पा के पेट दुखने और मरते हुए को राखे. यह किस नगर की बात है, या किसने कान से सुना है. कि सोजने को हुक्का पा के पेट दूखते और मरते हुए को राखे अगर कहो कि यह तो दृष्टांत है तो हमारा भी दृष्टांत है. तिलका छोड़ उखेड़ने का लख है वैसे गौतम स्वामीजी को गोशाले का उत्तर देने से गोशाले ने साधों को जलाने का भी लेख है. तो दृष्टांत से दृष्टांत और लेख से लेख समझ के पक्ष छोड़ना अच्छा है।

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी को तो ऐसा मालूम हो जावे कि यह हमारे गंगा नदियों का उत्तर देने से आश्रव करेगा तो उत्तर ही नहीं देवे. परंतु वह तो आगम्य काल का अनर्थ को नहीं जाने जिससे ज्ञानरूप भाव से उत्तर देवे तो उनका कुछ भी दोष नहीं।

उत्तरपक्ष–अगर तुम्हारे साधू आगम्य काल का दोष को नहीं जानते इससे उत्तर देवे उसमें दोष नहीं तो गोशालाजी को तिलका छोड़ भी आगम्य काल का दोष नहीं जाण के भगवंत ने बताया. ऐसी तुम्हारे गुरुजी की ही खास श्रद्धा है तुमको मालूम होगा या नहीं होगा. तो भी हम पुरावा लिखते

भ्रमविध्वंसन का ८२ मा पत्र में (ज्यो उपयोग देवे अने जाणे तिल उखेलणा कसी इम जाणे तो तिल वनाविज वयाने पिण उपयोग दिया बिनाए कार्य किया छे) यह तुम्हारे गुरुजी का कहना है और हम तो कहते हैं कि भगवान् आगम व्यवहारी अतिशय ज्ञानी है यह अपने ज्ञान में जैसा देखे वैसा करें अल्पज्ञ पुरुषों की समझ का दोष है. जिससे आगम व्यवहारी महाज्ञानी में दोष निकाले क्योंकि गोशाला का चरित्र फुरमाया. उस वक्त तो परमेश्वर सर्वज्ञ केवली ज्ञानी थे और जानते भी थे कि यह चरित्र सुन के गोशाले का महा क्रोध उपजेगा. तो फिर भगवंत ने गोशाले का चरित्र क्यों फरमाया तब तुमको भी कहना पड़ेगा कि भवितव्यता टाली ना टले. परमेश्वर तो उपकारी उपकार करते हैं तो वैसे ही समझ लेना कि छद्मस्थपने में भी भगवान् के ४ ज्ञान अति निर्मल और केवली नहीं परन्तु केवली समान सिद्धांत में कहे हैं और उपकार दृष्टि से उपकार किया. परन्तु भवितव्यता टाली नहीं टली. इति. " तत्तोकुवादं भत्तो अममादं " ॥ इति तिल छोड़ उखेड़ने का यथार्थ निर्णयः ।

तथा तुम्हारी कल्पना है कि श्रीभगवान ने तेजु शीतल लेश्या प्रकट करके गोशाले को बचाया. और लेश्या फोड़ने में जघन्य तीन क्रिया और उत्कृष्ट पंच क्रिया कही है परंतु शीतल लेश्या का तो वहां पर नाम मात्र भी नहीं है. तेजु लेश्या और शीतल लेश्या दोनों लब्धि अलग २ है और सूत्र पन्नवणाजी में तो तेजस् समुद् घात फोड़नी समय में जघन्य तीन क्रिया और उत्कृष्ट पंच क्रिया का पाठ है. परंतु

सीखा है क्योंकि तुम्हारे गुरूजी ने भ्रम विध्वंसन में ऐसाही भ्रम रचा है. परंतु हम तुमको पूछते हैं कि लब्धिमात्र फोड़ना आज्ञा बाहिर कहा कि कोई लब्धि फोड़ना कहा है अगर कहोगे कि लब्धिमात्र फोड़ना आज्ञा बाहिर कहा है तब तो केवल ज्ञानी की भी लब्धि कही है मनः पर्यव ज्ञान की भी लब्धि कही है अवधिज्ञान की भी लब्धि कही है. तो इन लब्धियों को भी आज्ञा बाहिर माननी पड़ेगी. तो यह कभी होता ही नहीं कि अवध्यादि ज्ञान की लब्धि का भी फोड़ना आज्ञा बाहिर है. और अगर कहा कि कोई लब्धि को फोड़ने का प्रायश्चित्त है तब तो सूत्र में शीतल लेश्या की लब्धि का प्रायश्चित्त है ही नहीं. आज्ञा बाहिर कहीं भी नहीं कही है।

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि लब्धि तो मायी फोड़े परंतु अमायी न फोड़े।

उत्तर पक्ष-हे भाई सूत्र भगवतीजी का तीसरा शतक उद्देश चौथा में वैक्रिय लब्धि का खुलासा पाठ है परंतु शीतल लेश्या की लब्धि का नहीं शंका होवे तो देख लेना जो मायी होता है उसको वैक्रिय करने का भाव होता है जिसका कारण सूत्र में खुलासा है कि जो मायी होता है वह अति सरस आहार करने के कारण से शरीर में अति बल की वृद्धि होने के कारण से उसको उच्छ रंग कुतूहल उत्पन्न होने से वैक्रिय लब्धि फोड़े ऐसा सूत्र का मूलपाठ है तो वैक्रिय लब्धि के कथन का शीतल लेश्या का कथन कहना विरुद्ध है भगवान ने गोशाला को बचाया सो तो करुणा करके और वैक्रिय का करणा तो कुतूहल रूप है सो यह तुम्हारा

लिखना ठीक नहीं कि लब्धि मायी फोड़े हां जरूर जो मायी साधु सरस भोजन पानादि करने के कारण से वैक्रिय लब्धि फोड़े वह आज्ञा बाहिर का कार्य है परंतु भगवान् तो परम संवेगवान ४ ज्ञान करके सहित थे और शीतल लेश्या लब्धि गोशाले पर दया अनुकंपा लाके साधु को बचाने के लिये प्रकट की है और शीतल लेश्या की लब्धि फोड़ना माया में या आज्ञा बाहिर सूत्र में कदापि नहीं कहा है।

पूर्वपक्ष–दया करके गोशाले को बचाया ऐसा कहां कहा है।

उत्तरपक्ष–सुनिये भाई सूत्र भगवतीजी का पन्द्रहवां शतक में यह पाठ है सूत्र।

तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए, वेसियायणस्स, बालतवसिस्स, साउसिणं, तेयलेस्सा, तेय, पडिसाहरणं, ट्ठयाए, एत्थणं, अंतराअहं, सीयलियं, तेयलेस्सं, णिसिरामि, इति ॥

अस्यार्थः ॥ तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए के० तिवारे हुं हे गोतम गोशाला मंखलि पुत्र ने अनुकंपा ने अर्थे दया ने-अर्थे वेसियायणस्स, बाल, तवसिस्स, के० वैश्यायन बाल तपस्विनी अज्ञान कष्ट कारकनी-साउसिणं, तेयलेस्सा, तेय, पडिसाहरणं, ट्ठयाए, एत्थणंतरा के० तिहां उष्णतेजो लेश्या नातेज प्रते संहरवाने अर्थे दूर करवाने अर्थे इहां विचाले-अहं, सीयलियं, तेयलेस्सं, णिसिरामि, के० में शीतल तेजुलेश्या प्रवृति इति सूत्रार्थः ।

अब देखो सूत्रमें तो श्रीभगवान ने श्रीमुख से फरमाया

कि हे गौतम मैंने गोशाले को दया अनुकंपा करके बचाया, तो भाई दया करके बचाना तो धर्म में है तो गोशाला तो साधु था उसको बचाने में पाप तुम क्यों कर कहते हो.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो गोशाला को बचाना मोह अनुकंपा में कहते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई इस सूत्र के मूलपाठ में तो मोह अनुकंपा का नाम ही नहीं है फिर तुम्हारे गुरुजी कैसे कहते हैं.

पूर्वपक्ष–इस विषय में हमारे गुरुजी टीका की साक्षी बतलाते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुम्हारे गुरुजी की टीका की साक्षी वैसी ही है कि जैसी गोशाला जी की दीक्षा देने में टीका बतलाई है और अर्थ छोड़ के मन मान्या भावार्थ कुछ का लिया वैसी ही टीका यहां बतलाई है तथापि हम बतलाते हैं तुम्हारे भ्रम विध्वंसन के पत्र ७१ में टीका लिखके अर्थ लिखाये नहीं, और समीक्षा में थोड़ा सा अर्थ लिख दिया सो बतलाते हैं.

टीका–(मैं पण इम कह्यो ते गोशाला नो रक्षण भगवंत ने कियो ते सरागपणे करी अने स्वानुभूति सुनक्षत्र मुनिनों रक्षण न कह्यो ते वीतरागपणे करी एतो गोशाला ने बचायो ते सराग पणो कह्यो तो ए सराग पणा में धर्म किम होय) इति.

अब विचारो भाई की प्रथम तो तुम याद रखणा कि सूत्रमें तो सराग पणा का नाम ही नहीं है, और टीकाकार जी ने लिखा है तथापि विचारना कि टीका की साक्षी देते हो परंतु टीका कार जी की श्रद्धा तो तुम्हारी जैसी भगवान की

चूकने की नहीं थी, केवल तुम तेरे पंथियों को भ्रमके प्रताप से दीखता है.

पूर्वपक्ष-अगर चूकने की श्रद्धा टीकाकार जी की नहीं होती तो टीका में ऐसा क्यों कहा कि गोशाले को संरक्षण सराग-पणा करके भगवान ने करा.

उत्तरपक्ष-हे भाई टीकाकारजी ने तो संशय छेदने निमित्त यथातथ्य अर्थ की घटना करी है परंतु तुम्हारे गुरुजी ने उलटी श्रद्धी है. सो हम टीका लिख के बतलाते हैं परंतु तुम याद रखना कि जहां हम टीका की साक्षी बतावें वहां ऐसा मत कहना कि हम टीका नहीं मानते हैं क्योंकि यहां पाठ में सराग का कथन नहीं हैं और टीका में सराग पने का कथन है परंतु मूल सूत्र के पाठ में नहीं है तो भी तुम्हारे गुरुजी ने टीका का आश्रय लिया है इससे चेताते हैं अब सुनिये टीका लिखते हैं।

टीका-इह च यद्गोशालस्य संरक्षणं भगवता कृतं तत्स-रागत्वेन दयैकर सत्वाद्भगवतः यच्च सुनक्षत्र सर्वानुभूति मुनि पुंगवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीव कत्वाद्वस्य भावि भावत्वा द्वेत्यवसेयमिति ॥ टीका ॥

टीकार्थः—यहां तो यह जो गोशाला की संरक्षण भग वान ने किया वह सरागपणा करके भगवान् का दयारूपी एक रसपणा से क्यो तो सुनक्षत्र सर्वानुभूतिजी क्यो श्रेष्ठ मुनि हैं उनकी रक्षा नहीं करेंगे सो वीतरागपणा करके लब्धि का जीव का पणा का अभाव से अथवा भवितव्यता का अभाव से यह वार्ता जाननी इति टीकार्थ।

अब देखो टीकाकार जी ने तो लिखा कि गोशाला का संरक्षण भगवान ने सरागपणे दया का रस से किया. तो इस का कारण तो धर्म में है तो फिर तुम टीका का नाम लेके भगवान को चूकना क्यों कहते हो ?

पूर्वपक्ष - हमारे गुरुजीने भ्रम विध्वंसन में लिखा है कि सरागपणे में धर्म नहीं होता ।

उत्तरपक्ष—हे भाई यह कथन पहिले हम सूत्र साक्षी से सिद्ध कर दिया है कि छद्मस्थपना का धर्म तो सरागपणे से होता है क्योंकि ४ चारित्र पांच संजम इनको भगवान ने सरागी कहे हैं सूत्र भगवतीजी का शतक २५ मा उद्देशा छट्ठा और सातवां में है तो कहो यह सराग संयम में धर्म है कि नहीं।

पूर्वपक्ष-सराग संयम में तो धर्म है ऐसा हम भी मानते हैं क्योंकि अभी पंचम काल के अन्दर तो वीतराग संयमी होते ही नहीं किंतु सराग संयमी होते हैं और सराग संयमी के पाप मानिये तब तो पंचम आरा में धर्म रहे ही नहीं इससे सराग संयम भी धर्म में है।

उत्तर पक्ष—तो हे मित्रो वैसे ही तुम क्यों नहीं विचारते हो कि श्रीभगवान भी सामायिक चारित्री सराग संयमी थे इससे टीकाकारजी ने सरागी पने से गोशाला को बचाने का लिखा है, सराग संयमी का कार्य तो सराग पने से ही होता है और यह [illegible] [illegible] में है इससे [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी धर्म है इस [illegible] [illegible] [illegible] सराग संयम में धर्म [illegible] है नहीं है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है नहीं तो फिर सरागी

भूतिजी अणगार ने श्रीभगवान पें आक्रोश करता हुवा गोशाले को धर्माचार्य के अनुराग करके रोका कि हे गोशाला भगवान तेरे उपकारी हैं तू इनसे द्वेष मत कर तो कहो भाई सर्वानुभूतिजी अणगार को श्रीभगवान ने बोलने की मनाई करी थी तो भी धर्माचार्य के अनुराग से बोले तो उनको धर्माचार्य पें राग रखने से धर्म हुवा कि पाप क्योंकि मूलपाठ में है कि सूत्र-तेणं, कालेणं, तेणं, समएणं, समणस्स, भगवउं, महावीरस्स, अंतेवासी, पाईण, जाणवए, सव्वाणु, भूई, णामं, अणगारे, पगइ, भद्दए, जाव, विणीए, धम्माण रियाणु, रागेणं, एयमट्ठं, असद्दहमाणे, उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठेइत्ता । इति

इसका अर्थ सुगम है और पहिले लिख चुके हैं यहां मूलपाठ में कहा कि सर्वानुभूतिजी धर्माचार्य के राग से गोशाले का वचन भगवान को अवर्ण वाद बोलने रूप को सहन नहीं कर सके तब उठके गोशाले से बोले तो कहो भाई सर्वानुभूतिजी का श्रीभगवान पर राग करना धर्म है कि पाप में है।

पूर्वपक्ष- सर्वानुभूतिजी का तो भगवान पर राग करना धर्म में है, क्योंकि हमारे गुरूजी ने भ्रमविध्वंसन के ९३ मा पत्र में लिखा कि —अने ज्यो आज्ञा बारे हुवे तो भगवान तो पहिले जाणता हुंता. जेहुं वरजाऊं छूं पिण एतो बोलसी तो आज्ञा बारे थासी. इम बोल्या आज्ञा बारे जाणे तो भगवान बोलवारो क्यां ने कहे जो आज्ञा बारे हूता जाणे तो भगवान साधा ने आज्ञा बारे क्यों न कीधा तथावली बोल्या पिछै पिण निषेधता जे म्हारी आज्ञा बारे बोल्या इसो काम कोई साध

नहीं. कराया नहीं. करने को भला जाना नहीं. तो तुम समझ लेवो कि भगवान को चूके का आल देना अच्छा नहीं तथा इसी उद्देश की १५ मी गाथा में पाठ है कि (छउम त्थोवि, परक्कममाणो, णपमायं, सयंपि, कुव्वित्था, इति)

अस्यार्थः-छउमत्थोवि. परक्कममाणो. के० छद्मस्थ छतो पिण विविध अनेक प्रकार संयमानुष्ठान विषे पराक्रम करता. णपमायं, सियंपि, कुव्वित्था, के० एके वार प्रमाद कषायादिक न करे स्वामी इणपरे प्रवृत्या इति सूत्रार्थः ।

अब देखो भाई छद्मस्थपने में भगवान ने एक वार भी प्रमाद पाप नहीं किया. तो फिर तुम्हारा लिखना सर्वथा असंभव हुवा. कि भगवान छद्मस्थपने में चूके. सूत्र की प्रतीत होवे तो कपोल कल्पना को त्याग करना ही ठीक है.

पूर्वपक्ष-इसका अर्थ तो हमारे गुरुजी ऐसा करते हैं कि यह तो सुधर्म स्वामी ने भगवान् का गुण वर्णन किया है. इसमें गुण वर्णन का प्रकरण में गुण ही होता है । अवगुण का वर्णन यहां नहीं किया ।

उत्तरपक्ष हे भाई यह कहना भी सूत्र की अच्छी तरह से नहीं जानने का है क्योंकि सूत्र में तो ऐसा नहीं कहा कि सुधर्म स्वामी ने गुण के प्रकरण में [illegible] अवगुण को छोड़ दिये.

पूर्वपक्ष [illegible] है

उत्तरपक्ष हे [illegible]
[illegible] हुवा [illegible] है

सूत्र [illegible]
[illegible] इति ।

नइं अनुकंपादान अने उचितदान देवानो निषेध नथी.
च (मोरकत्थेजे, दाणं, तंपइएसो, विहीमसाउ, अणु
दाणं, पुण जिणेहिं. नकयाइं. पडिसिद्धंति ।

पुनरुक्तंच (अभयं, सुपत्तदाणं, अणुकंपा, उच्चिय,
त्तिदाणाइं, दुन्निवि, मोरकोभणिउ तिन्निविभोगा, इयंदिंति
इति सूत्रार्थः ॥

अथ टीका भी सुनियेः टीका -सूत्र त्रयेणापि चाने नमोत्त
मेव दान तच्चिंतितं. यत्पुनरनुकंपादानमौचित्य दानं
तन्नचिंतितं निर्जरायाः स्तत्रानपेक्षणीयत्वाद् नुकं पौचित्ययो
चापेक्षणीयत्वादिति. उक्तंच -मोरकत्थं, जंदाणं, तंपइएसो, वि
ममरकाउ, अणुकंपा, दाणंपुण, जिणेहिं, नकयावि, पडिसेवे
इति टीकार्थः ।

इन सूत्र तीनों करके, यानी समणो वा सम फासु
एषणीक आहार. तथा रूप के मुनि को प्रति लाभे. अं
समणो वा अफासुक अनेषणीक तथा रूप के मुनि को प्र
लाभे. और समणोपासक तथा रूप के असंयति अव्रती
प्रतिलाभे. इन तीनों सूत्रों करके मोक्ष के अर्थ जो दान दे
तिनका चिंतना करी गई. और फेर जो अनुकंपादान है. उ
की यहां चिंतना नहीं करनी. निर्जरा की यहां अपेक्षा न
होने से. अनुकंपा और औचित्य इनकी ही अपेक्षा होने से
यह कहा भी है कि मोक्ष के अर्थ जो तथा रूप के असंय
अव्रती मिथ्यात्व के भेखधारी को धर्म बुद्धि करके दान दे
तिसकी यह विधि कही है. यानी एकांत पाप कहा है. पु
जो अनुकंपा करके दुखी भूखा को अन्नादिक देना तिस

उसमें भी एकांत पाप होता है. और साधुपणा का गुण करके सहित यानी संयमवंत को दान देवे, उसमें एकांत धर्म कहते हैं. परंतु भेष का कारण कुछ नहीं.

उत्तरपक्ष-हे मित्र ऐसी तुम्हारी श्रद्धा न होवे कि भेष का कारण कुछ भी नहीं तो तुम्हारे तेरेपंथियों के भेष के सिवाय अन्यभेष यानी लिंगवान् साधू का दान सन्मान करने वाले को तुम्हारा गुरुजी और तुम पाप क्यों श्रद्धते हो, क्योंकि सिद्धांत में तो तीनों भेषयानी स्वलिंगी वीतराग के साधू का भेष में अन्य दर्शन तापसादिक का भेष में और गृहस्थी का भेष में इन तीनों भेष में भाव चारित्र होता है, ऐसा सूत्र में खुलासा लिखा है, सो सूत्र का पाठ लिखते हैं ध्यान लगा के सुनिये. सूत्रपाठ.

पुलाएणं, भंते, किं, सलिंगे, होज्जा, गिह, लिंगे, होज्जा, गो, दव्वलिंग, पडुच, सलिंगे, वा, होज्जा, अण्णलिंगेवा, होज्जा, गिहिलिंगेवा, होज्जा, भावलिंगं, पडुच, णियमं, सलिंगं, होज्जा, एवं, जाव, सिणाए इति सूत्र भगवती जी का श० २५ मा उ० छठा में है.

अस्यार्थः-पुला कहे भगवन् पोताने लिंगे हुवे अथवा अन्य लिंग में हुवे, इति प्रश्न उत्तर-हे गौतम द्रव्य लिंग आसारी स्वलिंग रजोहरणादिक भेष में हुवे कुतीर्थिकतापसादिक ने लिंगे हुवे गृहस्थ ने लिंगे हुवे, भाव लिंग ज्ञानादिक आसरी निश्चय स्वलिंगेज हुवेइम यावत स्नातक लगे कहवो,। इति सूत्रार्थः

अब इस सूत्रपाठ में देखो कि द्रव्यलिंग यानी भेष आश्रयी ६ हीनियंठे साधु के भेष और अन्य दर्शनिक सन्यासादिक

परंतु मिथ्यात्व का भेष मिथ्यात्व का उपदेशक गुरु नहीं हुवा तो इन दोनों को दान देने में एकांत पाप नहीं है, तो भद्रिक दुखी दारिद्री मरते हुए को दान देने में तो एकांत पाप होवे ही कहां से. और मिथ्यात्व का भेष धरा है. और मिथ्यात्व के ही अवगुण का पंथ प्ररूपणादिक का होवे. उसको मोक्ष के अर्थ गुरुबुद्धि से देवता श्रावक को एकांत पाप कहा है परंतु करुणा करके देने में नहीं और अगर तुम हठवाद करके कहोगे कि भेषरहित असंयति या दुखी दारिद्री को देने में एकांत पाप होवे तो फिर तुमको साधू का भेष रहित गृहस्थ के भेष वाले भाव चारित्री को दान देने में एकांत निर्जरा माननी पड़ेगी सो तुम्हारे गुरु जी का किया भ्रमविध्वंसन में अन्य तीर्थी का लिंग में केवल ज्ञान उपजे तो वो भी वंदना करना नहीं मानी है. सो लिखते हैं. भ्रमविध्वंसन का १०८ मा पत्र में (अन्य तीर्थिना भेष में केवल ज्ञान उपजे ते उपदेश देवे नहीं. जो साधु श्रावक केवली जाणे तो पिण वे अन्य लिङ्ग थकी पिण ने प्रत्यक्ष वंदना. नमस्कार करे नहीं. तेहने अन्यमति नो लिंग छे ते माटे) अब विचारो कि भेष का कारण नहीं होवे तो यहां तुम्हारे गुरुजी केवलीजी महाराज अन्य दर्शनी का लिंग में होवे तो साधु श्रावक वंदना नहीं करे ऐसा क्यों माना. तो सिद्ध हुवा कि भेष का कारण जरूर है. अब यहां भेष के ४ भांगे उत्पन्न होते हैं सो सुनिये. प्रथम भाग में निश्चय में भाव साधू और भेष करके सहित दूसरे भंग में निश्चय में अभावि मिथ्यात्वी और व्यवहार साधू आचार और भेष करके सहित तीसरे भंग में निश्चय में तो साधू भाव चारित्र सहित व्यवहार

कि सूत्र नसीथ जी के १५ वें उद्देशा में बोल ७४ तथा ७५ वें में कहा कि गृहस्थ "असण- पाण- खादिम- स्वादिम- वत्थ- पडिग्गह- कम्बल- पाय पुच्छेण, यह आठ बोल कहे सो देवे दिवावे. देतेहुए को भला समझे तो चौमासी प्रायश्चित आवे इसका प्रत्युत्तर

यहां भी तुमने सुत्त, तेणीया, अन्य, तेणीया, पणा धारणा करा क्योंकि सूत्र में तो साधू को आहार आदिक गृहस्थी को देना नहीं कल्पे ऐसा मूल पाठ में है और तुमने साधू का नाम छोड के समुच्चय ही लिख दिया इससे यह लेख तुम्हारा विपरीत है जिसका खुलासा हम अगाड़ी प्रश्न तीसरे के प्रत्युत्तर में करेंगे. क्योंकि तीसरा प्रश्न के उत्तर में तुमने इसीनिसीथजी का १५ मा उद्देश का ७४ वां बोल की विपरीत पणे से साक्षी दी है तिस हेतु से तथा तुम्हारा यह लेख है कि सूत्र विपाक के पहिले अध्ययन में गौतम स्वामी जी ने श्री भगवान महावीर स्वामी से पूछा कि हे स्वामी मृगा लोडा ने पूर्वभव में क्या कुपात्र को दान दिया कि जिससे इस भव में ऐसा दुखी हुवा. इति प्रश्नोत्तर का पृष्ट ७ मा.

इसका प्रत्युत्तर ध्यान लगा के सुनो कि प्रथम तो विपाक सूत्र में तीन पाठ एकहीज कोटी में चले हैं परंतु केवल कुपात्र दान का हीज नहीं वह ऐसे है ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्रपाठ-किंवादच्चा. किंवाभोच्चा. किंवा समायरित्ता

अन्यार्थः मृगा लोढ़ेने कौन अशुद्ध द्रव्य को दान दिया कौण अभक्ष्य मांसादिक [illegible]

इणं, देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो. धम्म, माईक्खिज्जा, बहुगुण तरं, होज्जा, तेसिंबहुणं, समण, माहण, भिक्खुयाणं, २ तंजइणं देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो, बहुगुणतरं, होज्जा, सयस्स विषयंस, जणवयस्स, ॥ ३ ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अर्थार्थः- ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजाने धर्म कहीस्यो तो घणो गुण निश्च होसे. ते के हने गुण होसे ते कहे छे प्रदेसीराजा ने धर्म कहिस्यो तो घणो गुण होसे इह घणा नइ द्विपद चतुष्पद मृग पशु पंखी उंदर नवलादिक एनलाने. तुमे प्रदेसीने धर्म कहीस्यो तो प्रदेसी राजा जीव वध थकी निवृत्तस्ये ते माटे द्विपद चतुष्पद घणाने गुण थासे ॥ १ ॥ ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजा प्रते धर्म कहीस्यो तो घणो गुण होस्ये ते थकी भलुं फल होस्ये ते घणा श्रमण सांप्रयायिक ब्राह्मण भीखाचर ने घणो गुण होस्ये ॥ २ ॥ ते माटे जो हे देवानुप्रिया प्रदेसी राजा ने धर्म कहोगे तो घणो गुण होस्ये पोताना देशनों परिगुण होस्ये धर्म सांभली प्रदेशी पोताना देशने विषे कर भर आकेरा नहीं प्रवरतावस्ये ॥ ३ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो यहां सूत्रपाठ में कहा कि हे पूज्य प्रदेशी राजा को धर्म सुणावोगा तो बहुत लाभ होवेगा क्योंकि हमारा प्रदेसी राजा को धर्म सुनाने से द्विपद चतुष्पदादिक जीव को बहुत गुण होवेगा तथा भिखारी मंगता को बहुत गुण होवेगा. तथा देश को भी दंड छोडने से बहुत गुण होगा.

अब विचारो कि जो एकांत पाप की श्रद्धा जैसीकि तेरेपंथियों की श्रद्धा है. वैसे तेकुत चित्त श्रावक की श्रद्धा होती

तो हस्ती घोड़ादिक कटक को देऊंगा. एक भाग कोठार भंडार में देऊंगा, एक भाग अंतःपुर को देऊंगा, और एक भाग की मोटी दान शाला मंडाऊंगा, तहां चार प्रकार का आहार निपजा के बहुत से श्रमण साक्यादि ब्राह्मण भिखारी मंगतादिक को देऊंगा और अपने व्रतादिक को पालता भी रहूंगा. ऐसा कहके घर को गए. फिर प्रातःकाल होते ही पूर्व कथित राज्य के ४ भाग करके राज्य को चौथे हिस्से को दान देता थका प्रदेशी राजा विचरता भया. अब विचारो कि प्रदेशी राजा हाथी घोड़ा अंतःपुर भंडार का तो श्रावक हुवा पहले भी सार संभार करता था. परन्तु मंगता भिखारी का तो राजा शत्रु था क्योंकि यह कथन पहिले ही चित्त जी ने अर्ज करी वहां हो चुका है. तो विचारना चाहिये, कि जो मंगतादिक गरीब को दान देने में एकान्त पाप होता तो या कुछ भी पुण्य नहीं होता तो राजा प्रदेशी श्रावक पणा पाया पीछे दानशाला क्यों मंडावाता और तुम्हारी श्रद्धा अनुसार इतना पाप क्यों बांधता क्योंकि राजा से किसी ने जबर्दस्ती से नहीं दिलवाया. आप अपनी इच्छा से दिया है. और केशी स्वामी जी महाराज को तुम्हारे गुरुजी जैसी श्रद्धा होती तो राजा को त्याग क्यों नहीं करा देते. क्योंकि हाथी घोड़ा भंडार अंतःपुर को तो श्रावक हुवा पहिले ही देता था. तथा दिया बिना संसार का निर्वाह नहीं होवे. परन्तु मंगतादिक को ना देने का त्याग सुखे कि जाने. और केशी श्रमण महाराज ऐसा भी क्यों नहीं कहते कि हे राजा तू व्रतधारी होकर मंगता भिखारी को देने का पाप क्यों बांधता है क्योंकि तब कहते तो कि लेणेवाला है और देण वाला है उस राज पे निषेध नहीं करणा

नहीं होता है. यह तो करुणा दान में है. तथा तुम्हारे तेरांपंथि यों का मत चलाने वाले भीषमजी का उपदेश दान निषेध का है. सो भी जरा सा यहां पर प्रकट करते हैं. देवगुरु धर्म थोकलाण नामा पुस्तक न० २ ढाल १२ मी भीषमजी कृत गाथा.

(इवरत में दान देता थकां पड़े श्रावक जीरे मनपडछ काम पड़े इवरत में दान री जब तो ही सर्मासर्म जी. पीछे करो पिछतावो तेहनो कांयकडी लापड़े कर्म जी ३६ इवरत दान देवातणो टालो परो करे उपायजी. जाणे कर्म बंधे माहरे मोने भोगवनां दुख थायजी. ४० इवरत में दान देता थकां बंधे आठों ही पाप कर्म जी) इत्यादिक।

इन गाथाओं का भावार्थ सुनिये. अत में यानि साधु सिवाय मंगतादिकन को दान देते थके श्रावक के मन में पड़ पड़ जाय कि हाय मेरे को इन पापियों को कहां देना पड़ा कदाचित् शर्माशर्म देवे तो पीछे पश्चात्ताप करे कि हाय मैं अव्रती मंगतादिकन को दान दिया. मेरा क्या हाल होवेगा मुझे धिक्कार होवो जो मैंने इन पापियों को दान दिया. ऐसा पश्चात्ताप करे तो उसके कछुक कर्म ढीले पड़े ३६ अव्रती मंगतादिकन को देने का आप टाला करे अन्य को कहे किंतु मंगतादिकन को साधु सिवाय दान देके मत डूबो. दान देने का टाला करते को भला जाणे तो अच्छा किया मंगतादिकन को दान नहीं दिया. क्योंकि श्रावक मन में जाणे कि अव्रती मंगतादिकन को देऊंगा तो मारे आगे पाप कर्म बंधेंगे फिर मुझको भुगतणा पड़ेगा. जब मुशकिल होगा. ऐसा जाणके टारा लेवे. अर्थात् नहीं देवे ॥ ४२ ॥

चाहिये वैसेही तुह्मारी श्रद्धा के लेखे तो जैसा मद्य मांस खाना चोरी परस्त्री सेवनादिक कुकर्म करना. और मंगता भिखारी को देना. यह दोनों एक कोटी, यानी एक पंक्ति में गिनने हो तो प्रदेशी राजा श्रावक हुवां पेस्तर तो दान देताही नहीं था. सो यह मंगना को दानरूप महाभयंकर पाप कर्म श्रावक हुवे पेस्तर तो राजा को तुह्मारी श्रद्धा से नहीं लागता था और अब प्रदेशी राजा श्रावक हुवां बाद दानशाला मंडवाई तो फिर दान शाला तुम्हरी श्रद्धा से परस्त्री, चोरी वेश्यागमन सरीसा कुकर्म तुम्हारे गुरुजी गिनते है तो फिर तुह्मारी श्रद्धा अनुसार तो प्रदेशी राजा ने श्रावकपना क्या धारा मानों बड़ा पाप धारन किया कि जो पहिले दान शाला नहीं थी सो नवीन मंडवाई और केसी स्वामीजी महाराज ने प्रदेशी को रोका क्यों नहीं. कि ज्यो पहिले नहीं करता वह कुकर्म अबवह करता है.

पूर्वपक्ष-प्रदेशी राजा को तो हम श्रावक हुवां बाद १ धर्मवान् मानते हैं और धर्मवंत होने से पहिले स्वर्ग में सूर्य भविमान् के मालिक महान् ऋद्धिवान् देव हुए हैं. और व चव के महा विदेह क्षेत्र में जन्म धारन करके संयम पाल मोक्ष जावेंगे. तिससे हम उनको अधर्मी नहीं मानते हैं.

उत्तरपक्ष-हे मित्र इससे ही हम कहते हैं कि मांस खाना वेश्या परस्त्रीगमन करना. सिकार करनादिक कुकर्म सरीसा मंगता भिखारी को दान देना नहीं होता है. और कुपात्र दान में भी नहीं है. क्योंकि कुपात्र दान तो वेश्यागमन सिकार करने सरीसा सूत्र विपाक का प्रथम अध्ययन में कहा है. इस

[illegible] अशुद्ध है.

उत्तरपक्ष-देनेमें जितनी करुणा या ममता पुन्नों में रखा-
यसो इतना पुन्य का विभाग है. और देने लेने पर हिंसादि
रहोंसे इतना पाप है. इसमें मिश्रपक्ष है क्योंकि प्राणि जीवो
की करुणा मे शुभयोग है. और भगवतीजी के ५ मे शतक
[illegible] उद्देशा मे वस्तु बेचने वाले को जहांतक वस्तु अपने पास
है वहांतक भारी क्रिया लागे और बेचके देदी तब हलकी
क्रिया लागे. तो विचारना चाहिये कि लोभ निमित्त वस्तु
बेचने मे भारी क्रिया से हलकी क्रिया का लाभ हुवा तो
वस्तुका निमित्त दया का प्रणाम से देवे उसको लाभ क्यों
नहीं होवे.

पूर्वपक्ष-मिश्रपक्ष कहां कहा है

उत्तरपक्ष- सिद्धांत में सर्व कथन तीन पक्ष में समावेश
होते हैं. वह ऐसे है. धर्मपक्ष की जिसमे साधुकी आज्ञा देवे
और उपदेश दे के करावे. वह तो काम धर्मपक्ष में है. और
अधर्मपक्ष कि जिस काम को साधुजी निषेध करे उपदेश देके
उसको छोडावे, वह काम अधर्म पक्ष में है. और मिश्र पक्ष,
कि जिस काम को साधु न निषेध करे और नहीं आज्ञा
दे किंतु मौन रखे. क्योंकि पुन्य पाप दोनों [illegible]
[illegible] होने से एकांत पाप निषेध का प्रयोजन नहीं है.

पूर्वपक्ष—मिश्र पक्ष के कार्य करने में कि जिस काम को
[illegible] एकांत निषेध का प्रयोजन नहीं करे.

उत्तरपक्ष—[illegible] सिद्धांत में है [illegible]
[illegible]

और पिछाड़ी वालों की सार संभार मैं करूंगा. यह सुन के चार पुरुषों ने संयम लिया. यह संयम दलाली का तो लाभ और ढँढेरे सम्बन्धी खर्च रूप हिंसा यह मिश्रपक्ष. तथा राय पसेणी में राजा प्रदेशी धर्म सुनके बिना वंदना करके जाने लगा. तब केशी श्रमण महाराज ने कहा. कि हे राजन्! तैंने मेरे से बड़े बड़े प्रश्न किये, और अब बिना खमायां कैसे जाने लगा. तब राजा ने कहा कि हे स्वामिन्! मैं कल मेरा अन्तःपुरादि परिवार सहित मोटे मंडाण से आके आपको वंदना करके अपराध खमा कराऊंगा. तब केशी श्रमण महाराज ने नहीं तो अच्छा कहा, क्योंकि अच्छा कहे तो राजा के आने की नगर शृंगार की अंतः- पुरादिक स्नान की. हाथी घोड़ों के आने जाने की अनुमोदना लागे और निषेध भी नहीं किया. क्योंकि निषेध करने से- जिन मार्ग का प्रभाव या राजा की भक्ति का अंतराय होवे. इसलिये मिश्रपक्ष होने से केशी स्वामीजी महाराज ने हां ना कुछ भी नहीं कहा. राजा ने शोभीक के बड़े आडम्बर से केशी श्रमण महाराजका दर्शन करके अपराध खमा कराया. यह भक्ति का लाभ और अंतःपुरादि शृंगार और आने जाने रूप खर्च सो हिंसा. यह मिश्रपक्ष तथा राय पसेणि में केशी श्रमण महाराज प्रदेशी को कहा कि हे प्रदेशी तू रमणीक हो के पीछे अरमणीक मत होना. तब प्रदेशीराजा ने राज के चार भाग किये. एक भाग घोड़ा आदि का. १ दूजा भाग भंडार कोठार में २ तीजा भाग अन्तःपुर को ३ चौथा भाग की दानशाला ४ दान के सिवाय तीन भाग तो पहिले ही थे. परंतु राजा का चौथे हिस्से का दान देना यह

कार्य रमणीक पने का है. परंतु केसी स्वामीजी महाराज ने हां नां कुछ भी नहीं कहा. क्योंकि हां कहते तो भात पाणी निपजाणे रूप सावद्य की अनुमोदना लागे.

नां कहे तो राजा का करुणा भाव और द्रव्य मे ममत्व उतार के दान देना उस लाभ का छेदन होवे तथा भिखारियों को अंतराय होवे यह प्रत्यक्ष मिथ्र ठिकाना है. अब हृदय के नेत्र खोलके देखो कि राजाने परिवार सहित आके अपराध खमाउंगा ऐसे कहा वहां भी मौन रक्खी और दान देनेका कहा वहां भी मौन रक्खी क्योंकि दोनों में सावद्य का सद्भाव है. और लाभ यानी धर्म का भी सद्भाव है. इससे साधुजन भिखारियों को दान देवो, तथा आडंबर करके वंदने को आवो, दोनों कार्य में मौन रखते हैं, नहीं तो निषेध करते हैं और नहीं स्थापन करते, है यह वीतराग का न्यायमार्ग है. परंतु अब भरामाये मित्रों! तुम्हारे गुरुजी की श्रद्धा और प्रवृत्ति में ध्यान देवो कि उनकी श्रद्धा और प्रवृत्ति किस तरह की है. यह दिखलाते है सो सुनिये प्रथम करुणा करके दान देने का निषेध नहीं करना सो तुम्हारे साधुजी प्रत्यक्ष निषेधते हैं और त्याग भी कराते है सो हमने ऊपर तुम्हारे गुरु भीखमजी की जोड़ है जिसकी ढाल की गाथा लिख दी है. अब देखो कि सिद्धांत में नहीं निषेध करना उसका तो निषेध कर रहे हैं और एकांत पाप बतलाते हैं और जो कोई आडंबर करके वंदना करने को आते हैं उसका निषेध या एकांत पाप तुम्हारे ग्रंथों में कहीं भी नहीं देखा है. उलटा यह सुनते हैं, कि तुम्हारे साधुजी तुमको उपदेश दे के त्याग कराते हैं कि हमारी पंचकोश दश कोष बीस

कोश तक सेवा करनी या पूज्यजी जिस ग्राम में होवे उस ग्राम में शालभर में एक दो वक्त आके जरूर दर्शन करने ऐसे त्याग कराते हैं और तुम लोग वैसे करते भी हो. अब देखलो कि सिद्धांत में दान देनेका नहीं निषेध करना. उसका तो निषेध करते और त्याग कराते हैं. एकांत पाप बतलाते हैं देने वाले को महा पापी कुकर्मी मानते हैं और परमेश्वर ने दशकोश बीश कोशादिक गृहस्थ को संग रखने की मनाइ करी है उसका त्याग कराके संघ में रखते हैं.

पूर्वपक्ष-गृहस्थ को पंचकोश दश कोशादिक तक संग में रखने की मनाई किस शास्त्र में करी है?

उत्तरपक्ष-सूत्र निसीथजी के दूसरा उद्देश में खुलासा पाठ है कि गृहस्थी तथा अन्य तीर्थी के संग में जंगल में जावे, शय्यादिक की जगे जावे या गृहस्थ के संग आहार पानी लेने को जावे और ग्रामानुग्राम विहार करे तो उस साधु को एक महीने का प्रायश्चित्त आवे है. इसका मूलपाठ ग्रंथा मध्य में लिखा है. अब पूर्वोक्त तीनों काम तुम्हारे गुरुजी करते हैं. तुम्हारे पूज्यजी शरीर चिंता को ढंढ लेजावे.
वहां भी तुमलोक संग जाते हो और तुम्हारे पूज्य जी तुम्हारी भक्ति गिनते हैं. और तुम निर्णय भी नहीं पूछते हो कि किस शास्त्र में यह कहर भगवंत ने फरमाया है कि गृहस्थी के संग शरीर चिंता को जाना, जाना तो कोई भी सूत्र में नहीं कहा है. परन्तु जंगल गृहस्थी संगाते जानेवाले को भला जाणे तो चौमासी प्रायश्चित्त आता है अब निरंतर मासी प्रायश्चित्त सेवने वाले को तुम्हारी श्रद्धा में साधु कैसे मानते हो. तथा

ग्रामानुग्राम भी तुम ऊंट घोड़े गाडी में बैठ के पूज्य जी की भक्ति निमित्त संग रहते हो. और पूज्य जी तुमको त्याग दिला के संग रखते हैं और धर्म मानते हैं. देखो २ बड़ा आश्चर्य है कि जिस काम को साधू को सफा मनाई करी है उस काम में तो तुम्हारे पूज्य जी भक्तिरूप धर्म मान कर तुम लोगों से मूल्य भोजनादिक लेते हुये विहार करते हैं और तुम लोकभक्ति करते हो और बिचारे गरीब अभ्यागत दुखी भुखी को देने का त्याग कराते हैं. और एकांत पाप बता के गरीबों की वृत्ति छेद करते हैं. बड़ा आश्चर्य है कि किस तरह ऐसी श्रद्धा बैठ जाती है हमने तो बुद्धिमानों के तोलने के लिये यह दोनों पक्ष स्पष्ट लिख दिये हैं. अब मध्यस्थ होगा तो तोल लेवेगा।

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी तो घोड़ा गाडी आदिक में बैठ के आने जाने को धर्म नहीं कहते हैं किंतु वंदनादिक को धर्म कहते हैं।

उत्तरपक्ष-जेकर आने जाने में धर्म नहीं कहते तो श्रावक को सामे आने के या साधु के संग में रहने के त्याग क्यों नहीं करावे. उलटी दशकोश वीशकोश भक्ति करना ऐसा क्यों कहे

पूर्वपक्ष-त्याग कराने से श्रावक की भक्ति भांगे, इस वास्ते साधु के सामने आनेका आडंवर से जानेका त्याग नहीं कराते

उत्तरपक्ष-हे भाई इसी से हम कहते हैं कि यह मिश्र धर्म है. खर्च सहित लाभ है, इससे प्रदेशी राजा को भी केसी श्रमण महाराज ने आडम्बर से आने की आज्ञा नहीं दी और न निषेध किया. वैसे ही दान देने की नहीं तो रजा दी, और नहीं निषेध किया. परंतु तुम्हारे गुरुजी श्रावक के संग विहार

दृष्टांत जहर अमृत का यहां नहीं मिले. बस हमारा तो मानना जैसा केसी श्रमण महाराज ने आडंबर से वंदना करने को आने में और दान देने में ज्ञेय पदार्थ है यानी जानने योग्य है सो मौन रखी, वैसाही हमारा मानना है और मंगतादिक को करुणा करके देना उसमें जितनी ममता पुद्गलों से उतार के देवे या करुणा दया आवे उतना शुभ योग्य पुन्य में है और हिंसादि सावद्य व्यापार होवे वह पाप में है, जिस काम का साधुजी निषेध नहीं करे या स्थापना भी नहीं करे, उसको मिश्रपक्ष कहना वह ज्ञेय पदार्थ जानने लायक है इति ।

इससे तुम्हारा लिखना है कि जो साधु के सिवाय दान में लाभ मानते हो तो बचा हुवा आहार दे के लाभ क्यों नहीं करते हो। इसका उत्तर ऊपर से संपूर्ण समझ लेना कि हम एकांत पुन्य नहीं कहते हैं अपितु मिश्रपक्ष है जिससे साधु को एकांत पुन्य कहने का या एकांत पाप कहने का ही कल्प नहीं तो देने लेने का कैसे होसके, यह बुद्धि बल से समझ लेना. तथा तुम्हारा उलटा प्रश्न है कि गृहस्थी असंयति अव्रति अन्यतीर्थी इनको दान देने में धर्म कहते हो सो पाठ दिखलावो. यह प्रश्न अनुचित है, क्योंकि हमारा एकांत मानना नहीं है जैसा सिद्धांत में मिश्रपक्ष कहा वैसा हम मानते हैं, और ऊपर लिख दिया है, तथा तुम्हारा लिखना प्रश्नोत्तर के पृष्ठ ८ वें में है, कि श्री तीर्थंकर भगवान का वर्षी दान देना जन्म महोत्सव के कलश का पानी ढोलना स्नान करने की रीति के समान है ।

यह भी अत्यन्त बिना विचारी बात है, क्योंकि स्नानको

दे पड़े तो श्री १९मा मल्लीनाथ परमेश्वरने भी वर्षीदान दिया फिर उनको एक प्रहर में ही. केवल ज्ञान क्यों उपजगया. उन को तुम्हारे कहने माफिक कर्म क्यों नहीं बंधे. तिसमे निश्चय जानो कि श्री तिर्थङ्कर भगवान् का वर्षीदान देना. स्नान करने में पानीका कलश ढोलना सरीसा कभी नहीं होता क्योंकि जल ढोलने का स्नान करने का निषेध तो श्रीभगवान ने करा है परन्तु करुणा करके दान देने का निषेध कोइ तीर्थङ्कर परमेश्वरने नहीं करा है ॥ इति ॥

इति प्रत्युत्तर दीपिकायां द्वितिये प्रत्युत्तरं समाप्तम्

॥ प्रश्न २ प्रारंभ ॥

४२ दूषण टालके आहार के भोगी प्रतिमाधारी। पड़िमाधारी उत्कृष्ट श्रावक गृहस्थी को ४२ दूषण टालके देने वाले को एकांत पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥

उत्तर—तेरे पंथियों ने प्रश्नोत्तर में छपवाया है. वह यह है श्री भगवान् महावीर स्वामी के पड़िमाधारी श्रावक आनंदजी ने संथारा (अनशनव्रत) में कहा है कि. मैं गृहस्थी हूं. यह बात उपासक दशा सूत्र के प्रथम अध्ययन में कही है. और गृहस्थी को अशणादि चारों आहार देने में भी भगवान् ने पाप कहा है। जिसके प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं। गृहस्थी को अशणादि चारों आहार देवे. दिवावे, देतेहुवे को अनुमोदन करे, तो चोमासी प्रायश्चित्त आवे। यह बात सूत्र निशीथ के १५ वें उद्देश के ७८ वें बोल में कही है. और भगवती सूत्र के ८ वें शतक के छठे उद्देश में भी कही है। जब कि श्री महावीर स्वामी के आनंदजी जैसे पड़िमाधारी उत्कृष्ट श्रावक ने अपने तांई गृहस्थी कहा है. और गृहस्थी को दान देने में श्रीभगवान ने एकांत पाप कहा है. तो आप समझ सके हैं कि गृहस्थी असंयती अव्रती अन्य तीर्थी को दान देने में पाप क्योंकर न होगा इति ॥ यह उनका उत्तर है ॥

अब इसका प्रत्युत्तर लु. पि. प्रथम तो इस विरुद्ध उत्तर को देख के विद्वान तो समझ ही लेंगे कि सूत्र का नाम लेकर कैसा सूत्र से उलटा और विरुद्ध उत्तर लिखा परन्तु अल्पज्ञ यानी कम समझने वालों के वास्ते भ्रम हो जाता है. इसको दूर करने के लिये इसका समाधान लिखते हैं [illegible]

लेवोगे तो अपने गुरुजी को भी अन्य संसारी पापी के समान मानने का दूषण तुम्हारी समझ को प्राप्त होवेगा। अब विचारो कि आनंदजी श्रावक, या अन्य पड़िमाधारी श्रावक, अन्य तीर्थी, गृहस्थी, सारंभी, किसी प्रमाण से ठहर ही नहीं सके हैं, तो पड़िमाधारी का मरन में असंयती अव्रती का ऊपरसे उत्तर देना सत्य होता ही कहां से।

पूर्वपक्ष-नसीथजी के १५ मा उद्देश के ७४ में बोल में तो समुच्चय गृहस्थी का कथन है उसको देवे, दिवावे, देते हुये को भला जाने, उसमें चौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

उत्तरपक्ष-अरे भाई, वहां तो साधु देवे, जिसका प्रायश्चित्त है। परंतु तुमने साधु का नाम गोप के देवे, दिवावे, देते को भला जाने, उसका प्रायश्चित आता है, ऐसा विरुद्ध लेख सूत्र का नाम लेके क्योंकर लिख दिया। और यह भी विचारना चाहिये, कि पड़िमाधारी श्रावक का तो साधु से जाचणेका कल्प ही किसी सूत्र में नहीं। तो फिर साधु से पड़िमाधारी जाचे ही नहीं तो साधु को प्रायश्चित्त आवे ही कैसे! इसलिये ज्यों नसीथ सूत्र के १५ मा उद्देश के ७४ में बोल में तो ऐसा पाठ है कि (जेभिक्खू, अनुत्थिएणवा, गारत्थिएणवा,) यानी जो साधु अन्य तीर्थी गृहस्थ को अशणादि आदि देवे तो प्रायश्चित्त आवे। तो वह सारंभी सपरिग्रही समझना। क्योंकि पड़िमाधारी तो साधु से लेवे ही नहीं, तो उनको साधु देवे ही कैसे, जिससे नसीथ की साक्षी बतानी भी बिना विचार की है. क्योंकि पड़िमाधारी श्रावक को अन्य तीर्थी सरीसे कहना विचारवान का काम नहीं।

पूर्वपक्ष-महावीरजीके साधु उद्देशिक लेवे उसमें तो दाता र और साधुजी दोनों को महावीरजीके साधु भला नहीं जाणे परंतु पारशनाथजी के साधु को भला जानने में कुछ दोष नहीं

उत्तरपक्ष-हे भाई वैसेही समझ लेवो कि. पड़िमाधारी श्रावक को साधु देवे जिसको साधु भला नहीं जाने. परन्तु गृहस्थ देवे उसका तो धर्म ही है. साधु भी उसको बुरा नहीं समझते हैं ।

पूर्वपक्ष-पड़िमाधारी श्रावक को देने में धर्म किस सिद्धांत में कहा है ?

उत्तरपक्ष-प्रथम तो हम दूसरे प्रश्न में ही सिद्ध करचुके हैं कि मंगते भिखारी को भी करुणा भाव से देने में पुन्यका सद्भाव है तो फिर पड़िमाधारी का तो कहना ही क्या। ११ मी पड़िमा धारी को तो साधु सरीसा कहा सो उसको देनेका फलभी साधु सरीसा समझना। सो ही कहते हैं सूत्र दशाश्रुत स्कंध का अध्ययन छठे में श्री भगवान् ने ११ मी श्रावक की पड़िमा फर्माई है तिसमें ऐसा पाठ है।

सूत्र—जे, इमे समणाणं, निगंत्थाणं, धम्मे, तंसम्मं, काएणं, फासेमाणे, पालेमाणे, पुरउ, जुगमायाए, पेहमाणे, दुः ण, तसेपाणे, उद्धट्टु, पायरिएज्जा, साहट्टु, पायरिएज्जा, वितिरिच्छंवा, पायकट्टु, रियज्जा, संतिपरकम्मे, संजयामेव, परिक्कमेज्जा, नो, उज्जुयं, गच्छेज्जा; इति ॥

अस्यार्थः—जे, इमे, समणाणं, निगत्थाणं, धम्मे, के. जे इयो सगण साघ नइ धर्म क्षमादिक- तंसम्मं, काएणं, फासेमा,

४ तीर्थों की अनुकंपा का करने वाला है, इत्यादिक साता का कामी होने से भविजावत् चरम भगवान् सनत्कुमार इन्द्र है। अब विचारना चाहिये कि सनत्कुमार इन्द्र साधु साध्वी श्रावक श्राविका की साता वंछने से ही सुलभ बोधी और चरम भवि का फल कहा तो फिर पड़िमाधारी उत्कृष्ट श्रावक को दातार निर्दोष भात पाणी देके साता उपजावे तो मोक्ष का फल क्यों नहीं होवे. अपितु होवे ही। तथा यह भी विचारो कि पड़िमाधारी श्रावक को दातार देवे, वह क्या जाण के देवे. क्या ११ मी पड़िमाधारी श्रावक को संसार का काम भोग सेवाने वास्ते देवे, या कोई पाप कराने को देवे। नहीं २ इन कामों के वास्ते तो पड़िमाधारी श्रावक को देने का संभव ही नहीं. क्योंकि ११ मी पड़िमा में पाप करने के त्याग हैं तो जो दातार पड़िमाधारी को देवे वह तो फक्त गुणग्राही जाण. गुण अनुमोदन करके देवे तो देनेवाले दातार को तो धर्मका लाभ ही ज होणका संभव होता है। तथा सूत्र में या ११ मी पड़िमा में भिक्षावृत्ति करणी भी तीर्थंकर ने उपदेशी है तो. जाणो कि श्रीतीर्थंकर भगवान ने केवल ज्ञान में महा लाभ दायक वृत्ती जानके ऐसी कठिन वृत्तिका उपदेशी है।

अगर तुम्हारे सरीखी श्रद्धा परमेश्वर की होती तो एक श्रावक पड़िमाधारी तो लिवे और घणो देवे वालो दाता डूबे ऐसी वृत्ति भगवान क्यों कर फरमाते। तो कहो भाई पड़िमाधारी श्रावक को दान देने में एकांत पाप बतावे वह क्या सरंग स भी ज्यादा जाना है? कभी नहीं। तथा ११ मी पड़िमा में तो पड़िमाधारी पाप करन का कराने का त्याग करे है तो

४ तीर्थों की अनुकंपा का करने वाला है, इत्यादिक साता का कामी होने से भविजीवन् चरम भगवान् सनत्कुमार इन्द्र है। अब विचारना चाहिये कि सनत्कुमार इन्द्र साधु साध्वी श्रावक श्राविका की साता वंछने से ही सुलभ बोधी और चरम भवि का फल कहा तो फिर पड़िमाधारी उत्कृष्ट श्रावक को दातार निर्दोष भात पाणी देके साता उपजावे तो मोक्ष का फल क्यों नहीं होवे. अपितु होवे ही। तथा यह भी विचारो कि पड़िमाधारी श्रावक को दातार देवे, वह क्या जाण के देवे. क्या ११ मी पड़िमाधारी श्रावक को संसार का काम भोग सेवाने वास्ते देवे, वा कोई पाप कराने को देवे। नहीं २ इन कामों के वास्ते तो पडिमाधारी श्रावक को देने का संभव ही नहीं. क्योंकि ११ मी पडिमा में पाप करने के त्याग हैं तो जो दातार पडिमाधारी को देवे वह तो फक्त गुणपात्र जाण. गुण अनुमोदन करके देवे तो देनेवाले दातार कोतो धर्मका लाभही न होणका संभव होता है। तथा सूत्रमें यह ११ मी पड़िमा में भिक्षावृत्ति करणी भी तीर्थंकरने उपदेशी है तो. जाणो कि श्रीतीर्थंकर भगवान ने केवल ज्ञान में महा लाभदायक वृत्ती जानके ऐसी कठिन वृत्तिका उपदेशी है।

अगर तुमारा सरीखी श्रद्धा परमेश्वर की होती तो एक श्रावक पड़िमाधारी तो लेवे और घणो देवे वाला दातार डूबे ऐसी वृत्ति भगवान् क्यों कर फरमाते। तो कहो भाई पड़िमाधारी श्रावक को दान देने में एकांत पाप बतावे वह क्या सर्वज्ञ से भी ज्यादा ज्ञानी है? कभी नहीं। तथा ११ मी पड़िमा ...मी पाप करने का कराने का त्याग कर है तो

पड़िमाधारी श्रावक जाने कि मेरे भिक्षा के लाने में दातार को एकांत पाप लगेगा तो फिर जाण के दूसरे को पाप लगाने को भिक्षा क्यों मांगने को जावे या भिक्षा मांग लावे तो उनके घनेरे को पाप नहीं कराने के त्याग थे, यह तुम्हारी श्रद्धा से तो त्याग भंग हुवे तो फिर त्याग भांगे तो आराधिक कैसे हुवे? तो इस तुम्हारी श्रद्धा से तो ११ मी पड़िमा के धारने वाले आराधिक होवे ही नहीं। तो फिर आनंदादिक ११ मी पड़िमा के धारन करने वाले आराधिक कैसे हुवे सो विचारनाजी। तथा एक पड़िमाधारी श्रावक था तो पाप रहे अर्थात् पाप से शुद्ध होवे और पड़िमाधारी श्रावक को दान देनेवाले बहुत से दातार हुवे तो एक जीव तो तिरे और घना जीव डूबे ऐसी हानि को भगवान कैसे करावे, या क्यों करावे। विचारो भाई, किसी प्रकार से सिद्ध नहीं होता कि पड़िमाधारी श्रावक को देने में एकांत पाप है और लाभ तो प्रत्यक्ष सिद्धांत से दीखता है।

पूर्वपक्ष—लाभ कहां लिखा है।

उत्तरपक्ष हमने ऊपर भगवतीजी का तीसरा शतक का पहिला उद्देश की साक्षी बताई है कि [illegible] तीर्थंकर का नाम उप-जाने के वास्ते होने से है। [illegible]

[illegible]

को जो कोई दातार निर्दोष भात पानी से भाव सहित प्रति-लाभे तो उस दातार को भी फल साधु सरीसा होवे ।

पूर्वपक्ष–११ मी पड़िमा को धारन करने वाला तो पड़िमा पूर्ण हुये पीछे गृहवास में चला जाता है, संसार का काम करता है, उसको देने में निर्जरा लाभ कैसे होवे ।

उत्तरपक्ष—प्रथम तो जिस श्रावक ने ११ मी पड़िमाधारी बाद गृहवास में जावे ऐसा संभव नहीं । ११ मी पड़िमा का काल पूर्ण होने से, या तो पुनः फेर पड़िमाधारन करे, या, संयम लेवे या संथारा करे। क्योंकि मांग के भिक्षा वृत्ति कियां बाद गृहवास में आने से जैनधर्म की हांसी होती है, इससे और आनंद-जी आदि १० श्रावकों ने ११ मी पड़िमाधारे बाद संथारा किया, परन्तु गृहवास में पीछे नहीं आये। वां यह बात कहनी भी संभव नहीं है कि ११ मी पड़िमाधारी पीछा गृहस्थ का काम करने लग जावे, दूसरा जो कदाचित् कर्म के जोरसे, कोई गृहस्था-श्रम में चला भी जावे, और गृहस्थ के सावद्य काम करने भी लग जावे तो दातार तो उसको साधु समान क्रिया कर्ता जान के देवे है, उसके गुण अनुमोदना करके देवे है, परन्तु गृहस्था-श्रम में जाने वास्ते नहीं, तो फिर देने वाले को पाप किस वास्ते लगे? या तुम हठ करके कहो कि देने वाले को पाप लगे ही, तो कोई साधु साधुपना पालता था उसवक्त में साधु जान के किसी ने दान दिया, तो फिर वह साधु कर्म के जोर से भ्रष्ट होगया तो दान देने वाले को धर्म हुवा कि पाप ।

पूर्वपक्ष- हम को तो मालूम नहीं पड़े कि यह भ्रष्ट होवेगा.

पालों, तिसका भागी दातार नहीं। जेकर ऐसा नहीं मानोंगे तो जिनको तुम गुरु श्रद्धते हो वह सर्व मृत्यु के पश्चात अव्रती होवेंगे, तो उनका अव्रत का पाप भी तुम को लगेगा। क्योंकि तुम्हारे अन्नादिक के प्रताप से तुम्हारी श्रद्धा से तुम्हारे गुरु देवलोक में जाते हैं। जेकर तुम दान देवो ही नहीं तो तुम्हारा गुरु कोई होवेही नहीं, और देवलोक में जावे ही नहीं तो फिर तुम तुम्हारे गुरु को दान क्यों देते हो।

पूर्वपक्ष—हमतो दानादिक करके हमारे गुरु का संयम साज देते हैं परंतु देवलोक के अव्रत सेवाने के कामी हम नहीं।

उत्तरपक्ष—वैसेही समझ लेवो कि पड़िमाधारी श्रावक को दातार साधु सरीसी वृत्ति पालने का साज देते हैं परंतु गृहस्थ संबंधि आश्रव से वाधने को नहीं। बस इसी तरह से सूत्र के प्रमाण से ११ मी पड़िमाधारी श्रावक को निर्दोष ४२ दूषण टाल के दातार भाव सहित दान देवे उसको तो साधु को देने सरीसा लाभ सूत्र से सिद्ध है परंतु एकांत पाप नहीं।

इति मत्युत्तरदीपिकायां तृतीयं मत्युत्तरं समाप्तम्।

अथ चतुर्थ प्रश्न प्रारंभ ।

साधुजी महाराज को किसी दुष्ट ने फांसी दी, और दयावान ने धर्म बुद्धि से खोल दी, तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ।

उत्तर–तेरेपंथियों का प्रथम तो साधु को फांसी देना ही धर्म विरुद्ध है क्योंकि साधु को फांसी कौन देवे। कारण साधु पंच महाव्रत पालता है, यह तो सदा धर्मज्ञ है उसको फांसी देने का प्रश्न ही वृथा है परंतु कोई अज्ञानता से प्रश्न करे उसके वास्ते शास्त्रोक्त उत्तर यह है ।

इसका प्रत्युत्तर–(समाधान) देखो भाई, जो पुरुष आप धर्म से विरुद्ध आचरण करता है, तब उसको दूसरे का प्रश्न भी विरुद्ध मालूम पड़ता है, क्योंकि जिनकी श्रद्धा ऐसी विपरीत है कि साधु को मरते हुये को फांसी काट के बचावे तो पाप लगता है, तो वैसे ही दया रहित पुरुषों को यह प्रश्न धर्म से विरुद्ध दीखता है, क्योंकि विरुद्ध धर्म वाले को दयारूप प्रश्न दीखता है। तथा आप अज्ञानी होवे जद दूसरे के सत्य प्रश्न को भी अज्ञान रूप बतावे, परन्तु खूब मालुम हुवा कि, तेरेपंथियों ने पूज्यजी से कैसे प्रश्न का उत्तर धार के लिखा है कि प्रश्न है तो भी इसप्रश्न को विपरीत बतलाते हैं। परन्तु हे सज्जन पुरुषो, जो मध्यस्थ दृष्टिवान होवो तो विचारना कि प्रश्न विरुद्ध है कि तुम्हारी समझ विरुद्ध है। सो लिखते हैं। प्रथम तो श्री अंतगडदशांग जी मे लिखा कि श्रीकृष्णजी के भाई और देवकी के अंगजात वसुदेवजी के

पुत्र मुनिगज सुकुमालजी श्रीनेमनाथ २२ मा तीर्थंकर के शिष्य तीन मुनि ने स्मशान में ध्यान किया, वहां पर सोमल ब्राह्मण ने द्वेष से मस्तक पर मिट्टी की पाल बांध के खैर के खीरे (अग्नि) भर दिये उस परिषह से मुनि काल कर गये। इस बात को जैनियों के छोटे २ लड़के भी जानते हैं, सो देखो भाई दुष्ट जीव ने आगे खीरे मुनि के शिरपर धर दिया, कोई दुष्ट द्वेष भावसे फांसी भी चढ़ावे, उसमें आश्चर्य क्या है। परन्तु क्या करें छोटे २ लड़के जितना भी ज्ञान उत्तर देने वाले को नहीं रहा, तिसका क्या किया जावे। तथा अन्य भी मुनियों को बहुत से दुष्टों ने परिषह दिये, उनका भी विस्तार जैन ग्रंथों में बहुत है, जैसे कि मेतारज मुनि के शिरपर सुनार ने आलावाद यानी चमड़ा बांध के मार डाले। खंदक मुनि की सारे शरीर की खाल उतरा डाली, जिससे मर गये। खंदक मुनि आदिक ५०० अणगार को पालक पुरोहित ने घाणी में घाल के पील डाले। कहो रे मित्र यह साधुपणा पालते थे कि नहीं? उनको यह महा मरणांतक कष्ट क्यों उपजाया।

पूर्वपक्ष—सयम तो पालते थे परन्तु, दुष्ट पुरुषों ने उनको परिषह उपजाया।

उत्तरपक्ष–अहोरे मित्र, हमारा यह प्रश्न है कि कोई दुष्ट पुरुष साधुजी को फांसी देवे और धर्मवान् पुरुष दया लाके काट देवे, तो तुमने इस प्रश्न को धर्म विरुद्ध कैसे बतलाया। यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घाणी में पीलणा यह खाल सब शरीर की उतारणी ऐसा घोर कर्म दुष्ट पुरुषों ने किया तो फिर साधू को फांसी देने रूप घोर कर्म कोई दुष्ट पुरुष करे, इसका सभव

गौतम स्वामीजी ने तो क्रिया का प्रश्न करा और तुमने पुन्य पाप का नाम लिख दिया सो आगे मूल पाठ से दिखावेंगे अभी तो इनका उत्तर संपूर्ण लिखते हैं. फिर श्री भगवान ने सूत्र निशीथ के ३ रे उद्देश के ३४ वें बोल में कहा है कि साधु हर्ष छेदे छिदावे छेदते हुए को भला जाने तो १ महीने का प्रायश्चित्त आवे तथा सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध में तेरहवें अध्ययन में कहा है कि किसी साधु के व्रण फोड़ा फुंसी आदि हैं उसको गृहस्थी छेदे तो उसका अनुमोदन करना वर्जित है यह तेरापंथियों का उत्तर है.

अब इसका प्रत्युत्तर सुनिये कि प्रथम तो यह उत्तर मूल से ही विरुद्ध है क्योंकि प्रश्न तो फांसी का और उत्तर देना मसों का यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है. परन्तु तुम क्या करो तुमारे गुरुजी ने भ्रमविध्वंसन के ११२ वे पत्र पे फांसी छेदने का तो अपने मुखसे प्रश्न उठाया और उत्तर हर्ष छेदने का दिया इस से कहते हैं कि भ्रमविध्वंसन के भ्रम के गोलों का पार नहीं.

पूर्वपक्ष मसा छेदने में क्रिया है तो फांसीमें भी है.

उत्तरपक्ष मसा छेदने में तो क्रिया शुभ कही है. उसका समाधान आगे सूत्र और अर्थ टीका सहित करेंगे परन्तु हाल तो यह विचारो कि मसा तो साधु के शरीरका एक अवयव है परन्तु फांसी की रस्सी तो साधु की नहीं, यह तो गृहस्थ की है उसको किसी दयावान ने साधु के बचाने निमित्त काट डाली उसमें पाप कहांसे हुआ.

पूर्वपक्ष साधु को गृहस्थों से काम कराने का त्याग है और गृहस्थों करे तो उपकार पुण्य न किसी बात का त्याग किया

को गृहस्थ से काम कराने का त्याग है ऐसा गोलमाल कह-दिया, परन्तु कौनसा कार्य नहीं कराना, तिसका विधान नहीं खोला. अब हम पूछते हैं कि कोई साधु के ५ या १० हाथ कपड़े की जरूरत हुई तब कोई गृहस्थ दातार से साधु ने मांगा तब वह दातार बहुत देने लगा, तब साधु बोला कि ५ हाथ फाड़ दो तब दातार ने फाड़दिया. कहो भाई यह कपड़े फाड़ने रूप कार्य दातार ने साधु वास्ते किया तो उस दातार को पाप हुवा या धर्म या साधुजी के गृहस्थी से काम कराने के त्याग भांगे कि रहे.

पूर्वपक्ष इस में तो दातार को धर्म हुवा क्योंकि साधु को कपड़ा देने से साधु का संयम को उपष्टंभ यानी आधार दिया और साधु जी के भी त्याग नहीं भांगे क्योंकि कपड़ा आहार पानी तो गृहस्थों से लेते हैं इसके त्याग नहीं हैं अपनी नेस-राय की चीज को तोड़नेफोड़नेरूप काम गृहस्थ से नहीं कराते हैं. कपड़ा तो गृहस्थ का है उसको साधु के वास्ते फाड़के देवे तो लेने में कुछ भी दोष नहीं.

उत्तर पक्ष ना ? भाई हम ऐसेही कहते हैं कि जो तीन हाथ का पसाठाव कपड़ा फाड के गृहस्थी देवे तो देने वाले को धर्म हुवा. तो ये क्या आधी अंगुली की जाड़ी फांसी की रस्सी को साधु का वचन बाध्य काटे तो उसमें पाप कहां से ठहराया [illegible] मस्तक [illegible] कपड़ा [illegible] के साधु का साधु [illegible] [illegible] [illegible] साधु को [illegible] [illegible] लगा दिया [illegible] कपड़ा [illegible] साधु को

समझ लेना. हम तो तुम्हारे हित के लिये जो सिद्धांत में मर-णांत कष्ट होने से कोई कार्य गृहस्थी साधु का करे तो स्थिवरकल्पी साधू को कल्पे तिसका मूल सूत्र का पाठ लिख दिखाते हैं सो एकाग्रचित्त करके श्रवण करिये. सूत्र व्यवहार का उद्देशा पांचवां सूत्र २२ मां का पाठ।

सूत्र–निग्रंथचणं, राउवा, वियालेवा, देहपुठो, लुसिज्जा, तंइत्थी एवा, पुरिसोवा. उमजेज्जा, पुरिसोवा, इत्थीए, उमजेज्जा, एवंसे, कप्पति, एवंसे चिठति, परिहारेचं, नोपाउणति, एस कप्पो, थेर कप्पियाणं, एवंसे, नोकप्पति, एवंसे, नो चिठइ, परिहारं च, पउणइ, एसकप्पो, जिण कप्पयाणं,

इसका टबार्थ जैसा है तैसा लिखते हैं–साधु साध्वी नइ रात्रइ वियालेइ देह सर्व सर्व विप डंक दीघो करइ पुरुषनेइ हाथेइकरी डसनी तिगिच्छा करावइ तेएहवो डसइ तिवारे कारने स्त्री जाते पुरुषइ स्त्री ने हाथे करी डसनी तिगिच्छा करइ इम इण परेइ एणइ प्रकारे ते थिवर कल्पी नइ कल्पे थिवर कल्पी अपवादी वहु इच्छी एण प्रकारेइ ते थिवर कल्पी ने अपवाद सेवनां परियाय तिए रई पिण थिवर कल्पी भूषन थाई परिहार तप पिण न पावे एह कल्प आचार थिवर कल्पी नो कहेऊ इम तेह नेइ नइ कल्पइ इणे प्रकारे व्यावच नो कराउवो जिन कल्पी ने न कल्पई उत्सर्ग थित इण प्रकारे जिन कल्पी पर्याय न तिष्ठ न रहेइ परिहार तप पिण पावइ एह कल्प जिण कल्पी नो कहेउ इम मे जिन कल्पी ने रहे प्रायश्चित्त पावे एह आचार जिन कल्पी ने एह कल्पे ॥ इत्यर्थ

अब अन्त्री नाग मे इस सूत्र के मूलपाठ में साफ कहा

है कि साधू साध्वी को सर्प काटे तिसके जहर को कोई गृहस्थ स्त्री वा पुरुष हाथादिक का झाड़ा देकर उतारे तो स्थिवर कल्पी साधू को कल्पे और इसका प्रायश्चित्त भी कुछ नहीं आवे. अब विचारो कि जब सर्प का जहर भी साधू साध्वी को गृहस्थी के पास झड़ाना कल्पे ऐसा मूलपाठ सूत्र का बोल रहा है तो तुम्हारे गुरु जीतमलजी का कहना सर्वथा वृथा है और सिद्धांत से विरुद्ध है कि नहीं जो साधू की फांसी काटने मे पाप बतलाया और जिसने साधू को फांसी काटी उसका त्याग भंग कराने वाला बतलाया. हे मित्रो ! वीतराग के वचनों की प्रतीति हो तो विचारना कि जो साधू साध्वी को सर्प का जहर झड़ाना कल्पे तो फिर फांसी कटानी क्यों नहीं कल्पे. सिद्धांत के लेख से साधू को सर्प के डंक का जहर उतारने मे और फांसी काटने में एकांत धर्म है और स्थिवर कल्पी साधू साध्वी को सर्प के जहर झड़ाने का व फांसी की रस्सी कटाने का त्याग भी नहीं है जिससे इन उपरोक्त कामों का साधू को प्रायश्चित्त भी नहीं है।

अब जो तुम्हारी सूत्र भगवतीजी की साक्षी अरण जाण मनुष्यों को भ्रमाणे के लिये दी है सो हम सूत्र पाठ लिखके भ्रम दूर करते हैं एकाग्र चित्त करके श्रवण करो।

सूत्रपाठ-तस्सय. अंनियाइ. लंबइ. तंचेविभ्भ. अदपुइ. सि. पाडेइ. पाडेइत्ता. अंसिया. उछिंदेभ्भा. सेनूणं. भंतेजे. छिंदेभ्भा, तस्सकइ. किरिया. कज्जइ. जस्सछिज्जइणो. तस्सकिरिया. कज्जइ. णणत्थेगेणं. धम्मतरायएणं.हंता. गोयमा. जोछिदइ. धम्मं तरायए. ॥ इति ॥

अस्यार्थः तेहने व्रण फोडा हर्ष ते नासिकारी लटके छे तेने तेह ज प्रते निश्चय वैद्य देखी ने आपि प्रति भूमिकाई लगारे कपाडी ने पद्या विना छेदाए नहीं. ते भणी हर्ष पाछणा थी छेदइ ते निश्चय है. भगवान् ते वैद्य हर्ष प्रते छेदे तेने केतली क्रिया लागे. वैद्य ने क्रिया व्यापार रूप ते शुभ धर्मनी बुद्धि छेदताने अने लोभादिकथी छेदता ने अशुभ क्रिया होवे. जे साधूनी हर्ष छेदे ते साधू ने क्रिया न हुवे. निर्व्यापार पणा थकी सर्वथा क्रिया अभाव अथवा इम नहीं से कहे छे एक धर्म अंतराय लक्षण क्रिया तेने पिण थाए एतले धर्म अंतराय शुभध्यान नो विछेद हर्ष छेदन अनुमोदना थी इति प्रश्नः

उत्तर-हे गौतम जे छेदे इत्यादि, धर्म अंतराय एतला लगे कहवो. ॥ इति सूत्रार्थ ॥

अब देखो भाई इहां सूत्र में तो जो वैद्य धर्म बुद्धि से छेदे तो उसको शुभ क्रिया यानी पुन्य या धर्म है और जेकर लोभलाभ से हर्ष छेदे तो अशुभ क्रिया है फिर तुम या तुम्हारे गुरुजी धर्म बुद्धि से मुनि का हर्ष वैद्य छेदे, तिसमें पाप कहां से कहते हो. तथा टीका में भी ऐसा ही खुलासा है.

तथा च टीका ॥ तस्सति वैद्यस्य क्रिया व्यापार रूपा साच शुभा धर्म बुध्याछिदानस्य. लोभादिनात्व शुभा क्रियते.

टीकार्थ-तिस वैद्य की क्रिया छेदन व्यापार रूपा सो क्रिया शुभ है धर्म बुद्धि करके काटे तो लोभादिक करके काटे तो अशुभ होती है. इति

अब फिर इसी टीका मे विचारलो कि धर्म बुद्धि से हर्ष

हुए तो कहो भाई उस साधू को संकल्प विकल्प मलीन परिणाम से दातार देनेवाले को दान देने में धर्म हुवा कि पाप.

पूर्वपक्ष—दातार को तो धर्म है क्योंकि दाता का भावतो उन मुनि को साता उपजाने के हैं परंतु मलीन परणिाम करने के या तकलीफ उपजाने का नहीं।

उत्तर पक्ष—तो हे भाई वैसे ही क्यों नहीं समझते कि वैद्य का भाव तो मुनि के दुःख मिटाने के हैं परंतु साधू के धर्म अंतराय पाड़ने के नहीं और मुनि अपना कल्प छोड़ के अनुमोदना करे तो धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को तो धर्म ही होवे. धर्म के भाव से हर्ष काटने से तथा कोई गृहस्थ ने पथ्य मनोज्ञ आहार कोई साधू को दिया और साधू ने उस पर राग भाव अच्छा जाण सराह के खाया तो खाने वाले साधू को दोष लगा परन्तु दातार को धर्म ही हुवा वैसे ही हर्ष छेदने का साधू अनुमोदे तो साधू को धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को अशुभ क्रिया नहीं, तथा तुम्हारा यह भी कहना ठीक नहीं कि जिस काम को साधू भला नहीं जाणे उसमें किंचित्मात्र धर्म नहीं, क्योंकि कई काम ऐसे ही हैं कि साधू को अनुमोदना नहीं करनी परन्तु गृहस्थी को धर्म का लाभ होता है सो दिखाते हैं. जैसे कोई मुनि विहार करके जाते उस वक्त कोई गृहस्थ भक्तिवान साधू को पहुंचाने को चला, साधू ने निषेध कर दिया तो भी वह गृहस्थ मुनि की भक्ति के वास्ते पांच सात कोस संग गया अब साधू तो उसको भला भी नहीं जाणे उसमें कुछ लेन भी नहीं. जेकर साधू उसतें लेने का परिचय करे या भला जाणे तो उसको प्रायश्चित्त आवे.

अब कहो भाई साधू की भक्ति वास्ते गृहस्थी साधू के संग जावे उसको साधू तो भला नहीं जाणे परन्तु गृहस्थी को तो भक्ति का लाभ हुवा कि नहीं. तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो वह गृहस्थ साधू के त्यागको भंगाने का कामी ठहरा उससे एकांत पाप उस गृहस्थी को हुवा समझते होगें जेकर एकांत पाप होवे तो फिर तुम लोक तुम्हारे पूज्य आदिकों को कई कोश लग पहुंचाने क्यों जाते हो या तुम्हारे गुरुजी तुम्हारे संगाते क्यों विहार करते हैं और तुम को पांच सात कोश तक सेवा भक्ति करणी ऐसा नियम क्यों कराते हैं तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो तुम सर्व तेरेपंथी श्रावक कि जो तुम्हारे गुरु को पहुंचाने जाते या संग रहते वह या तुम्हारे गुरुजी जो तुम्हारे संग विहार करें यह सर्व तुम्हारी श्रद्धानुसार भगवंत की आज्ञा बाहिर ठहरें ।

क्योंकि श्रीभगवान ने तो एक वक्त भी गृहस्थ के संगाते विहार करे तो प्रायश्चित्त आवे ऐसा फुरमाया है तो फिर तुम्हारे पूज्यजी तो गृहस्थी के संग विना प्रायः विहार करते ही नहीं. तो तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तुम्हारे पूज्य जी को भी हमेशा दोष लगता होगा. और एक वक्त दोष लगावे तो तुम्हारी श्रद्धा साधू मानने की है नहीं, तो फिर यह बड़ा विचार का कार्य है. सो बुद्धिमान समझ लेवोगे. या तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार जो श्रावक श्राविका साधू को पहुंचाने जाते हैं कोशावंध संग रहते हैं वह भी साधू का साधू पणा के लुटार ठहरे. तो यह तो बड़ा पाप है. कि साधू का साधू पणा लुटाणा तो वह जो साधू को पहुंचाने जावे, या संग रहे, वह सब महापापी ठहरेंगे.

पूर्वपक्ष-साधू को गृहस्थ संग विहार करने का प्रायश्चित किस सूत्र में कहा है.

उत्तरपक्ष-सूत्र नसीथ के दूसरे उद्देश के ४० वा ४१ वा ४२ वा सूत्र में खुलासा पाठ है. सो लिखते हैं ध्यान लगा कर सुनिये—

सूत्र पाठ-जेभिखु, अन्नउत्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिएणं, सद्धिं, गाहावइ, कुलं, पिंडवाय, पडियाए, अणुपविसइ, झावा, निक्खमइ, झावा, अणु, पविसंतवा, निक्खमंतंवा, साइज्जइ, ४० जेभिखु, अन्नउत्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिउवा, एणं सद्धिं, बहिया, वियारभूमिंवा, विहारभूमिवा, निक्खमइझावा, पविसइझावा, निक्खमंतवा, पविसंतवा, साइज्जइ, ४१ जेभिखु, अन्नउत्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिएणं, सद्धिं, गामाणुगाम, दुइज्जइ, दुइज्जंतंवा, साइज्जइ, ४२ ॥ इति ॥

अब देखो सूत्र नसीथजी के मूलपाठ में लिखा है अब अच्छी तरह से हृदय के ज्ञान नेत्र खोल कर के देखो कि जो साधु अन्यतीर्थी अथवा गृहस्थी अथवा पासत्था के साथे गोचरी आदि शरीर चिंता को जावे. गामानुगाम की भूमिका में जावे या ग्रामानुग्राम विहार करे, करावे, करते हुए को भला जाने तो उस साधु को ? मास का प्रायश्चित आवे. अब विचारना चाहिये कि तुम्हारे पूज्य गृहस्थी के साथ बैठने का भी जानते हैं और तुम लोक मालवा मारवाड़ पंजाबादि देश में भी लोगों और तुम्हारे पूज्य भी कई गृहस्थियों के संग शरीर चिंता को भी जाते हैं और तुम लोक गृहस्थों के साथ गांव गांव के शरीर

उत्तरपक्ष-सूत्र आचारांग के दूसरे श्रुतस्कंध के १५ वां अध्ययन में श्री महावीर प्रभु जी दीक्षा लेके विहार करा. तब सर्व कुटुम्ब को भाषासमिति से विसर्जन किये. यानि आगे हमारे संग मत आवो ऐसे कह के आगे चले. वैसे ही साधू भी गृहस्थ को निषेध करके आगे विहार करते हैं और निषेध करणे उपरांत भी मुनि की सेवा भक्ति करणे को गृहस्थी आवे तो मुनि उससे अन्न पाणी नहीं लेवे उसका साज रस्ते में नहीं वंछे. क्योंकि उससे अन्न पाणी आदि लेवे तो वह साधू गृहस्थी को संग रखने का कामी ठहरा और गृहस्थी को संग राखे, रखावे, रखते को भाला जाणे तो साधू को एक मास का प्रा, यश्चित्त आवे, इस वास्ते साधू तो उस को अनुमोदे भी नहीं. उससे कुछ लेवे भी नहीं. किन्तु निस्पृहणीय रहे. और उस आते हुए को निषेध भी देवे कि हमारे संग मत आवो. तो उस साधू को दोष नहीं संभवे. परन्तु जो मुनि के गुण को अनुमोदन करके मुनि की सेवा भक्ति बने जहां तक करे तो उस भक्ति के करने वाले को तो भक्ति का धर्म यानी लाभ ही हुवा. और जो एकांत पाप होता तो श्री भगवान् श्रावकों को मनादि फरमा देते कि तुम को मुनि के सामने जाना नहीं कल्पे या पहुंचाने जाना नहीं कल्पे. ऐसा कोई सूत्र में लेख नहीं है. अब वैसे ही समझ लेवो. कि जैसे साधू का गृहस्थ के संग जाने का विहार करने का कल्प नहीं. और गृहस्थ संग आवे तो निषेध भी करदेवे. परन्तु गृहस्थी अपनी भक्ति से मुनि के गुण अनुमोदन भक्ति का लाभ ही है. वैसे ही मुनि को गृहस्थी से दर्प छेदन कराना नहीं. अगर छेदवावे तो प्रायश्चित्त आवे

बांधे, बंधावे, तथा बांधते हुए को अनुमोदे तो चौमासी प्रायश्चित आवे. यह पाठ श्रीभगवान् ने स्पष्ट रीति से कहा है, जिसपर भी आप लोग नहीं मानोगे तो हम लोग आप लोगों को मोहनी कर्म का उदय विशेष समझेंगे यह तेरे पंथियों का उत्तर है.

इसका प्रत्युत्तर सुनिये—देखो देखो देखो भाई! तुम लोगों की भूल का कहां तक कथन किया जावे कि प्रथम तो नशीथ जी का १२ वां उद्देश का पाठ जिसको तुमने १३ वां उद्देश बतलाया और सूत्र तो गद्यरूप है जिसको तुमने पद्यरूप यानी गाथा बतलाई और सिद्धांत में तो (अभिक्खु, कोलूण, वडियाए) यानी जो साधु करुणावश जीव को करुणावती, दया मणी पणे की वृत्ति करके बांधे, बंधावे या अनुमोदे, छोड़े छुड़ावे या अनुमोदे तो साधू को प्रायश्चित्त आवे और तुमने साधू का नाम और दयामणी वृत्ती का नाम छोड़ के समचे बांधे, बंधावे इत्यादि गोलमाल सूत्र से विरुद्ध लिख दिया तो अब विचारो कि मोहनी कर्म का उदय तुम्हारे प्रबल होरहा है कि नहीं, क्योंकि सूत्र का हर्फ १ भी जाण के ज्यादा कमती लिखे तो उसको मिथ्यात्व मोहनी कर्म लागे. मिथ्यात्व मोहनी जिसके उदयभाव में होवे वो ही विरुद्ध लिखे, कदाच तुम्हारे गुरुजी ने तुमको गोलमाल विपरीत धरा दिया तो उनको तो अपनी असत्य कल्पना को सूत्र का नाम ले के सत्य करने की लोभ दशा आगई होवे तो खैर उनकी वो जाणे, परन्तु तुमको तो गुरुजी से पूछना था कि चौमासी प्रायश्चित त्रस जीव गृहस्थी छोड़े

बंधावे खोले खुलावे ही काये को यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि पशु आदिक का बांधना, लड़का लड़की राखना, खाना, चराना, हाथी घोड़े पालना इत्यादि काम तो साधु प्रत्यक्ष करते ही नहीं, जैन साधु तो अलग ही रहे परन्तु अन्य राम-स्नेही सन्यासी आदि अपने मत की क्रिया में चलते हैं वे भी ऐसा काम नहीं करते हैं कि किसी के गाय आदि पशु को बांधना खोलना तो साधु तो बांधे खोलेही कैसे अगर कदा-चित् कोई साधुपणे से परमेश्वर की आज्ञा को उलंघ के किसी गृहस्थादि की खुशामद से या आजीविका का लिया कोई गृहस्थ के पशुआदि जानवर को बांधे, बंधावे, खोले, खुलावे जिसमें प्रायश्चित्त आवे, नशीथ में सर्व कथन साधु का है परन्तु गृहस्थ का नहीं परन्तु मरते, हुए जीव को कोई खोले या जाल में बाहर निकाले, जिसका प्रायश्चित्त कहा होवे तो बतावो ?

पूर्वपक्ष हमारे गुरुजी कहते हैं कि सूत्र नशीथ के १२ वें उद्देश में ऐसा पाठ है—

सूत्र-जे भिक्खु, कोलुण, पडियाए, अन्नयरं, तसपाणं, जाइं, तणपासए, मुंजा. मुंजपासएणवा, कट्ठपासएणवा, चम्म-पासएणवा, वेत्तपासएणवा, रज्जुपासएणवा, सुत्तपासएणवा, बंधइ, बंधंतंवासाइज्जइ १ जेभिक्खु, बद्धेल्लयं, मुयइ, मुयंत-वासाइज्जइ २

इस पाठ में कहते हैं कि [illegible] जीव [illegible]

बंधावे खोले खुलावे ही कार्य को यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि पशु आदिक का बांधना, लड़का लड़की राखना, खाना, चराना, हाथी घोड़े पालना इत्यादि काम तो साधु प्रत्यक्ष करते ही नहीं, जैन साधु तो अलग ही रहे परन्तु अन्य रामस्नेही सन्यासी आदि अपने मत की क्रिया में चलते हैं वे भी ऐसा काम नहीं करते हैं कि किसी के गाय आदि पशु को बांधना खोलना तो साधु तो बांधे खोलेही कैसे अगर कदापित् कोई साधूपणे से परमेश्वर की आज्ञा को उलंघ के किसी गृहस्थादि की खुशामद से या आजीविका कालिया कोई गृहस्थ के पशुआदि जानवर को बांधे, बंधावे, खोले, खुलावे जिसमें प्रायश्चित्त आवे, नशीथ में सर्व कथन साधू का है परन्तु गृहस्थ का नहीं परन्तु मरते, हुए जीव को कोई खोले या लाय से बाहर निकाले, जिसका प्रायश्चित्त कहा होवे तो बतावो ?

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि सूत्र नशीथ के १२ वें उद्देश में ऐसा पाठ है—

सूत्र-जेभिक्खु, कोलूण, वडियाए, अणयरं, तसपाणं, जाई, तणपासए, णवा, मुंजपासएणवा, कट्ठपासएणवा, चम्मपासएणवा, वेत्तपासएणवा, रज्जुपासएणवा, सुभपासएणवा, वधइ, वधंतंवासाइज्जइ १ जेभिक्खु, बद्धिल्लतंवा, मुयइ, मुयंतंवासाइज्जइ २.

इस पाठ से कहते हैं कि जेभिक्खु कहिये साधू त्रस जीव ने बांधे तथा खोले तो प्रायश्चित्त आता है तो फेर गायों को

साना बताया तो वैसा ही कुंलुणवडिया शब्द का अर्थ करुणा करके खोलना का भी अघटित है क्योंकि सूत्र का पाठ कोलुण वडिया ऐसा है परन्तु अनुकंपवडियाए नहीं है तथा तुम्हारे गुरुजी ने (कोलुणवडियाए) शब्द को करुणा स्थापना निषिध सूत्र आचारांग श्रुतस्कंध २ अध्ययन २ उ० १ की साक्षी दी सो भी सूत्र विरुद्ध भाषे हैं क्योंकि आचारांग में तो (करुण, वडियाए) ऐसा पाठ है और नशीथजी में (कोलुण, वडियाए,) ऐसा पाठ है ॥ अर्थ ॥ तो कोलुण कृपा याने आजीविका का होना है और आचारांग में (करुण, वडियाए) इसका अर्थ करुणा अनुकंपा भक्ति अर्थ ऐसा होता है सो टीका में भी कहा है (यतः कारुण्यवत अनुकंपा) तो नशीथ का और आचारांग का पाठ अर्थ एकसा है नहीं तो साक्षी लिखना भी भ्रम का प्रताप है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी ने अंतगड सूत्र में गजसुकमालजी की अनुकंपा की साक्षी दी है.

उत्तरपक्ष—वहां तो अनुकंप उवाए पाठ है परन्तु अनुकंपा वडियाए ऐसा पाठ नहीं है सो भी अयुक्त साक्षी है तथा तुम्हारे गुरुजी ने श्रीकृष्ण की साक्षी दीनी सो भी निरर्थक है क्या कि वहां भी अनुकंप उवाए ऐसा पाठ है सो निशीथ में नहीं लिखे तथा जिन रक्षिता की रेणा देवी ऊपर करुणा करना ऐसी साक्षी देते हैं वह भी अघटित है क्योंकि सूत्र में ना ऐसा पाठ है कि रेणा देवी ने जिन रक्षित उनसे किया वहां ऐसा पाठ है जिनको लिये कलुण किए उनसे किये। तत्पश्चात् ॥ जिनरक्ष तब साहित देवी सन्ति कांति करुणा दया-

ाणी में डाले नहीं वो तो अपने आप
णे में तुम्हारी श्रद्धा अनुसार तो तुम्हारे
गे क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा तो ऐसी है कि कोई
ने तो जीवणा मरणा वंछना नहीं ऐसी
है तो फिर पात्र में से मरते हुए जीवको

णा निमित्त नहीं काढ़ते वे तो अपने जला-
मित्त काढ़ते हैं.

बात मिथ्या है क्योंकि जेकर अपने
काढ़े तो फिर मक्खी आदिक को कपड़ा
ीवती क्यों काढ़े क्योंकि जीवती काढ़ने
छा और नहीं काढ़े तो मरणा वंछा
ा तो फिर तुम्हारी जीवणे मरणे की
र्थ हुई तथा करुणा करके नहीं काढ़ते
योंकि जीवको बचाने में करुणा दया
करूणा हिंसा होती है यह सिद्धांत
भी सिद्ध है तो फिर करुणा करके
ं नहीं काढ़ते तो क्या हिंसा अर्थ
होता क्योंकि हिंसा अर्थ...

उत्तरपक्ष-सुनिये भाई प्रथम इस निशीथ सूत्र का पाठ ही कोलुण वडियाए ऐसा है जिसका अर्थ करुणा वृत्ति होता है तथापि हम ऐसा ही पाठ दूसरे सूत्र से बताते हैं साख सूत्र दुःख विपाक के पहिले अध्ययन में एक जन्मांध भिखारी का अधिकार चला है तहां ऐसा पाठ है—

सूत्र-मियग्गाम, नयरे, गिहे गिहे कोलुणवडियाए, वित्तिं कप्पेमाणे, विहरइ.

अस्यार्थः-मृगागाम नगर में घर २ ने विषे दीनवृत्ते करी आजीविका करतो थको विचरे छे अब देखो कि अंध पुरुष मृगागाम नगर ने विषे घर २ प्रते (कोलुण वडियाए) कहता दिन वृत्ति तो विचारो कि कोलुण वडिया नाम दीन वृत्ति का है कि नहीं तथा इस सूत्र की टीका में भी कहा है (कोलुण वडियाएत्ति कारुण्य वृत्या वित्तिं कप्पेमाणेत्ति जीविका कुर्वाणः) तो देखो टीका में भी कहा कि करुणा की वृत्ति करके आजीविका करता भया ए देखो करुणा की वृत्ति यानी दीन दयामण शब्द करके आजीविका करणे वाला भिखारी अंध पुरुष कहा वैसे ही निशीथ में कोलुण वडिया शब्द करुणा की वृत्ति यानी दयामणी वृत्ति करके दुःख बोलणा छोड़ना करके आजीविका भिक्षा करणी वर्जित करी है तथा सूत्र उत्तराध्ययन के अध्ययन ३६ गाथा १३ की का दूहा ४ में (कारुण्य दीणे हरिवेर इणो) यहां भी कहा है कि जो दासादिक में आतुर होवें वो (कारुण्य दीणे कहता करुणा दीन दयामणा होवे तथा टीका में भी कहा. तथा च टीका ॥ कीडकन्नू कारुणिके प्रति. कारुण्य कारुण्यवन्तेन दीन कारुण्य दीन करुणं दीन इत्यर्थः)

भत्यार्थः-कैसा होता हुआ उसको देख के दूसरे को करुणा आवे उसको अत्यंत दीन कहते हैं इति टीकार्थ।

देखो इस सूत्र पाठ टीका में भी कारुण्य नाम दीनपने का कहा है तथा सूत्र प्रश्न व्याकरण का १ संवर द्वार की ३ भावना में साधु को भिक्षा की विधि बताई है वहां भी ऐसा पाठ है (अदीणे अकलुणे) दीनपणा रहित दयामणा पणे रहित, अब देखो यहां सूत्र में अकलुणे नाम दयामणा पणा रहित भिक्षा करे तो साधु भगवंत की आज्ञा का आराधिक है और अकलुणे करने दयामणा पणे से भिक्षा लेवे तो प्रायश्चित्त आता है जैसे ही विचारो कि तुम्हारे गुरुजी भ्रम विध्वंसन में (कोलुण वडियाए) इसका अर्थ अनुकंपा का लिख के जीव मरते हुए को बचाने में पाप लगना है वो कदापि नहीं मिलता, क्योंकि दयावान करुणावान तो साधु सदा ही होते हैं करुणा का दया का प्रायश्चित्त किसी सिद्धांत में नहीं फक्त कोलुण वडियाए नाम तो दयामणे की वृत्ति का है सो साधु को दीन दयामणी वृत्ति करणी भगवान ने वर्जी है॥ परंतु ऐसा तो भी भगवान ने किसी सिद्धांत में नहीं फरमाया कि हे साधु तू करुणा दया मत करजे बलदा करुणा दया करणे का तो उपदेश सूत्र में ठाम २ परमेश्वर ने फरमाया है तो फिर तुम सिद्धांत विरुद्ध अर्थ क्यों करते हो कि अनुकंपा करके त्रस जीव को नहीं छोड़ना यह सूत्र से असंभव श्रद्धा तो तुम्हारी ही है परंतु दयावंत उत्तम प्राणी की नहीं होती तथा तुम्हारे भ्रम विध्वंसन में जोड़ अनुकंपा सिद्ध करने को रेणा देवी की साक्षी दी है सो भी विपरीति है क्योंकि

मूत्र में जो ऐसा लेख है कि रयणा देवी ने जिनरिख को अनेक प्रकार के मोहरूप सिंगार रस के करुणा रस के शब्द सुनके मोहरूप करुणारूप रस उत्पन्न हुवा परन्तु दया अनु-कंपा जीव बचाणे कि नहीं सो हमने ऊपर मूल पाठ सहित लिखा है और यह करुणा रस का वर्णन मूत्र अणयोग द्वार में है सो सुनिये-

पि, अविप्प, ओयंबंधवह, वाहिविणी, वाय, संभमुप्पण्णो सोई, आविलवि, अप, पहाय, रुआलिंगो, रसोकरुणो, ॥ १६॥

अस्यार्थः—अब करुणा रस हेतु,लक्षण थी कहे छे पि अगार। प्रिय विप्रयोग बंध व्यथा व्याधि विनिपात सम्भ्रम थी उपनो करुणा रस हुई ए संबंध तिहां प्रिय विप्रयोग वल्लभ नु वियोग तथा बंधन व्यथा पीडन व्याधी रोग विनिपात करता पुत्रादिक रख तथा संभ्रम वे पर चक्रादिक भय ते थी उपनो करुणा स होय ए संबंध किस्यो लक्षणा नेहना तिहां सोच युं ते नो विकार तथा विलाप वे वचन नो आक्रन्दन तथा लान स्वेद तथा रूप रुदिन प्रसिद्ध एतला लिंग करतां ण छे नेहना ते तथा ॥ १६ ॥

अब देखो जरा ज्ञान नेत्र करके देखो कि अपना प्रिय योग से आक्रंद करणा या शरीर में रोग होवे जद हाय करणा पुत्रादिक के मरणे में सोच करणा राजादिक प से प्रलापादि करना इत्यादि कारण करुणा रस रूप पं का वर्णन है सो जिनरिख को भी रयणा देवी का रूप करुणा रस पानी मोह प्राप्त हुवा सो मूल ज्ञाताजी रह के प्रताप से जिनरिख को (सनुरन, कलुणभावं)

भरोसा मत करो कि तुम सत्य सिद्धांत का लेख को समझ के दया में ही जिन धर्म की आस्ता रक्खो परन्तु ऐसा विपरीत सूत्र का अर्थ करके लोगों के हृदय की दया निकालने का उपाय मत रचो.

पूर्व पक्ष–नसीथजी की साक्षी गायों के वाड़े खोलने में नहीं हुई तो खैर परन्तु सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध के तीसरे अध्ययन में पहिले उद्देशा में कहा है कि साधू नाव में बैठा है. और नाव में छिद्र हो के पाणी आवे उसको साधू ने देखा. अन्य लोगों ने नहीं देखा तो साधू को लोगों के प्रति उसका बतलाना वर्जित किया है नाव में बैठे साधू श्रावक तथा गृहस्थी डूबे. जिस अवसर में भी श्री भगवान् ने नाव में आते हुए पानी को साधू के लिये बतलाना वर्जित किया है तो विचारने की बात है कि सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को बचाने में भी धर्म नहीं कहा तो गायों आदि पशु जीवों को वाड़े में से छुड़ाने में तथा बाहिर निकालने में धर्म कैसे माना जावे इस विषय में हम ने आपको सूत्रों का पाठ दिखाया है. जैसे यदि आप धर्म मानते हो. उसका पाठ आपको दिखाना चाहिये साधू जो कार्य करता है. वह धर्म का कार्य है. उसमें पाप का अभाव है. और साधू के लिये जिस कार्य का निषेध है. वह पाप का कार्य है. यह पूर्व पक्षियों का लेख है.

इस का प्रत्युत्तर हा हा हा रे मित्रो तुम्हारी दया को काटने की चेष्टा देख के बड़ा खेद उत्पन्न होता है कि हमारे जैनी नाम धारक मित्र सिद्धांतो का व्यर्थ नाम ले के दया धर्म को नष्ट करने की चेष्टा क्यों करते है क्योंकि जैन सिद्धांत में तो

एक छोटासा वे इन्द्रियादि क्षुद्र जीव बचाने में भी महा लाभ कहा है. और तुम सूत्र का नाम लेके लिखते हो कि. सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को बचाने में भी दया करने में धर्म नहीं इस से प्रकट हुवा कि ऐसी दया से उल्टी श्रद्धा इस आर्य मंडल में तुम्हारे तेरेपंथियों के सिवाय किसी की नहीं. कि जो मनुष्यों को बचाने में पाप बतलाते हा हा हा क्या तुम्हारी मति थोड़ी-सी भी दया धर्म से अनुकूल नहीं रही. कि जिससे ऐसा अजबगजब लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुनो.

पूर्वपक्ष–हमने तो सिद्धांत का पाठ की साक्षी बतलाई है. श्रीभगवान के आज्ञानुसार लिखने में क्यों डर—

उत्तरपक्ष—हे मित्रो अफसोस तो इसी बात का है कि सिद्धांत का नाम ले के विपरीत प्ररूपणा करते हो जिससे जगत में जिन वाणी की घृणा यानी निंदा कराते हो. यह महा दूषित कर्म का कार्य है. हमको तो तुम्हारे दूषित कर्म का अफसोस आता है. जिससे भी ज्यादा श्री जिन वचनों का आता है. कि हे अल्पज्ञ मनुष्यों परमेश्वर के वचनों को विपरीत प्ररूपणा करके घृणा मत करावो.

पूर्वपक्ष–बतलाइये जो हमने आचारांग सूत्र की साक्षी बतलाई वह क्या विपरीत है.

उत्तरपक्ष-सुनिये रे जरा ध्यान दे के सुनिये कि तुम्हारा उत्तर अत्यन्तात्यन्त विपरीत है क्योंकि प्रश्न तो गायों को लाय से बचाने का था. और उत्तर नाव के छिद्र में पानी आवे वह साधु नहीं दिखलावे. यह उत्तर विरुद्ध है क्योंकि आचारांग में तो साधु को नाव का पाणी इसलिये नहीं बताना

कि पाणी की हिंसा साधू को लागे. क्योंकि पानी आता हुवा देख के गृहस्थ उस पानी को उलेचनादि जल की हिंसा करे इसलिये नहीं बताना परन्तु सिद्धांत में ऐसा लेख नहीं कि मनुष्यों को बचाने में पाप लगे सो सिद्धांत आचारांग का पाठ लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुणो—

मूलपाठ–जेभिखु, णावाए, उतिंगेणं, उदयं, आसवमाणंपे, हाए उवरु वरिणा वावं, कज्जलावेमाणं, पेहाएणो, परं, उवसंकमित्तु, एवं बूया, आउसंतो, गाहावइ, एयं, तेणावाए, उदयं, उत्तिंगणे, आसवति, उवरुवरिवाणवा, कज्जलावे, तिए-तप्प गारंमणं वा, वायं, वाणो पुरओकट्टु, विहरेज्जा, इति ॥

अस्यार्थः–भिक्षु वारित्रि यो ना वाने विषे उत्तिंग छिद्रे करि उदक पाणी आश्रव तो देखी तथा उपरि २ घणे पाणिये करीकज्जलावेमाणिं के०'-नावा भराति देखी ने ते साधू पर गृहस्थ ने-उवसंकमित्तु के०' तेनी समीपी आवी एहवो न कहे अहो आयुष्मंत गृहस्थ एताहारीनावाने छिद्रे उदकपाणी आवे छे तेणे आवते उपरि २ घणे घणे आवाते कज्जलावेइ. के०' भराई छे-तप्पगारं के०' एहवा भाव सहित मन अथवा वचन पुर ओकट्टु के०' आगली करी विचरे नहीं इति ॥ अध्ययन दूसरा उद्देश पहिला में ॥

अब देखो भाई सूत्र में तो यह कथन है कि नाव पाणी करके बहुत भरती होय ता उस नावरानि नावडिया को साधु को नहीं कहना यह कथन है और तुमने आचारांग का नाम ले के लिख दिया कि नाव में छिद्र हो के पानी आवे उसको साधु ने देखा अन्य लोगों ने नहीं देखा तो साधू को उसका

बतलाना वर्जित किया है. अब देखो देखो कि तुम लोग सूत्र से और अर्थ से विरुद्ध अर्थ करने वाले हो कि नहीं. क्योंकि सूत्र में तो ऐसा नहीं कहा कि नाव का पानी साधु सिवाय अन्य नहीं देखे. ऐसा पाठ है ही नहीं. तथा साधु और नाव का मालिक सिवाय अन्य लोक श्रावक या दूसरे नाव में बैठे हैं. ऐसा भी सूत्र अर्थ टीका दीपिकादिक में कहीं भी नहीं तो तुम सिद्धांत के वचनों से विरुद्ध असंभव बातें मन से उठा के आचारांग का नाम क्यों लिखा है. बस इसी से हम कहते हैं कि तुमने मूलपाठ तो सूत्र का लिखा नहीं. और भावार्थ को भी विपरीत मनमानी बातें भोले भाले के लिये ढोंग लिखने आचारांग की साक्षी देनी तुम्हारी विपरीत है. परंतु तुम अब भी सत्य के सिद्धवाद को छोड़ के विपरीतता सिखानी यह उत्तम काम है.

पूर्वपक्ष-नाव में तो बहुत से मनुष्यों का बैठना संभव है.

उत्तरपक्ष-हां नाव में बहुत से मनुष्यों का बैठना संभव है. परन्तु यह भी सम्भव है कि कोई बन्द नाव का मालिक अपनी खाली नाव को भी कोई नदी पर अपनी तीर से दूसरी तीर ले जाता है. इस बन्द नाव को ऐसी तीर जाना है और नाव में बैठे तो जाते हैं तो साधु और नावाधिकारी यह दोनों बैठे [illegible] ऐसा भी सम्भव [illegible] है. कदाच ऐसा भी मानिये कि बहुत से मनुष्य नाव में बैठे हैं और साधु भी बैठा है इस [illegible] तो तुमने यह [illegible] [illegible] साधु [illegible] देना यह तो सिद्ध [illegible] [illegible] नहीं [illegible] मनुष्य से [illegible] नहीं. क्योंकि सूत्र में

तो ऐसा लिखा है कि नाव घणा जल करके भरती होय यह मूल सिद्धांत में लिखा तो जरा अकल से तो विचारो कि बहुत घणा घणा जल से नाव भर जाय और साधू देखे दूसरे नहीं देखे तो क्या वह सर्व नाव में बैठने वाले अंधे थे जो साधू तो उस जल का प्रवाह को देखे और दूसरे नहीं देख सके क्या पानी में भी ऐसी कोई शक्ति है कि जो साधू के नजर आवे. और के नहीं आवे. वाहरे वाह प्रत्यक्ष का भी तुमको ज्ञान नहीं तो फिर सिद्धांत से विपरीत लेख लिख के भव परंपरा क्यों बंधाते हो. परंतु हे मित्रों तुम क्या करो तुम्हारे गुरु भीषमजी ने ऐसाही सिद्धांत से विरुद्ध अनुकंपा की छठी ढाल की १८ मी गाथा में कथन किया है

ढाल–साधू बैठा नाव माहीं आई नावड़िये नाव चलाई. नावा फूटी मांहे आवे पाणी साधू देखी लोगां नाहीं जाणी ॥ १८ ॥ अब देखो कि तुम्हारा गुरुजी ने ही ऐसी विरुद्ध जोड़ करी है परन्तु इतना तो विचारो कि सिद्धांत में तो किसी ठिकाने नहीं कहा है. और तुम प्रत्यक्ष के लिये कैसे कहते हो तथा इतना ही विचार तुमको नहीं आता कि साधू देखे. और नहीं देखे तो औरों के नेत्र कहां गये. क्योंकि जल का किंचित आना भी सूत्र में नहीं कहा है कि जो साधू के ही निगाह में आवे. सूत्र में तो उपरा उपरि नाव भराये तो बैठने वाला क्यों कर नहीं देखे और नाव जल से डूबे ऐसा तुम्हारे गुरुजी ने अनुकंपा की छठी ढाल की १९ मी गाथा में माना है.

गाथा–आप डूबे अनेरा प्राणी अणुकंपा किणरी नहीं आणी. वनावे तो विरतां में अंगो जिणरो साखी आचारंगो १९

देखो यह तुम्हारे गुरुजी का लेख है कि नाव जल से डूबे. आहा हा हा आश्चर्य है देखो गुरुजी और चेलाजी कैसे विपरीत लेख लिखते हैं कि नाव डूबे. इतना जल नाव में आया तो भी साधू तो जल को देखे. और गृहस्थ बैठने वाले जल को नहीं देखें. अहो २ अफसोस की बात है कि एक थोड़ासा समझदार भी समझ के कहसके कि अत्यन्त जल से नाव भराय तो बैठने वाले कैसे नहीं देखे अवश्य देखेही. परन्तु जिस बात को किंचित समझदार समझसके उसको भी तेरे पंथी साधू श्रावक नहीं समझे. और अनुचित लेख लिखते नहीं डरे तो निश्चय हुवा कि मोहनी कर्म का स्वभाव ऐसा ही है.

पूर्व पक्ष—कोई काल में नाव का मालिक कोई कार्य निमित खाली नाव को लेके उरली तीर से पैली तीर जावें उस वक्त में साधू को भी पैली तीर आना हुवा तब नाव में बैठ गए. नाव फूटी हुई उसमें जल भर आया उस वक्त नावड़िया तो नाव के खेवणे के कार्य से जल नहीं देखे परन्तु साधू देखे तो उस नावड़िये को बचाने को जल नाव में आवे है. नाव डूब जायगी ऐसा क्यों न कहे.

उत्तरपक्ष—हे मित्र नावड़िये को बचाने में पाप नहीं है. परन्तु साधू को जल की हिंसा करणी नहीं. करते को भला जाणना नहीं ऐसा नियम यानी त्याग साधू को है जिससे जो नावड़िये को पानी नाव में आना बतावे तो वह नाववान् पुरुष जल को उलेचनादि करके हिंसा करे. और जो साधू जल को बतावे तो मन वचन से जल की हिंसा लागे इसवास्ते साधू का कल्प नहीं सो नहीं बतावे.

पूर्वपक्ष साधु को पानी की हिंसा कहां वर्जी है.

उत्तर पक्ष सूत्र दशवैकालिक का छठा अध्ययन की ३० मी गाथा में पाठ है सो लिखते हैं

सूत्र गाथा आउ. कायं. नहिंसंति मणसा. वयसा. कायसा. तिविहेण. करण. जोएण. संजया. सु. समाहिया. ॥ इति ॥ ३० ॥

अब देखो कि सिद्धांत में कहा कि अपकाय की हिंसा तीन करण तीन जोग करके करणी नहीं जिसवास्ते साधु नाव का पानी नहीं बचावे. जल की हिंसा होवे उस में नहीं बचावे परन्तु श्री भगवान ने ऐसा नहीं कहा कि नाववान पुरुष बच जावे इस वास्ते जल नहीं बचावे यह कहना तो तुम्हारा है, परन्तु परमेश्वर का नहीं. नाववान को तो बचाने का धर्म है परन्तु जल हिंसा का त्याग का भंग होवे जिस में जल बचाने का साधु का कल्प नहीं.

पूर्वपक्ष–थोड़ी हिंसा जल की होवे परन्तु पचेन्द्री जीव मनुष्य का शरीर बच जावे तो फिर थोड़ा पाप और धर्म बहुत होवे तो यह कार्य साधु क्यों नहीं करे.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुम्हारे को पूरा जाणपणा नहीं होने से प्रश्न उपजता है. परन्तु यह तुम नहीं समझते हो कि ऐसा तो कई कार्य हैं कि जिसमें थोड़ासा पाप और धर्म बहुत है तो भी साधु का कल्प नहीं सो सुनिये हम थोड़े में बताते हैं कोई गृहस्थ दीक्षा लेने की अर्ज करे कि मैं दीक्षा लेऊं परन्तु तुम मेरे कच्चे पाणी से भीजे हुए हाथ से रोटी आदिक पकवान [illegible] पानी से लेवो तो मैं दीक्षा ले लेऊं तो कहो भाई

नियम लिया है और कोई दुष्ट बादशाह एक मनुष्य को वे गुने मार रहा है अब वह दयावान् मांस का त्यागी बादशाह से कहे कि तुम इस को मत मारो तब बादशाह कहे कि जेकर तुम एक ग्रास मांस खालेवो तो हम इस मनुष्य को नहीं मारें. तो कहो भाई वह मांस का त्यागी एक ग्रास मांस खा के एक मनुष्य को बचावे अपितु नहीं बचावे क्योंकि मांस नहीं खाने का नियम होने से परन्तु मनुष्य को बचाने में तो बहुत उपकार समझता है. तैसे ही मुनि जल वना के नावड़िये को नहीं बचा सक्ते हैं जल हिंसा का त्याग होने से परन्तु नावड़िये को बचाने का तो धर्म ही है.

पूर्वपक्ष-हम तो मनुष्य को बचाने में धर्म नहीं समझते किन्तु पाप मानते हैं तो फिर यह दृष्टांत की युक्ति हमारे लिये देना ठीक नहीं.

उत्तरपक्ष-हे भाई ऐसा दया से तुम्हारा उलटा कथन क्यों हुवा कि मनुष्य को बचाने में भी धर्म नहीं किन्तु पाप होता है.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरु भीषमजी ने अनुकंपा की छठी ढाल में की चौथी गाथा में ऐसा कहा है.

गाथा-(गृहस्थी के लागी लायो घरबारे निकलियो न जायो. बलता जीव विल विल बोले साधू जाय किवाड़ न खोले).

अर्थः-कोई गृहस्थ के घर में लाय लागी और बाहिर से किवाड़ जड़े हुए हैं उस वक्त गृहस्थी के बेटा बेटी आदि रोवे रुदन करे तो भी साधू किवाड़ नहीं खोले. तत्व यह है कि साधू नहीं खोले. इससे श्रावक को भी नहीं खोलना खोले तो श्रावक को भी पाप होवे. जिससे पापी कहिये. यह हमारे गुरु भीषमजी का कहना है इससे हम भी कहते हैं.

पूर्वपक्ष—हमारी आचारांग की साक्षी नाव के पानी बताने की जलता हुवा गायों के वाड़े को खोलने के लिये ठीक नहीं तो खैर परन्तु हमने सूत्र उत्तराध्ययन के ९ मे अध्ययन की साक्षी लिखी है कि निमिराय ऋषि को चलायमान करने के लिये ब्राह्मण का रूप धारन कर इन्द्र ने आकर कहा कि तेरी मिथिलानगरी और अन्तःपुर जनाना अग्नि से भस्म होता है और तेरी दृष्टि में अमृत है सो एक वेर तेरे देखने से नगरी और अन्तःपुर बच सके हैं तिसपर निमिराय ऋषि ने उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं जलता, मेरे तो ज्ञानदर्शन चारित्र हैं सो मेरे पास है. ऐसे कहकर चुप होगए नगरी के सामने नहीं देखा. किंचित् भी राग भाव नहीं लाये यह साक्षी हमने दी है. यो तो ठीक है कि नहीं है—

उत्तरपक्ष हे मित्र यह साक्षी तो बिलकुल ठीक नहीं क्योंकि सूत्रों का नाम ले के सूत्रों में भगवान के वचनों से विपरीत प्ररूपणा करते हो. उसमें

पूर्वपक्ष क्या हमने साक्षी बतलाई वह उत्तराध्ययन में नहीं है.

उत्तरपक्ष हे भाई आंखों में अमृत है सो एक वेर तेरे देखने से नगरी और अन्तःपुर बच सकते हैं. यह तुम्हारा कहना मूल सूत्र में अर्थ में टीका टब्बा में कहीं भी नहीं है फक्त तेरेपंथी साधु श्रावकों की हृदय कल्पना के सिवाय कहीं भी नहीं है. हा हाहा तुम लोगों को क्या सूझा है. कि सिद्धांत में नहीं उस लेख को नहीं है तो भी गुरुओं की बात पर दृढ करके लिखने छापने नहीं डरते हो. इतना भी मसाला सूत्र

लोगों को नहीं है कि गुरुजी को सच्चा ठहराने को सिद्धांत की झूंटी साक्षी लिखेंगे तो पीछे कोई पूछने वाला मिलेगा. उस वक्त क्या उत्तर देवेंगे इतना भी तुनको मालूम नहीं पड़े तो निश्चय होता है कि फक्त पक्ष के मारे टेक में कल्पित गोले चलाते नहीं डरते हो.

पूर्वपक्ष–जेकर आंख में अमृत का झरना और एक वक्त देखने से अन्तःपुर का वचना सिद्धांत में नहीं होता तो हमारे गुरुजी ने हमको यह बात कैसे सिखलाई क्या वह सिद्धांत नहीं वांचते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई गुरुजी तो मत की ममता में बंध रहे हैं और तुम सरीसे अल्पज्ञ को अपने मत की ममता यानी हठ के विषे बांधने के वास्ते सूत्र की मिथ्या बात न कहे तो तुम सरीसे भाई उनके मत में कैसे बंधो बस इसी कारण से कल्पित सूत्र की बातों की साक्षी तुमको सिखलाते हैं और तुम उनको सत्य मान के वादी होजाते हो.

पूर्वपक्ष–अच्छा गुरुजी ने कल्पित साक्षी बतलाई तो सूत्र तो सब एक है जो सूत्र में सत्य होवे वो आप बतलाइये–

उत्तरपक्ष–हां सूत्र एक है हम मूलपाठ लिख के बतलाते हैं ध्यान दे के पक्षपात मत्सर भाव छोड़ के सुनिये.

सूत्र–एस, अग्गी, य, वाऊ य, एयं, डज्झइ, मंदिरं, भयवं, अंतेउरं, तेणं, कीसणं, नाव, पिखह, ॥ १२ ॥

अस्यार्थः–(एस) के०' ए प्रत्यक्ष (अगीय.वाऊय) के०' अग्नि अने वायरे करि (एयं. डज्झइ. मंदिरं) के०' ए प्रत्यक्ष तुम्ह संबंधियो बले छे मंदर घर (भयवं अंतउरं नेणं) के०' हे

भगवंत अंते उराहरूं (कीसयं, नाव पिलह).के०' किसा भणी साहमो न थी जो तो तुम्हने तो जिम ज्ञानादिक राखवा तिम अन्तःपुर पिणरा खउं इत्यर्थः ॥

अब देखो सूत्र में तो इन्द्र ने परीक्षा निमित्त कहा कि यह तुम्हारे घर और अंतःपुर बलते हैं सो तुम इनके मालिक हो सो जैसे ज्ञानादिक तुम्हारे हैं तिनकी रक्षा करते हो तो ऐसेही अंतःपुरादिक भी आप के हैं सो इनकी रक्षा करो यदि इनको अपना समझ के इनकी रक्षा करों. क्योंकि अपनी वस्तु है उसको राखणी चाहिये. ज्ञानादिक के दृष्टांत ते इस प्रश्न से अंतःपुर और महल मकान पर मोह है कि नहीं. ऐसी परीक्षा करने को कहा कि इनकी तुम रक्षा करो. परंतु ऐसा तो नहीं कहा कि तुम्हारी आंखों में अमृत झरे है तुम्हारे एकवार देखने से यह सब बचते है यह तुमने सूत्र से अतिरिक्त प्ररूपणा क्यों करी सूत्र में तो करुणा का कथन नहीं है सूत्र में तो अपणायत पणे का कथन है यानी (भयवं, अंतेउरं, तेणं,) हे भगवंत तुम्हारे अंतेउर है, इससे इनकी रक्षा करो यह कथन है जिसपर निमिराय ऋषि ने उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं बले मेरे तो ज्ञानादिक गुण है शेष अंतःपुरादिक मेरे नहीं. यह उत्तर निमीराय ऋषि ने दिया. परंतु जरूर तुम्हारे सरीसी श्रद्धा निमीराय ऋषीश्वर की होती कि जीव बचाने में पाप है तो फिर निमीराय ऋषि इन्द्र को ऐसे कहते कि मेरे को जीव बचाने नहीं कल्पे. मैं तो किसी को जिवाना नहीं चाहता हूं. सो ऐसा तो कहा नहीं वहां तो प्रश्न ही अंतःपुरादिक का अपणायत रूप मोह की पहिचान का था तिसका उत्तर में निमीराय ऋषीश्वर ने अपना अंतःपुरादिक से

दिक का देखना वैसे अंतःपुर को भी देखना चाहिये. ज्ञान का क्या देखना अर्थात् उसकी रक्षा का पठन पाठन रूप उपाय करना वैसेही अंतःपुर को क्या देखना कि उनको जलादि करके अग्नि बुझानादिक उपायों से राखना तथा देखना नाम उसका यत्न करने का उद्यम करना ऐसा सूत्र उत्तराध्ययन का १९ मा अध्ययन की गाथा ३८ मी में कहा कि (अहिवेगंत, दिट्ठीए, चरित्त, पुत्तदुचरे) अस्यार्थः सर्पनी परे एकांत दृष्टि इ एकाग्र चालनु छे जी हां पहउं चारित्र हे पुत्र दुषर पालीवो दोहीलो. इत्यर्थः ॥

ए देखो मृगापुत्र की माता ने कहा कि हे पुत्र सर्प की नाईं एकाग्र एक दृष्टि से संयम का पालना है तो यहां भी यही दृष्टि है कि संसार के सर्व भाव छोड़ के मोक्ष का ही साधन करना संयम में है तथा टीका में भी ऐसा ही लिखा है.

टीका–तथा साधू मार्गे साधूश्चरेत् मोक्षमार्गे दृष्टिं विधाय चरेत्।

अर्थ–साधू मार्ग में साधू विचरे मोक्ष मार्ग में दृष्टि देकर विचरे इति.

अब जरा आंख खोल के देखो कि जैसे सर्प एक दृष्टि से चले वैसे ही साधू मोक्षमार्ग में दृष्टि देकर चले यह टीकाकार मकट लिखते हैं तो कहो मोक्षमार्ग में दृष्टि क्या आंखों का देखना है कि ज्ञान दृष्टि से मुक्तिमार्ग का ही उद्यम करना परन्तु संसार का नहीं बस समझ लेवो कि जैसे दृष्टि साधू की क्या है कि एकांत मोक्ष का ही उद्यम करना अन्य नहीं वैसे ही नमीरायजी को देखना नाम अंतःपुरादिक की रक्षा निमित्त अग्नि बुझानादिक उद्यम करने का कहा परन्तु आंख से देखने

का नहीं तथा सूत्र आचारांग स्कंध पहिला अध्ययन ५ मे में कहा कि (रागप्पमुहे) एक मोक्ष के विषे दत्त दृष्टि देखो यहां भी साधू को कहो कि एक मोक्ष में ही जिन्होंने दृष्टि यानी नजर दी है तो कहा क्या मोक्ष के सामी आंख फाड़ के देखरहे हैं कि मोक्ष का उपाय ज्ञानादिक का साधन कररहे हैं तो आंख का देखना तो किसी तरह सिद्ध नहीं अपितु ज्ञानादिक का आचार चारित्र मोक्ष के साधन करना वोही मोक्ष की दृष्टि यानी देखना है यथाच टीका में भी कहा है.

टीका-(रागप्पमुहे) एको मोक्षो अशेष मलकलंक रहितत्वात् संयमो वा राग द्वेष रहित त्वातन्न मगतं मुखं यस्यस तथा मोक्षे तदुपाये वा दत्तैकदृष्टिः ।

अर्थ-एक मोक्ष संपूर्ण पाप और कलंक इनसे रहित होने से अथवा संयम राग द्वेष इनसे रहित होने से तिससे दूर नहीं हुवा है मुख जिसका तैसेही मोक्ष में तथा मोक्ष का उपाय में दी है एक दृष्टि जिसने इत्यर्थः ॥

अब देखो जरा ज्ञान नेत्र खोल के यहां भी कहा है कि मोक्ष के सामने है मुख जिस साधू का तो विचारो कि मोक्ष के सामे मुख कहा तो क्या जैसे दूज के चन्द्र देखनेवत् मुख मोक्ष के सामे करे कि संयम पालने का यत्न करे तिससे यहां टीका में भी कहा कि मोक्ष का उपाय में दीनी है नजर जिन्होंने वैसेही समझ लेवो कि इन्द्र का कहना निमिराय ऋषीश्वर से यह है कि आप इन अंतःपुर के मालिक हो इससे इनको देखो यानी रक्षा का उपाय करो तथा प्रत्यक्ष में भी देखो कि कोई पुत्रादिक अपने घर की संभाल नहीं करे उस वक्त उन

को स्वजन परजन कहते हैं कि देखो फलाने पुरुष की अपने घर सामे नजर नहीं है. तो क्या इतनी भी तुम्हारे में समझ नहीं कि यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घर पर नजर नहीं उस का मतलब यह है कि घर का काम को नहीं करता है. बस अब अच्छी तरह से विचार लेवो कि सूत्र से अर्थ से टीका से और दीपिका से और प्रत्यक्ष लोकोक्ति से तुम्हारा कहना देखना नाम आख्यों में अमृत झरता है. और एकवार देखने से रक्षा होती है यह बिलकुल कपोल कल्पना सिद्धांत से विरुद्ध है और सत्य नहीं.

पूर्वपक्ष—आखों में अमृत झरना कहीं भी लेख नहीं है तो खैर हम गुरुजी से समझेंगे परंतु निमिरायजी ने अंतःपुर आदि की रक्षा क्यों नहीं किया.

उत्तरपक्ष—हे मित्र यहां तो निमिरायजी की इन्द्र महाराज ने मोहरूप अपनायत की परीक्षा करी कि इनने संयम तो लिया. परन्तु अंतःपुर से अपना अपनायत यानी माल की पणे रूप मोह अलग हुवा या नहीं जिसकी परीक्षा वास्ते इन्द्र ने यह प्रश्न किया कि तुम इस अंतःपुर के मालिक हो. इसलिये अग्नि से बचावो जिसपर निमिराय ऋषी ने कहा कि मेरा अंतःपुरादिक नहीं है मेरा तो ज्ञानादिक गुण है. इससे इन्द्र को विदित होगया कि इस मुनि का अंतःपुर से रागभाव अपनायत पणा नहीं रहा. परन्तु जीव मरते हुवे को बचाने का तो यहां प्रश्न नहीं किन्तु अपणायत का है और यह भी तुम्हारी कम समझ का स्याल है कि गायों को वाड़े बाड़े में डिवार मांज के कोई दयावान निकाले उस निकालने वाले

को पाप हुवा कहते हो सो सूत्र का लेख दिखलावो उस प्रश्न के उत्तर में यह लिखना कि निमिराय मुनिजी ने अग्नि बुझा के अंतःपुर की रक्षा नहीं करी जिससे गायों बचाने में हम पाप कहते हैं तो क्या तुम को इतना ही ज्ञान नहीं जो कोई दयावान् बाड़ा खोल के मरती हुई गायों को बाहिर निकाले तिसपर मुनिराज को अग्नि बुझाने का उत्तर देना तो यह अत्यन्त अनुचित है क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे बुझावे.

पूर्वपक्ष–निमिरायजी ने संयम इन्द्र ने प्रश्न किये तिसके पहिले लिया कि पीछे.

उत्तरपक्ष–तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो पहिले ही माना है. सो लिखते हैं अनुकंपा की ढाल दूजी गाथा ११मी में (नमीराय ऋषि चारित्र लिया ते तो बाग में उतरयो आयरे इन्द्र आयो तिणने परखवा ते तो किम तिण बोल्यो वायरे ११ जीवा मोह अणुकंपा न कीजिये थारी अगन करी मिथिलोबल एकवा स्युं सामो जोयरे अंतःपुर बलवां मेलसी आतो बात सिरे नहीं तोयरेजीवा १२ मुख बपरायो सारालोक में बिलखा देख पुत्र रवेरे तो तुं दया पालन ने उठीयो तो तुं कर यारायवरे जीवा १३

अब देखो तुम्हारे मत के निकालने वाले तुम्हारे गुरु भीषमजी ने यह गाथा रची जिसमें नमीराय ऋषीश्वर को दीक्षा लियां बाद इन्द्र ने प्रश्न पूछे माने हैं (और जो तू दया पालण ने उठियो) इत्यादिक कितनाक विषय मतमत के लिये हुए सिद्धांत से अतिरिक्त यानी मन के मते ज्यादा कहा परन्तु आखों में अमृत है जिससे एकवार देखने से अंतःपुरादिक

बच सके ऐसा मिथ्या कथन तो उन्होंने भी नहीं किया तथा भ्रम विध्वंसन के पत्र ५२ मा पं जीतमलजी ने लिखा कि जैसे ज्ञानादिक राखणा वैसे अंतःपुरादिक भी राखना चाहिये तो अब विचारो कि हमारा गायों को मरती हुई को दयावान् बचावे तिसमें तुम पाप कहते हो सो सूत्र का लेख दिखलावो ऐसा प्रश्न हमारा था तिसका उत्तर में तुमने लिखा कि नमीराय जी साधू ने शहर बलते हुए को अग्नि बुझा के नहीं राखा. तो यह तुम्हारा उत्तर बिलकुल बिना विचार का सिद्ध हुवा क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे बुझावे मुनि को अग्नि बुझाने का त्याग है इससे और तुम्हारा आखों में अमृत भरने का लिखना और एकवार देखने से सर्व की रक्षा होती है ऐसा लिखने से तो तुम्हारे गुरु भीषमजी और जीतमलजी से भी तुम्हारी श्रद्धा सूत्र से विपरीत हुई क्योंकि भीषमजी जीतमलजी ने तो ऐसा नहीं लिखा कि नमिराय की आखों में अमृत था. और एकवार देखने से सर्व की रक्षा होती है तो तुमने यह बात कैसे लिखदी

पूर्वपक्ष-हम को तो हमारे पूज्य डालचन्दजी ने धारणा कराई है.

उत्तरपक्ष- तो हे मित्रो निश्चय हुवा कि तुम्हारे गुरु की परंपरा सिद्धांत से विपरीत प्ररूपणा बढ़ती जाती है. क्योंकि जो बात भीषमजी जीतमलजी ने विपरीत नहीं लिखी वह उत्तराध्ययनजी का नवमें अध्ययन का नाम लेके तुम्हारे गुरु डालचन्दजी ने तुमको सिखलाई तो निश्चय हुवा कि भीषमजी जीतमलजी की श्रद्धा से भी डालचंदजी की श्रद्धा अति विपरीत हुई. कि जिसे परमेश्वर के वचनों से अतिरिक्त प्ररूपणा

करने को कमर बांधी तो हे भोले भाई ऐसे सिद्धांत से विपरीत प्ररूपणा करके अपने मत को सचा करने को चाहते हो परन्तु विद्वानों के सामने तुम्हारा मत सत्य कभी नहीं ठहरता है. किन्तु सत्य होगा सो ही ठहरेगा. तो तुम्हारी नसीथ की आचारांग की उत्तराध्ययन की तीनों की साक्षी गाथा को बचाने के निषेध में लिखी वह सर्व सूत्र से विपरीत और तुम को ही असत्यवादी ठहरानेवाली हुई.

पूर्वपक्ष—हमारी साक्षी सत्य नहीं हुई तो खैर हमने यह भी लिखा है कि जो आप जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो सूत्र का पाठ दिखाइये.

उत्तरपक्ष—हां पाठ सिद्धांत में बहुत ठिकाने में है सो हम थोड़े से लिख के बताते हैं सूत्र उत्तराध्ययन का अध्ययन २२ वें में कथन है कि श्री नेमीनाथजी की इच्छानुसार सारथी ने जीवों को छोड़ दिये. तब नेमीनाथजी ने सारथी को जीवों को बचाने का इनाम दिया. तो प्रकट सूत्र के प्रमाण से जीव बचाना अभय दान में है. और अभयदान देने से जीव संसार को पड़त करके मोक्ष गति का फल को प्राप्त होता है जिसी हेतु से श्रीनेमीनाथजी ने जीव बचाने का इनाम दिया है.

पूर्वपक्ष—यहां तो हमारे गुरु जीतमलजी का कहना है कि नेमीनाथजी तोरण से पीछे फिरे सो तो अपना पाप टालने को पीछे फिरे. परन्तु पशु जीव को बचाने वास्ते नहीं फिरे ऐसा हमारे गुरुजी कृत भ्रम विध्वंसन का पत्र ४७ वां पर लेख है. सो वह यह है तथाच. (केवला एक कई असंजती रो जीवणो वांछयां धर्म नहीं. तो नेमनाथजी जीवांरे हिन वाछयो इम कयो

त्यां जीवांरे मुक्ति रो हेत तो थयो नहीं ते माटे जीवां रो जीवणो वांछ्यो ए जीवां रो हित छे इम कहे. वली (साधु कों से जीव हंउ) ए पाठ रो उंधो अर्थ करी जीवां रो हे तथा पं छै. साधू कां से कहेतां अनुकंपा सहित) जी येहिउ, केतां जीवां रो हेत वांछ्यो ते जीवां रो जीवणो वांछ्यो. इम कहे ते झुठा बोलणहार छै एतो विपरीत अर्थ करे छै त्यां जीवां रे जीवण रे अर्थे तो नेमीनाथजी पाछा फिरया नहीं. एतो जीवांरी अनुकंपा कही तेनो न्याय इम छै जे म्हारा ब्यावरे वास्ते यां जीवां ने हणे तो मोने यह कार्य करवो नहीं इम विचारी पाछा फिरया एतो अनुकंपा निरवद्य छै अने जीवरो हेत वांछयों सूत्र नो नाम लेई कहे ते सिद्धांतरा अजाण छै. अने केतला एक ठवा में कह्यों सकल जीवांनां हितकारी तेहनो न्याय इम प्रथम तो अव चूरी पाइ टीका में तथा दीपिका में यह अर्थ नथी ते माटे एहवो ते टी का नो नथी. इत्यादि तथा पत्र ४८ वां पर लिखा कि-(एकारज मोने परलोक में कल्याणकारी भलो नहीं इम विचारी पाछा फिरया पिण जीवांने छोड़ाय चाल्या नहीं) इति.

यह हमारा गुरु जीतमलजी का कहना है तिससे हम पूछते हैं कि श्री उत्तराध्ययनजी का बाईसवां अध्ययन की दीपिका पाई टीका अवचूरी में श्री नेमीनाथजी का जीवों पर हित करना या पशुओं को छोड़ाने का कथन नहीं होगा जेकर होवे तो हम को आप मूल सूत्र दीपिका या पाई टीका या अवचूरी का लेख दिखलाओ परन्तु स्वार्थ तो हमारे गुरुजी ने जीवों के हित विषय में टीकानुसार ठीक नहीं माना ताते उसको छोड़ के प्रमाण बनाइये.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने तो ऐसा कहा है कि जैसे कोई हाथ से सूर्य को ढाक के कहे कि सूर्य आकाश में हैई नहीं तो ऐसी चेष्टा से सूर्य नेत्रवालों को नजर आता बंध नहीं होता है. तैसे ही श्री नेमीनाथजी महाराज का जीवों पर हित करना सूत्र का पाठ दीपिका में है और नेमीनाथजी की इच्छा माफिक सारथी ने पशु जीवों को छोड़ दिया तिसका इनाम श्री नेमीनाथजी ने सारथी को दिया. तिसका अधिकार सूत्र का मूल पाठ दीपिका अवचूरी और पाई टीका में खुलासावार है तां पि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी अपनी स्वकपोल कल्पित चेष्टा से सूत्र का कथन को छिपाते हैं कि उत्तराध्ययन का बाईसवां अध्ययन की दीपिका में (जीवेहेउ) का अर्थ जीवों का हित वंछने का नहीं है सो कहते हैं और लिखते हैं कि श्री नेमीनाथजी ने जीव छुड़ाया चाल्या नहीं वो ऐसा जीतमलजी की स्वकपोल कल्पना से सूत्र का कथन ज्ञान नेत्र वालों से छिपा नहीं रहता है सो अब हम मूल सूत्र का पाठ और दीपिका अवचूरी पाइ टीका काही ज प्रमाण प्रकट वतलाते हैं कि श्री नेमीनाथजी महाराज की इच्छानुसार सारथी ने पशु आदिक जीवों को छोड़ दिये. तब श्री नेमीनाथजी ने सारथी को इनाम दिया वह सूत्र का पाठ लिखते हैं सो हे भव्यों एकाग्र चित्त से विचार के सत्यपक्ष का ग्रहण करना.

सूत्रपाठ–अ, हसो, तत्थ, निज्जंतो, दिस्स, पाणे, भयदुये, वाडेहिं, पिंजरेहि, च, सनिरुद्धे, सदुखिए, ॥ १४ ॥ जीवियंतं, तुसपंचे. मंसट्ठा, भक्खियव्वए, पासित्ता, से, महापणे, सारहिं इणमब्बइ ॥ १५ ॥ कस्सट्ठा, इमेपाणा, एएसव्वे, सुहेसिणे, सा-

डेहिं, पंजरेहिं, च, सन्निरुद्धा, य, अच्चियहिं, ॥ १६ ॥ अह, सारही, तओ, भणइ, एए, भद्दाओ, पाणीणो, तुज्झं, विवाह-कज्जमि, भोयावेउ, बहुंजणं, ॥ १७ ॥ सोऊण, तस्स, सोवयणं बहुपाणि, विणासणं, चिंतइ, से, महापन्ने, साणुक्कोसे, जिएहिओ, ॥ १८ ॥ जइ, मज्झ, कारणा एए, हम्मिंति, सुबहु, जीया, न, मे, एयंतु, निस्सेसं, परलोगे, भविस्सइ ॥ १९ ॥ सो कुंडलाण, जुयलं, सुत्तगं, च, महायसो, आभरणाणि, य, सव्वाणि, सारहिस्स, पणामए, ॥ २० ॥

अथ दीपिका ॥ युग्मं ॥ अथ अनंतरं स नेमिकुमारः सारथिं इदमब्रवीत् किं कृत्वा. तत्र विवाह मण्डपात् सन्ने निर्गमन् अभिगच्छन् भयद्रुतान् भय व्याकुलान् प्राणान् जीवान् स्थल चरान् मृग शश मूषक तित्तिर लावकादीन् पश्चात् स्वार्थ भक्षितव्यान् पाभित्वा. इति विचार्य दृष्टा कथं भूतान् प्राणान् वाटकैः भित्तिभिः कण्टक वाटिकाभिः निरुद्धान् अतिशयेन यन्त्रितान् पुनः पञ्जरैः लोहवंश शलाकादि विनिर्मितैः पक्षि निपन्तरणा स्थानैः सन्निरुद्धान् अनन्य मृदुःखितान् पुनः कीदृशान् मारयितान् संमान् ते प्राणिन एवं जानंति अस्माकं मरणं आगतं कुतोऽस्माकं जीवितं इति । मत्त्वा इत्था मनामान् कीदृशो नेमिकुमारो महाप्राज्ञो महाबुद्धि सहितः अथवा ज्ञान त्रयेण विभूषितो बुद्धिरेव्यर्थः ॥१५॥ सारथिं [illegible] हे सारथे इमे सत्वा [illegible] सर्वे प्राणाः [illegible] पञ्जर [illegible] सन्निरुद्धाः अत्यंत नियंत्रिताः कस्यार्थं [illegible] कीदृशाः इमे प्राणाः सुखार्थिनः सर्वे [illegible] सुखार्थिनः [illegible] दुःखी क्रियंते [illegible] कस्यार्थे सारथिं प्रत्युक्ति

भावः ॥ १६ ॥ अथ नेमिकुमार वाक्य श्रवणांनतरं ततः सारथिर्भणति हे स्वामिन् एतेभद्र प्राणिनः युष्माकं विवाह कार्ये बहु जनान् यादव लोकान् भोजयितुं एकत्र मीलिताः सन्ति ॥१७॥ स इति. सनेमिकुमारस्तस्य सारथेर्वचनं श्रुत्वा चिंतयति कीदृशः स महाप्राज्ञः महाबुद्धिमान् पुनः कीदृशः सजीवेहितः जीवविषये हितप्सुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशेन वर्तते इति सानुक्रोशः सदयः अथवा जीव इहि निश्चयेन सानुक्रोशः सकरुणः तु शब्दः पूरणे कीदृशं सारथेर्वचनं बहु प्राणि विनाशनं बहु जीवानां विघातकारकं ॥ १८ ॥ तदा नेमिकुमारः किंचितयतीत्याह यदि मम विवाहादि कारणेन एते सुबहवः प्रचुराः जीवा हनिष्यन्ते मारयिष्यंति तदा एतद्हिंसाख्यं कर्म परलोके परभवे निश्रेयसं कल्याण कारिन् भविष्यति. परलोक भीरुत्वस्य अत्यन्तं अभ्यस्ततया. एवं अभिधानं अन्यथा भगवतश्चरमदेहत्वात् अतिशय ज्ञत्वाच्च कुत एवं विधा चिंता इति भावः ॥१९॥ स नेमिकुमारो महायशा नेमिनाथस्याभिप्रायात् सर्वेषु जीवेषु बंधनेभ्यो मुक्तेषु सत्सुसर्वाणि आभरणानि सारथे प्रणामयति ददाति कानि तान्याभरणानि कुंडलानां युगुलं पुनः सूत्रकं कटिदवरकं चकारात् आभरण शब्देन हारादिनि सर्वांगोपांग भूषणानि सारथेर्ददौ ॥ २० ॥ इति ॥

सूत्रार्थः—अथ इसके अनन्तर वह जो नेमिकुमार हैं सो सारथी के प्रति यह वचन बोलते भये कहा करके विवाह मंडप में गमन करता हुवा भयकर के व्याकुल जीव जो स्थलचर मृग (हरिण) शाशला सूकर तीतर लावो (पक्षि विशेषः) इत्यादिक मांस के वास्ते भक्षण करने योग्य उन जीवों को विचार पूर्वक

देख करके कैसे कहे वे जीव भीत्यां का वाड़ा करके और काटों का वाड़ा करके अत्यन्त रोके गये हैं फिर कैसे कहे वे जीव लोहे और वंश की शलायां करके बनाये हुये पिंजरों कर के अर्थात् पक्षियों के रोकने के जो स्थान उन्हों करके रोके गये इस हेतु से दुखित होरहे पुनः कैसे कहे वह जीव प्राणों के नाश को प्राप्त होरहे अर्थात् वह प्राणी जानते हैं कि हमारा मरण आ गया. अब हमारा जीवन कैसे होवे इस प्रकार से मरण दशा को प्राप्त होरहे हैं कैसे कहे हैं वह नेमिनाथ महाबुद्धि सहित अर्थात् मति श्रुति अवधि ३ ज्ञान करके विस्तीर्ण बुद्धि हो रही है जिनकी ॥ १५ ॥ वह नेमिनाथजी सारथी से क्या बोलते भये सो कहते हैं हे सारथी यह प्रत्यक्ष दीख रहे जो सर्व प्राणी वाड़ा करके पीजरों करके अत्यन्त रोके गये और खड़े हैं सो किस वास्ते और कैसे कहे ये प्राणी सुख की इच्छा करने वाले सर्व संसारी जीव हैं सो सुख की इच्छा करने वाले है तो फिर बंधनादि करके क्यों दुखी किये जाते हैं भगवान् जानते हुये भी जीवों की दया प्रकट करने के वास्ते सारथी को पूछते भये यह अभिप्राय है ॥ १६ ॥ नेमिनाथजी के वचन सुन के पीछे सारथी बोलता भया हे स्वामिन् जो निरपराधी-पणा से कल्याणकारक जो यह जीव हैं सो आपके विवाह कार्य में बहुत जन जो यादव लोक उनको भोजन कराने वास्ते इकट्ठे करे गये हैं ॥ १७ ॥ वह जो नेमिकुमार हैं सो सारथी का बचन सुन के चिन्तना करते भये. कैसे कहे वह नेमिकुमार, महा-बुद्धि वाले. फिर कैसे कहे जीव के विषे हितकारक. फिर कैसे कहे दया करके सहित. अथवा जीव के विषे निश्चय करुणा

करके सहित. तु शब्द पाद पूरणार्थ है. कैसाक वह सारथी का वचन वहुत प्राणी का विनाश करने वाला ॥ १८ ॥ उस वक्त में नेमिनाथ क्या चिंतना करते भये. जो मेरा विवाहादिक कारण से वहुत से जीव मारे जावेंगे तव यह हिंसा कर्म परलोक में कल्याणकारक न होगा परलोक से जो डरना उसका अत्यन्त अभ्यासपणा करके यह कथन है नहीं तो भगवान् का चरम शरीर होने से अति ही ज्ञाता होने से इस प्रकार की चिंता क्यों होती ॥ १९ ॥ वे नेमिकुमार बड़े यश के धारन करने वाले नेमिनाथ के अभिप्राय से संपूर्ण जीव वंधन से छूट गए तव संपूर्ण आभरण सारथी को देते हुए कौन से आभरण हैं. कुंडलों का जोड़ा, फिर कंडोरा, चकार शब्द से आभरण शब्द करके हारादिक जो संपूर्ण अंग उपांग के भूषण वह भी सारथी को देते भये ॥ २० ॥ इति दीपिकार्थः ॥ अब देखो २ हे मित्रो यह मूलपाठ दीपिका से प्रकट खुलासा है कि श्री नेमिनाथ भगवान् जिसवक्त राजीमती को परणने वास्ते तोरण पे आये तहां वहुत जीवों को वाड़े में और पिंजरे में अति दुखित देख करके उनकी करुणा लाके जानते हुए भी जीवों को वचाने वास्ते सारथी को पूंछा कि यह जीव विचारे सुख के अर्थी इनको क्यों रोक रक्खे हैं तव सारथी ने कहा कि भो स्वामिन्! यह जीव यादवों को भोजन देने वास्ते इकट्ठे किये गये. यह वचन सुन के श्री नेमिनाथ परमेश्वर हिंसा से डरते भये. और जीवों का हित चिंतते भये. यह अभिप्राय नेमिनाथ का था कि यह जीव विचारे छूट जावें तव सारथी ने नेमिनाथ के अभिप्राय को जानके सर्व जीवों को वाड़े मे और पिंजरे मे छोड़

दिये. तब श्रीभगवान् ने सारथी को कुण्डल युगल हारादि सर्व आभरण इनाम में दे दिये. देखो भाई यह प्रकट सूत्र और सूत्र की दीपिका का कथन है तो फिर तुम लोग जीव बचाने में पाप होता है. धर्म नहीं. या जीवका जीवना वंछने में पाप तुम्हारे गुरुजी बतलाते हैं तो क्या श्री नेमिनाथ जी से भी तुम्हारे गुरुजी को अधिक ज्ञान है. नहीं नहीं यह प्रकट दीखता है कि तुम नेमिनाथ जी की श्रद्धा से विपरीत कथन करने वाले हो. क्योंकि जो तुम्हारे सरीखी भगवान की श्रद्धा होवे तो सारथी ने जीव छोड़े तब आभरण गहने इनाम में क्यों देते. क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से ही दीखती है कि जो कोई अपने मालिक की इच्छा प्रमाणे काम करे तब उसपर मालिक खुश होके इनाम देते हैं जैसे कि उवाई सूत्र में कोणिक राजा को बागवान ने श्रीभगवान के पधारने की बधाई दी. तब राजा ने मुकुट को वर्ज के सर्व आभरण बधाई में दिये. क्योंकि कोणिक को श्री भगवान के आने की बधाई पर अति प्रेम था जैसे ही यहां श्री नेमीनाथजी को जीवों को छोड़ने रूप दया पर अति प्रेम था. जिससे सारथी ने जीवों को खोल दिये. तब कुंडल हारादि सर्व गहने सारथी को दिये. बस यह प्रकट सूत्र सूत्र और दीपिका का लेख. इसने ऊपर इसलिये लिखा है. हे बुद्धिमानों पक्ष छोड़ के विचारना कि तुम्हारे गुरु जीतमल-जी की कल्पना मनमानी सूत्र का कथन को छिपाती है कि नहीं. परन्तु हे भव्यो न्यायदर्शी होके सूत्र का कथन का विचारना इससे तो तुम्हारे गुरुजी के और तुम्हारे मनमाने सूत्र सूत्र का यथार्थ का [illegible] के सूत्र का [illegible] भव दीपिका [illegible]

दीपिका की हीज भाषा लिखी है. और यह भी ख्याल करना कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने लिखा कि नेमिनाथजी ने जीव छोड़ाया चान्या नहीं. यह कहना निरर्थक है कि नहीं. और बुद्धिबल होवे तो विचारो कि मूल सिद्धांत और दीपिका में लिखा है वह सच्चा है कि भ्रम विध्वंसन की कल्पना सच्ची. निरपक्षी जीव होगा वह तो सिद्धांत के वचन को ही प्रमाण करेगा. परन्तु मिथ्या कल्पना कि जो सिद्धांत से दीपिका से नहीं मिले उसको प्रमाण नहीं करेगा. जेकर हठवाद करके. यह प्रत्यक्ष सिद्धांत की साक्षी को भी नहीं मानोगे तो हम समझेंगे कि इन जीवों के प्रबल मोह कर्म का उदय हुवा है कि जिससे सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांत की श्रद्धा छोड़ के विपरीत कथन को मान बैठते हैं. हमने तो तुम्हारे हित के लिये मूल और दीपिका टीका सहित साक्षी लिखी है. परन्तु तुम्हारे सरीसी साक्षी नहीं लिखी कि नमिराज की आखों में अमृत झरता है. और एक वार देखने से संपूर्ण अंतःपुरादिक की रक्षा हो जावे ऐसा उत्तराध्ययन का नाम लेके लिख दिया. परंतु वह लेख उत्तराध्ययन के मूल अर्थ टीका दीपिका प्रवचूरिका आदिक में कहां भी नहीं लिखा है. ऐसी एक नहीं किंतु बहुतसी साक्षी तुमने विपरीत सूत्र का नाम लेके लिखी है सो हम ऊपर लिख चुके हैं और आगे फिर भी लिखेंगे. और हमने जो साक्षी दी है वह मूल सूत्र अर्थ दीपिका से लिखी है. उसका मतलब यह है कि जो भव्य जीव आत्मा का हितेच्छु होगा तो विचार लेवेगा. और जीतमलजी का बनाया भ्रम विध्वंसन के पत्र ४७ मा पर ऐसा लिखा है कि—

दिये. तब श्रीभगवान् ने सारथी को कुण्डल युगल हारादि सर्व आभरण इनाम में दे दिये. देखो भाई यह प्रकट सूत्र और सूत्र की दीपिका का कथन है तो फिर तुम लोग जीव बचाने में पाप होता है. धर्म नहीं. या जीवका जीवना वंछने में पाप तुम्हारे गुरुजी बतलाते हैं तो क्या श्री नेमिनाथ जी से भी तुम्हारे गुरुजी को अधिक ज्ञान है. नहीं नहीं यह प्रकट दीखता है कि तुम नेमिनाथ जी की श्रद्धा से विपरीत कथन करने वाले हो. क्योंकि जो तुम्हारे सरीसी भगवान् की श्रद्धा होवे तो सारथी ने जीव छोड़े तब आभरण गहने इनाम में क्यों देते. क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से ही दीखती है कि जो कोई अपने मालिक की इच्छा प्रमाणे काम करे तब उसपर मालिक खुश होके इनाम देते हैं जैसे कि उवाई सूत्र में कोणिक राजा को बागवान् ने श्रीभगवान् के पधारने की बधाई दी. तब राजा ने मुकुट को वर्ज के सर्व आभरण बधाई में दिये. क्योंकि कोणिक को श्री भगवान् के आने की बधाई पर अति प्रेम था तैसे ही यहां श्री नेमीनाथजी को जीवों को छोड़ने रूप दया पर अति प्रेम था. जिससे सारथी ने जीवों को खोल दिये. तब कुंडल हारादि सर्व गहने सारथी को दिये. बस यह प्रकट मूल सूत्र और दीपिका का लेख. हमने ऊपर इसलिये लिखा है. हे बुद्धिमानों पक्ष छोड़ के विचारना कि तुम्हारे गुरु जीतमलजी की कल्पना सरासर सूत्र का कथन को छिपाने की है कि नहीं. परन्तु हे भव्यो न्यायपक्षी होके सूत्र का कथन को विचारना हमने तो तुम्हारे पूज्यजी के और तुम्हारे मंतव्य मुजब सूत्र का टबार्थ को छोड़ के सूत्र का पाठ अरु दीपिका. और

दीपिका की हीज भाषा लिखी है. और यह भी ख्याल करना कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने लिखा कि नेमिनाथजी ने जीव छोड़ाया चान्या नहीं. यह कहना निरर्थक है कि नहीं. और बुद्धिवल होवे तो विचारो कि मूल सिद्धांत और दीपिका में लिखा है वह सचा है कि भ्रम विध्वंसन की कल्पना सची. निरपची जीव होगा वह तो सिद्धांत के वचन को ही प्रमाण करेगा. परन्तु मिथ्या कल्पना कि जो सिद्धांत से दीपिका से नहीं मिले उसको प्रमाण नहीं करेगा. जेकर हठवाद करके. यह प्रत्यच सिद्धांत की साची को भी नहीं मानोगे तो हम समझेंगे कि इन जीवों के प्रवल मोह कर्म का उदय हुवा है कि जिससें सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांत की श्रद्धा छोड़ के विपरीत कथन को मान वैठते हैं. हमने तो तुम्हारे हित के लिये मूल और दीपिका टीका सहित साची लिखी है. परन्तु तुम्हारे सरीसी साची नहीं लिखी कि नमिराज की आखों में अमृत झरता है. और एक वार देखने से संपूर्ण अंतःपुरादिक की रचा हो जावे ऐसा उत्तराध्ययन का नाम लेके लिख दिया. परंतु वह लेख उत्तराध्ययन के मूल अर्थ टीका दीपिका अवचूरिका आदिक में कहां भी नहीं लिखा है. ऐसी एक नहीं किंतु वहुतसी साची तुमने विपरीत सूत्र का नाम लेके लिखी है सो हम ऊपर लिख चुके हैं और आगे फिर भी लिखेंगे. और हमने जो साची दी है वह मूल सूत्र अर्थ दीपिका से लिखी है. उसका मतलव यह है कि जो भव्य जीव आत्मा का हितेच्छु होगा तो विचार लेवेगा. और जीतमलजी का वनाया भ्रम विध्वंसन के पत्र ४७ मा पर ऐसा लिखा है कि—

केतला एक टबा में कह्यो (जीए हीऊ) कहतां सकल जीवां का हितकारी तेहनो न्याय इम. प्रथम तो अवचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी. ते माटे ए टबार्थ ते टीका नो न थी) इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुवा कि सकल जीवां का हितवान् नेमीनाथजी ये अर्थ टबा टीका दीपिका का नहीं. और फिर भी (जीए ही ऊ) का अर्थ जीवां का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी ऊंधा अर्थ करने वाले कहते हैं. परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में तो स्पष्ट लिखा कि (साणु को स जीवे हेऊ) कहतां सजीवे हितः जीव विषये हितेप्सुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशे न वर्त्तते इति सानुक्रोशः सदयः॥

अब देखो दीपिका में तो प्रकट लिखा कि (जीव विषये हितेप्सुः) जीवों के विषे हितकारक. यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया. तो विचारो कि भ्रम विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवों के विषये हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं. तो कहो यह दीपिका कहां से आई. अफसोस रे है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रक्खा सो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं. परन्तु विचारे कम समझ जीवों को भ्रमरूप अंधकार में दाखल यानी प्राप्त करने वाला है. हे बुद्धिमानों तुम गुरुजी की कल्पना में विश्वास करके मत बैठे रहो. क्योंकि गुरुजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नहीं बताया है वह प्रकट दीपिका में है सो दीपिका हमने ऊपर लिखदी है. सो जो कोई न्यायपक्षी होवो

केतला एक टवा में काथो (जीए हीऊ) कहतां सकल जीवां का हितकारी तेहनो न्याय इम. प्रथम तो अवचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी. ते माटे प टवार्थ ते टीका नी न थी) इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुवा कि सकल जीवां का हितवान नेमीनाथजी ये अर्थ टवा टीका दीपिका का नहीं. और फिर भी (जीए ही ऊ) का अर्थ जीवां का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी ऊंधा अर्थ करने वाले कहते हैं. परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में सो स्पष्ट लिखा कि (साणु को से जीवे हेऊ) कहतां सजीवे हितः जीव विषये हितेप्सुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशे न वर्तते इति सानुक्रोशः सदयः॥

अब देखो दीपिका में तो प्रकट लिखा कि (जीव विषये हितेप्सुः) जीवों के विषे हितकारक. यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया. तो विचारो कि भ्रम विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवों के विषय हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं. तो कहो यह दीपिका कहां से आई. अफसोस रे है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वंसन रक्खा तो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं. परन्तु विचारे कम समझ जीवों को भ्रमरूप अंधकार में दाखल पानी प्राप्त करने वाला है. हे बुद्धिमानों तुम गुरुजी की कल्पना में विश्वास करके मत बैठे रहो. क्योंकि गुरुजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नहीं बताया है वह प्रकट दीपिका में है सो दीपिका हमने ऊपर लिखदी है मो मो कोई न्यायपक्षी होवो

नजर और मध्यस्थता होवेगी तो यह प्रकट सिद्धांत का लेख देख के जिनेश्वर देव के मार्गानुयायी होवेंगे.

पूर्वपक्ष—उत्तराध्ययनजी की पाई टीका में तो जीवों को छोड़ने का कथन नहीं होगा. क्योंकि जो होता तो हमारे गुरुजी ऐसा क्योंकर लिखते कि जीवों को छोड़ने का कथन चला नहीं.

उत्तरपक्ष हे भव्य नहीं कैसे है जो मूल सूत्र में ही कथन है. वह पाई टीका में कैसे नहीं होवे. पाई टीका में तो स्पष्ट जीव छोड़ने का इनाम नेमिनाथजी ने सारथी को दिया चला है. सो हम तुम्हारे हित के लिये पाई टीका का लेख भी लिखते हैं.

तथा च टीका एवं विदित भगवदभिप्रायेण सारथिना मोचितेषु सत्वेषु परितोषाद्यदसौ कृतवांस्तदाह: सूत्र कंठ कटि सूत्र के च । इति.

टीकार्थः इस प्रकार करके जान लिया है भगवान का अभिप्राय जिसने ऐसा सारथी ने प्राणियों को छोड़ दिये तब प्रसन्न होने से जो भगवान करते भये सो कहते हैं. कटि सूत्र इत्यादिक इनाम दिया ॥

अब हे बुद्धिमानो हृदय के नेत्र खोल के देखो पाई टीका में प्रकट लिखा कि श्री नेमिनाथ भगवान के अभिप्राय से सारथी ने जीवों को छोड़ दिये तब श्री भगवान ने कुण्डलादिक भूषण इनाम में दिये तो अब्बल तो विचारो कि श्री भगवान का जीव को छुड़ाना स्पष्ट सिद्ध है तथा फिर तो स्वयं नेमिनाथजी का आप छोड़ने से सारथी को इनाम देना लिखा यह मूल पाठ में तो है नहीं तो फिर नेमिनाथजी ने इनाम

सारथी को किस बात का दिया. जेकर कहो कि जान खातिर जीव मरने का उत्तर दिया इसलिये इनाम दिया तो यह कल्पना बिलकुल मिथ्या है. क्योंकि खबर तो सारथी को पेस्तर ही श्री भगवान् ने ज्ञान से जान ली थी कि इस निमित्त यह जीव इकट्ठे करे हैं परन्तु सारथी को पूछने का मतलब यह है कि जिससे दया को प्रकट जान जाय. जब सारथी ने प्रकट जानली तब जीवों को खोल दिये. तब श्री नेमिनाथजी ने सर्व आभूषण कुंडलादिक सारथी को इनाम में दिया. ऐसा लेख सूत्र का पाठ की दीपिका में है सो हमने ऊपर लिख दिया है. तथा कोई ऐसी कल्पना करे कि नेमीनाथजी को संयम लेने के खातिर गहने को खोलना था जिससे सारथी को आभूषण दे दिये तो यह भी श्रद्धा जैन सिद्धांत के अजाण की है. क्योंकि सारथी को इनाम देके तोरण से फिरे बाद १ वर्ष तक गृहवास में रहे हैं और वर्षीदान दिया है. क्योंकि वर्षीदान दिये वगैर कोई भी तीर्थंकर दीक्षा नहीं लेते हैं. यह कथन मूल सूत्र में है. बस यह सिद्धांत का लेख स्पष्ट खुलासावार है. सो तुम्हारा लिखना है कि यदि आप मरते जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो पाठ दिखलाना चाहिये. इससे हम अति खुश हैं और तुम्हारे से अति हित करके हम कहते हैं कि हे देवानुप्रिय यह सूत्र उत्तराध्ययन का २२ मा अध्ययन की अति पुष्ट साक्षी लिखी है परन्तु गोलमाल नाम रूप ही नहीं किंतु सूत्र पाठ पाई टीका, दीपिका, अवचूर्णी सहित लिखी है सो निरपक्षता से पढ़के परमेश्वर के वचनों की आस्ता लाइये साक्षी तो एक ही बहुत है. तथापि हम तुम्हारी ज्ञान दृष्टि बढ़ाने के लिये फिर

भी लिखते हैं. सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संवर द्वार तिसमें दया के गुण निष्पन्न ६० नाम कहे हैं तिसका ११ मा नाम दया ऐसा है. तिसका अर्थ देही यानि जीव की रक्षा का है सो टीका में खुलासा लिखा है. तथा च टीका ॥ (तथा दया देहि रक्षा) यह देखो देहि यानी जीव जिसकी रक्षा करणी उसका नाम दया कही है और दया पालके अनंत जीव मोक्ष गये हैं तो फिर तुम कहते हो कि जीव बचाने में पाप. यह तुम कहां से लाये हो.

पूर्वपक्ष–हमतो दया का अर्थ नहीं हनने का कहते हैं यानी अपनी तर्फ से नहीं हनना यह अर्थ करते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई सूत्र का अर्थ तो जो सूत्र में है वही रहेगा. परन्तु कल्पित अर्थ मन मते से करना भवभीरु यानी संसार से डरने वाले का नहीं है. और नहीं हनना नाम तो ६० नाम में से एकही नाम हुवा. परन्तु सूत्र में तो ६० नाम कहे हैं सो एक को ही मानना बुद्धिमान् का काम नहीं. जेकर एक ही मानोगे तो सिद्धांत के घणे पाठों के उत्थापक होवेगे. जैसे इसी सूत्र में ३४ मा नाम (रक्षा) ३४ अस्य टीका. (रक्षा जीव रक्षणस्वभावात्) जीव रक्षा का स्वभाव है, तिससे रक्षा कहते हैं. देखो नजर लगाके कि अपनी तर्फ से नहीं हनना उसकोही ज तुम दया मानते हो. और सूत्रकार कहते हैं कि जीव की रक्षा करना नाम भी दया है सूत्र की आस्ता होवे तो विचार लो. तथा ५४ मा नाम (अमाघा ओ) ५४ अर्थः (अमारि गवेषणानेमिनाथ नी परे) देखो यह छापा कि प्रश्न व्याकरण के पत्र ३३० मा पर लिखा है कि नेमीनाथ के परे

टीका–सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रावचनं प्रवचनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायाबाधितेन ॥

टीकार्थः–सम्पूर्ण जो जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो दया जिसके अर्थ शिक्षा सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने भला कहा. न्याय का अबाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लेवो कि यहां सूत्र में कहा कि सर्व जगत् के जीवों को रक्षने रूप जो दया जिस अर्थ प्रवचन (सिद्धांत) श्रीमान महावीर प्रभु ने भली प्रकारे कथे हैं. अच्छी तरह से फरमाये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत फरमाये यह सर्व जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर जीव की रक्षा यानी मरते जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे कहते हो.

पूर्वपक्ष जीव को मरते हुए को कौन रख सक्ता है. क्योंकि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है. तो मात्र रक्षा तो शरीर की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तरपक्ष हे अन्यज्ञ जेकर जीव मरते हुए रक्षा करने से नहीं रहते हैं तो ऐसा निश्चय सब करके कहोगे तब तो जीव मारे से नहीं मरता है क्योंकि अपनी आयुष से ही मरता है. जेकर ऐसी श्रद्धा तुम्हारी होजाय कि जीव मारना पाप नहीं. तब तो फिर तुम्हारे मन में और हिंसा करनी ही रही. तब तो [illegible] है [illegible] तुम्हारे मन में मात्र दया भी [illegible] है [illegible] ऐसा [illegible] ऐसा [illegible] नहीं है [illegible] तब तो तुम्हारे गुरु [illegible] है कि जीव मत हणो.

टीका–सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रावचनं प्रवचनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायाबाधित्वेन ॥

टीकार्थः–सम्पूर्ण जो जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो दया तिसके अर्थ शिक्षा सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने भला कहा. न्याय का अबाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लेवो कि यहां सूत्र में कहा कि सर्व जगत् के जीवों को राखने रूप जो दया तिस अर्थ प्रवचन (सिद्धांत) श्रीमान् महावीर प्रभु ने भली प्रकारे कथे हैं, अच्छी तरह से फरमाये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत फरमाये वह सर्व जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर जीव की रक्षा यानी मरते जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे कहते हो.

पूर्वपक्ष–जीव को मरते हुए को कौन रख सक्ता है. क्योंकि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है. तो मात्र रक्षा तो हाड़के की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तरपक्ष–हे अल्पज्ञ जेकर जीव मरते हुए रक्षा करने में नहीं रहते हैं तो ऐसा निश्चय नय करके कहोगे तब तो जीव मारे से नहीं मरता है क्योंकि अपनी आयुष से ही मरता है. जेकर ऐसी श्रद्धा तुम्हारी होजाय कि जीव मारया मरे नहीं, तब तो फिर तुम्हारे मत में जीव हिंसा लगनी ही नहीं, तब तो जीव हिंसा के अभाव से तुम्हारे मत में साधु होना भी निरर्थक है. क्योंकि जीव हिंसा नहीं तो फिर हिंसा का त्याग कहां से रहे. तब तो तुम्हारे गुरु उपदेश देते हैं कि जीव मत हणो

यह कहना भी निरर्थक ठहरेगा. ऐसा मानने से तो तुम्हारा मत नास्तिक सरीसा ही हो जायगा.

पूर्वपक्ष—जीव मारचा तो मरता है. तिससे जीव मारने में पाप है इस हेतु से हमारे गुरूजी उपदेश देते हैं. या स्वयं पाप जानके त्याग करके साधू होते हैं.

उत्तरपक्ष—तो हे भव्यो ऐसे ही समझ लेवो कि जीव मारया मरता है. वैसे ही जीव बचाया बचता है. और जैसे जीव मारने में पाप है वैसे ही जीव की रक्षा करने में धर्म है. क्योंकि जैसे मारने वाले की खोटी लेस्या, और खोटा जोग, खोटा अध्यवसाय होता है इससे पाप होता है. वैसे ही रक्षा करने वाले की भली लेस्या भले जोग भले अध्यवसाय होते हैं उससे धर्म पुन्य होता है. यह प्रत्यक्ष देखो कि एक जना तो जीव को मार रहा है. या गौओं के वाड़े मनुष्य में लाय लगाने की इच्छा करता है. या ग्राम को जलाने की इच्छा करता है. और दूसरा जना कहता है कि भाई जीव को मत मार. लाय मत लगा. अब देखो कि जीव को मारने वाले की, लाय लगाने वाले की कृश्न लेस्या सूत्र उत्तराध्ययन के ३४ मा अध्ययन की २२ मी गाथा में कही है.

सूत्र—निद्धंस, परिणामो, निस्संसो, अजिइंदिओ। एय जोग, समाउत्तो, कण्हलेसंतु, परिणामे॥

अस्यार्थः—जीवां मने हणनो शंका न करे ते निध्वंस परिणाम निस्त्रंसनि निर्दयइ. इन्द्रियानो अण जीतणहार. एहवो जोग करी समा उक्त सहित थको तु निश्चय करी कृष्ण लेस्या मने परिणमे ॥ ३४ ॥

टीका–सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रावचनं प्रवचनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायाबाधित्वेन ॥

टीकार्थः–सम्पूर्ण जो जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो दया तिसके अर्थ जिया सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने भला कहा, न्याय का अबाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लेवो कि यहां सूत्र में कहा कि सर्व जगत् के जीवों को राखने रूप जो दया तिस अर्थ प्रवचन (सिद्धांत) श्रीमान् महावीर प्रभु ने भली प्रकारे कथे हैं, अच्छी तरह से फरमाये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत फरमाये वह सर्व जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर जीव की रक्षा यानी मरते जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे कहते हो.

पूर्वपक्ष–जीव को मरते हुए को कौन रख सक्ता है, क्योंकि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है, तो मात्र रक्षा तो हाइके की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तरपक्ष हे अल्पज्ञ जेकर जीव मरते हुए रक्षा करने में नहीं रहते हैं तो ऐसा निश्चय नय करके कहोगे तब तो जीव मारे से नहीं मरता है क्योंकि अपनी आयुष से ही मरता है, जेकर ऐसी श्रद्धा तुम्हारी होजाय कि जीव मारया मरे नहीं, तब तो फिर तुम्हारे मत में जीव हिंसा जगती ही नहीं, तब तो जीव हिंसा के अभाव से तुम्हारे मत में मानो दया भी निरर्थक है क्योंकि जीव हिंसा नहीं तो फिर हिंसा का त्याग कहां से हो तब तो तुम्हारे गुरु उपदेश देते हैं कि जीव मत हणो.

उत्तरपक्ष–हे भाइयो वास्तव में सत्य तो यही है कि साधु को जीव मारते हुए को रोकना, जीव मतमार. परन्तु तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा मानने वाले भीषमजी की उपासक की श्रद्धा जीव मारते हुए को रोके उसमें धर्म मानने की नहीं. उल्टा जीव मारते हुए को रोके मनाई करे तो उसको महापापी कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीव मारे उसको एक पाप और मारने को धर्म जानके वर्जे उसको १८ पाप कहते हैं. यह बात जो तुम्हारे गुरु या असली उनकी श्रद्धा के श्रावक जानते हैं और श्रद्धते हैं. औरों को भी ऐसा उपदेश देते हैं. परन्तु कितनेक भोले भाई उनको इस बात का वाकिबपणा नहीं है. जिससे उनके मत में जैन धर्म के नाम से बंध जाते हैं. परन्तु जीव मारते हुए को कोई मनाही करे कि इस जीव को मतमार ऐसा उपदेश देने वाले को पाप लगे ऐसा कहते हैं और श्रद्धते हैं ऐसा उनका लेख यहां बताते हैं. अनुकंपा की ढाल चौथी गाथा ३८ वी.

(गिर नगरादिके हेठे जीव मरे तो साधु ने बतावणो कठे नहीं चाल्यो. भारी करमा लोका ने मिष्ट करणने भी पणु पांचो कुपरा चाल्यो । ३८ । यहां इनने एक गाथा लिखी है परन्तु इस विषय का कथन इस ढाल में बहुत है. संदेह होवे तो देख लेना. गाथा की व्याख्या. गृहस्थ के घर के हेठे उंदरा वगैरह जीव मरे और गृहस्थ बिना उपयोग से नहीं देखे और साधु देखे तो भी साधु को नहीं बतलाना कि यह जीव मेरे घर नीचे मरे तो तेरे को पाप लगेगा. इत्यादिक नहीं कहना किन्तु मौन रखना ।

यह देखो जीव मारता नहीं डरे उसको कृष्न लेसी यानी पाप लेस्यावान् कहा है. और जीवों को बचाने वाला, पाप से डरने वाला को धर्म लेस्यावान् कहा है। और इसी अध्ययन की ३८ मी गाथा में निम्नलिखित है.

सूत्र-पिये धम्मे, दढधम्मे, वज्जभीरुहिएसए. एय जोग, समाउत्तो, तेउ, लेसंतु, परिणमे ॥ ३८ ॥

अस्यार्थः-प्रिय धर्म छे जेहने वली हढ धर्म ने विषइ हढ वज्र पाप थकी बीहकण हितनो वंछण हार एवे योगे करी समायुक्त सहित थकउवे जो लेस्या परिणमे ॥ ३८ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में मूलपाठ बोलता है कि पाप से डरने वाला और हित का चिंतनेवाला को तेजु लेस्या, यानी प्रशस्त धर्म लेस्यावान् कहा है तो विचारो कि जीव हिंसा लाय लगानादि पाप करनेवाला तो पापलेस्यावान् यानी पापी है. और वर्जनेवाला यानी मारते हुवे को लाय लगाते हुए को रोकनेवाला धर्म लेस्यावान् यानी धर्मात्मा है. क्योंकि पाप से डरना डराना, डरते हुए को भला जानना, यह सर्व कल्प धर्मी पुरुष के हैं तो फिर तुम जीव मारते हुए को मनादि यानी जो कोई रोके उसमें पाप कहते हो यह श्रद्धा किस सिद्धांत से निकाली. कोई सिद्धांत टीका, भाष्य, दीपिका, अवचूरिका में कहीं भी नहीं है.

पूर्वपक्ष-जीव मारते हुए को तो हमारे गुरुजी भी मनादि करते होंगे. क्योंकि साधू का उपदेश तो मत हणो मत हणो ऐसा है तो हमारे गुरुजी जीव मारते हुए को मनाही करने में पाप कैसे कहते होंगे.

उत्तरपच-हे भाइयो वास्तव में सत्य तो यही है कि साधु को जीव मारते हुए को रोकना. जीव मतमार. परन्तु तुम्हारे गुरु भीषनजी की श्रद्धा मानने वाले भीषनजी की उपासक की श्रद्धा जीव मारते हुए को रोके उसमें धर्म मानने की नहीं. उल्टा जीव मारते हुए को रोके मनाइ करे तो उसको महापापी कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीव मारे उसको एक पाप और मारते को धर्म जानके वर्जे उसको १८ पाप कहते हैं. यह बात जो तुम्हारे गुरु या असली उनकी श्रद्धा के श्रावक जानते हैं और श्रद्धते हैं. औरों को भी ऐसा उपदेश देते हैं. परन्तु कितनेक भोले भाइ उनको इस बात का वाकिवपखा नहीं है. जिससे उनके मत में जैन धर्म के नाम से बंध जाते हैं. परन्तु जीव मारते हुए को कोइ मनाही करे कि इस जीव को मतमार ऐसा उपदेश देने वाले को पाप लगे ऐसा कहते हैं और श्रद्धते हैं ऐसा उनका लेख यहां बताते हैं. अनुकंपा की ढाल चौथी गाथा २८ मी.

(गिर सनरापगरे हेठे जीव आवे तो साधू ने बतावणो कडे नहीं चाल्यो. भारी करमा लोकां ने मिष्ट करलने ओ पथ योंतो कुपरा चाल्यो । २८ । यहां हमने एक गाथा लिखी है परन्तु इस विषय का कथन इन ढाल में बहुत है. संदेह होवे तो देख लेना. गाथा की व्याख्या. गृहस्थ के पग के हेठे ऊंदरा मनुष्य जीव आवे और गृहस्थ बिना उपयोग से नहीं देखे और साधु देखे तो भी साधु को नहीं बतावणा कि यह जीव तेरे पग नीचे आवे तो तेरे को पाप लगेगा. इत्यादिक नहीं कहणा किन्तु मौन रखणी ।

यह देखो जीव मारता नहीं डरे उसको कृष्ण लेसी यानी पाप लेस्यावान् कहा है. और जीवों को बचाने वाला, पाप से डरने वाला को धर्म लेस्यावान् कहा है। और इसी अध्ययन की २८ मी गाथा में निम्नलिखित है.

सूत्र-पिये धम्मे, दढधम्मे, वज्जभीरुहिएसए. एय जोग, समाउत्तो, तेउ, लेसंतु, परिणमे ॥ २८ ॥

सस्यार्थः-प्रिय धर्म छे जेहने वली दृढ धर्म ने विषए दृढ पाप थकी बीहकण हितनो वंछण हार एवे योगे करी समायुक्त सहित थकउते जो लेस्या परिणमे ॥ २८ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में मूलपाठ बोलता है कि पाप से डरने वाला और हित का चिंतनेवाला को तेजु लेस्या, यानी प्रशस्त धर्म लेस्यावान् कहा है तो विचारो कि जीव हिंसा लाय लगा-नादि पाप करनेवाला तो पापलेस्यावान् यानी पापी है. और वर्जनेवाला यानी मारने हुए को लाय लगाते हुए को रोकने-वाला धर्म लेस्यावान यानी धर्मात्मा है. क्योंकि पाप से डरना डराना, डरने हुए को भला जानना, यह सर्व फल धर्मी पुरुष के है तो फिर तुम जीव मारने हुए को मनाइ यानी जो कोई रोके उसमें पाप कहते हो यह श्रद्धा किस सिद्धांत से निकाली. कोई सिद्धांत टीका, भाष्य, दीपिका, अवचूरिका में कहीं भी नहीं है.

तुमरुप जीव मारने हुए को तो हमारे गुरुजी भी मनाई करने होंगे क्योंकि साधु का उपदेश तो मत हणो मत हणो देना है तो हमारे गुरुजी जीव मारने हुए को मनाई करने में पाप कैसे कहते होंगे

पाप लगने से रोका और अन भी अखंड रखाया. तो कोई गृहस्थ श्रावक प्रमुख के पग तले जीव आवे उसको कोई साधू या कोई भी दयावान् बता देवे उसको भीषमजी ने लोकों को भ्रष्ट करने वाला क्योंकर लिख दिया. तो निश्चय हुवा कि भीषमजी की श्रद्धा दया धर्म से विरुद्ध हुई. परन्तु दया का उपदेश दाता, पैर नीचे जीव बताने का उपदेश दाता. लोकों को भ्रष्ट करने वाला किसी सिद्धांत प्रमाण से प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है परन्तु धर्म का पालने वाला सिद्ध होता है. और पाप से बचाने वाला सिद्ध होता है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते हैं कि वर्तमान काल में कोई पाप करता होवे तो उसको मना नहीं करना. परन्तु वह पाप नहीं करता होवे जीव मारणे के भाव नहीं होवे, उस वक्त उपदेश का मौका आवे तो पाप के कड़वे फल बता देना. परन्तु वर्तमान काल में पाप करता होवे, कोई किसी को मारता होवे, कोई किसी को गाली देता होवे तो साधू को मना नहीं करना. और कुछ नहीं कहना क्योंकि जगत् के झगड़े में साधू काहे को पड़े. साधू को तो कोई वर्तमान काल में पाप करता होवे तो कुछ भी नहीं कहणा.

उत्तरपक्ष—हां भाई जरूर तुम्हारे गुरुजी की ऐसी ही श्रद्धा है कि जीव मारते को कुछ भी नहीं कहना. तथा कोई किसी को आक्रोश करता होवे तो आक्रोश मत करो लड़ाई मत करो ऐसा भी नहीं कहना. यह बात भ्रम विध्वंसन के पत्र ४२ में पें लिखा है. भ्रमरूप साक्षी भी दी है. परन्तु हम सूत्र साक्षी सहित परमेश्वर का मार्ग वर्तमान काल में पाप करने वाले को

जेकर कोई गृहस्थ के पग हेठे जीव आवे और गृहस्थ नहीं देखे, साधू देखे और उस जीव पर पग मेलने वाले गृहस्थ को साधू कह देवे कि उपयोग रख जीव मत मार तेरे पग नीचे जीव आता है. ऐसा कहे उस कहने वाले दयावान् को भीषमजी भारी कर्मी कहते हैं. या लोकों को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं और कोई के पग नीचे जीव आवे तो नहीं हनने का उपदेश देवे तो धर्म है ऐसा परूपणे वाले को भीषमजी कुगुर कहते हैं लोकों को मिथ्यात्व रूप धोंचे घालने वाले कहते हैं इति गाथा की व्याख्या.

हा ! हा ! हा ! अफसोस है रे कि भीषमजी की कैसी क्रूर श्रद्धा है कि जीव मारते हुए को भी मत मारो ऐसा उपदेश नहीं और श्रावक जिसको त्रस जीव मारणे के त्याग हैं. और जीव मारणा नहीं चाहता है परन्तु विना उपयोग से कीड़ी मकोड़ी आदि पर पैर रखता है. उसको साधू ने कहा कि देख जीव पें पग मत दे तुझे पाप लगेगा और व्रत भंग होवेगा. ऐसा करुणा का उपदेश श्रावक को साधू देवे जिसमें साधू को क्या पाप लगा. जो उनको भीषमजी कुगुरु कहते हैं या लोकों को भ्रष्ट करणहार कहते हैं. और जिस श्रावक के जोग से जीव मरता था व्रत भी भांगता था उसको साधू के चेताने से जीवहिंसा का पाप भी टर गया. व्रत भी अखंड रह गया. उसमें कहो भाई वह श्रावक क्या भ्रष्ट हुवा कि उलटा पाप से छूटा. यानी शुद्ध हुवा.

हा ! हा ! हा ! बुद्धिमान विचारो कि श्रावक को उलटा

पाप लगने से रोका और व्रत भी अखंड रखाया. तो कोई गृहस्थ श्रावक प्रमुख के पग तले जीव आवे उसको कोई साधु या कोई भी दयावान बता देवे उसको भीषमजी ने लोकों को भ्रष्ट करने वाला क्योंकर लिख दिया. तो निश्चय हुआ कि भीषमजी की श्रद्धा दया धर्म से विरुद्ध हुई. परन्तु दया का उपदेश दाता, पैर नीचे जीव बताने का उपदेश दाता, लोकों को भ्रष्ट करने वाला किसी सिद्धांत प्रमाण से व प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है परन्तु धर्म का पालने वाला सिद्ध होता है. और पाप से बचाने वाला सिद्ध होता है.

पूर्वपक्ष--हमारे गुरुजी कहते हैं कि वर्तमान काल में कोई पाप करता होवे तो उसको मना नहीं करना. परन्तु वह पाप नहीं करता होवे जीव मारणे के भाव नहीं होवे, उस वक्त उपदेश का मौका आवे तो पाप के कड़वे फल बता देना. परन्तु वर्तमान काल में पाप करता होवे, कोई किसी को मारता होवे, कोई किसी को गाली देता होवे तो साधु को मना नहीं करना. और कुछ नहीं कहना क्योंकि जगत के झगड़े में साधु काहे को पड़े. साधु को तो कोई वर्तमान काल में पाप करता होवे तो कुछ भी नहीं कहना.

उत्तरपक्ष-हां भाई जरूर तुम्हारे गुरुजी की ऐसी ही श्रद्धा है कि जीव मारने को कुछ भी नहीं कहना. तथा कोई किसी को आक्रोश करता होवे तो आक्रोश मत करो [illegible] मत करो देना भी नहीं कहना यह बात खूब विचक्षण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी है [illegible] [illegible] [illegible] मांहि [illegible] का [illegible] वर्तमान काल में पाप [illegible] [illegible] [illegible]

जेकर कोई गृहस्थ के पग हेठे जीव आवे और गृहस्थ नहीं देखे, साधु देखे और उस जीव पर पग मेलने वाले गृहस्थ को साधु कह देवे कि उपयोग रख जीव मत मार तेरे पग नीचे जीव आता है. ऐसा कहे उस कहने वाले दयावान् को भीषमजी भारी कर्मी कहते हैं. या लोकों को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं और कोई के पग नीचे जीव आवे तो नहीं हनने का उपदेश देवे तो धर्म है ऐसा प्ररूपणे वाले को भीषमजी कुगुरु कहते हैं लोकों को मिथ्यात्व रूप घोंचे घालने वाले कहते हैं इति गाथा की व्याख्या.

हा ! हा ! हा ! अफसोस है २ कि भीषमजी की कैसी मूर श्रद्धा है कि जीव मारते हुए को भी मत मारो ऐसा उपदेश नहीं और श्रावक जिसको त्रस जीव मारणे के त्याग है. और जीव मारणा नहीं चाहता है परन्तु विना उपयोग से कीड़ी मकोड़ी आदि पर पैर रखता है. उसको साधु ने कहा कि देख जीव पैं पग मत दे तुझे पाप लगेगा और व्रत भंग होवेगा. ऐसा करुणा का उपदेश श्रावक को साधु देवे जिसमें साधु को क्या पाप लगा. जो उनको भीषमजी कुगुरु कहते हैं या लोकों को भ्रष्ट करणहार कहते हैं. और जिस श्रावक के जोग से जीव मरता था व्रत भी भांगता था उसको साधु के चेताने से जीवहिंसा का पाप भी टर गया. व्रत भी अखंड रह गया. उसमें कहो भाई वह श्रावक क्या भ्रष्ट हुवा कि उलटा पाप से छूटा. यानी शुद्ध हुवा.

हा ! हा ! हा ! बुद्धिमान विचारो कि श्रावक को उलटा

पाप लगने से रोका और व्रत भी अखंड रखाया. तो कोई गृहस्थ श्रावक प्रमुख के पग तले जीव आवे उसको कोई साधू या कोई भी दयावान् बता देवे उसको भीषमजी ने लोकों को भ्रष्ट करने वाला क्योंकर लिख दिया. तो निश्चय हुवा कि भीषमजी की श्रद्धा दया धर्म से विरुद्ध हुइ. परन्तु दया का उपदेश दाता, पैर नीचे जीव बताने का उपदेश दाता, लोकों को भ्रष्ट करने वाला किसी सिद्धांत प्रमाण से प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है परन्तु धर्म का पालने वाला सिद्ध होता है. और पाप से बचाने वाला सिद्ध होता है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहते हैं कि वर्तमान काल में कोई पाप करता होवे तो उसको मना नहीं करना. परन्तु वह पाप नहीं करता होवे जीव मारणे के भाव नहीं होवे, उस वक्त उपदेश का मौका आवे तो पाप के कडवे फल बता देना. परन्तु वर्तमान काल में पाप करता होवे, कोई किसी को मारता होवे, कोई किसी को गाली देता होवे तो साधू को मना नहीं करना. और कुछ नहीं कहना क्योंकि जगत् के झगडे में साधू काहे को पडे. साधू को तो कोई वर्तमान काल में पाप करता होवे तो कुछ भी नहीं कहणा.

उत्तरपक्ष–हां भाई जरूर तुम्हारे गुरुजी की ऐसी ही श्रद्धा है कि जीव मारने को कुछ भी नहीं कहना. तथा कोई किसी को आक्रोश करता होवे तो आक्रोश मत करो लडाई मत करो ऐसा भी नहीं कहना. यह बात भ्रम विध्वंसन के पत्र ८९ में पें लिखा है. भ्रमरूप साक्षी भी दी है. परन्तु इस सूत्र साक्षी सहित परमेश्वर का मार्ग वर्तमान काल में पाप करने वाले को

रोकने में धर्म है ऐसा लिख दिखाते हैं. एकाग्र चित्त करके सुनिये. सूत्र भगवतीजी के शतक १२ मा उद्देश पहिले में संख श्रावक का अधिकार में संख श्रावक ने पोषलीजी प्रमुख श्रावकों को कहा कि हे देवानुपिया तुम ४ प्रकार का आहार निपजावणा फिर अपने सर्व जणे आहार करते हुये पक्षी पोषा की जागरणा करते विचरेंगे तब पीछे उन श्रावकों ने वही काम किया. परन्तु संखजी श्रावक को तत्पश्चात् ११ मा प्रतिपूर्ण पोषा करने की इच्छा हुई जिससे ४ आहार के त्याग करके पोषधशाला में प्रतिपूर्ण पोषा किया. और दूसरे शंख सिवाय श्रावकों ने जीम के पोषा किया. दूसरे दिन शंखजी भी श्री भगवान वर्द्धमानजी का धर्मोपदेश सुनने को दर्शन करने को आये और दूसरे श्रावक भी आये. धर्मोपदेशना सुनने के बाद शंखजी के ऊपर दूसरे श्रावक आक्रोश ला के शंखजी को कहने लगे. कि हे देवानुप्रिय कल तुमने हमसे तो भोजन करके पोषा करने को कहा. और तुमने ४ आहार का त्याग करके परिपूर्ण पोषा कर लिया सो अब हम देवानुप्रियों तुम्हारे हित के वास्ते सूत्रपाठ लिखते हैं सो श्रवण करिये.

सूत्र—नंसद्दुर्ग, तुम्मं, देवाणुप्पीया, अम्हे, हीलेसि। अज्जो, तिसमणे, भगवं, महावीरे, ते, समणो, वासए, एवं, वयासीमायां, अज्जो, तुब्भे, संखं, समणोवासगं, हीलह, निंदह, खिंसह, गरह, अवमाणह ॥ इतिः ॥

अस्यार्थः ते भलु कार्यो इसो उलंभो देई कहे तुमने अम्हे अहो देवानुप्रिये, हमे हीलम्या गरू सास्ते. ऐसा श्रावक का वर्तावे देखके भगवंत महावीर स्वामी ने कहा कि मत हे आर्यो

ऐसे आमन्त्रण देके कहते यभे. कि हे आर्यो संख श्रावक को हिलोनिंदो खिसो मत. इनकी अवज्ञा मत करो. इत्यर्थः.

अब देखो यहां मूल सूत्र में कहा कि संख श्रावक की हीलना निंदना करते हुये ऐसे पोपली प्रमुख श्रावकों को श्री-भगवान ने श्रीमुख से वर्जे तो हे भाई विचारो जो परमेश्वर की तुम्हारे सरीखी श्रद्धा कि वर्तमान काल में पाप करते हुए को मनाही नहीं करने की होती तब तो संख पोपली का झगड़ा श्री भगवान् क्यों मेटते तो निश्चय हुवा कि परमेश्वर की श्रद्धा तो पाप करने को रोकने में श्रावकों को हीलते हुए को वर्जने में है और झगड़ा मिटाने में धर्म मानने की श्रद्धा है. परन्तु पाप करते को देख के उसको मना करने में पाप लगने की नहीं जैसे शंख श्रावक पैं उन पोपली प्रमुख श्रावकों को क्रोध करते हुए को वर्जे तैसे ही समझ लेना हर कोई पाप करते हुए को वर्जे पाप छोड़ावे तो धर्म है परन्तु पाप नहीं.

पूर्वपक्ष–यह तो तीर्थंकर के लिये कहा. परन्तु वह तो सर्वज्ञ है आगम विहारी है परन्तु छद्मस्थ साधू किसी को पाप करते हुए को मनाई करे कि नहीं.

उत्तरपक्ष–साधू के लिये भी कहा है. ठाणांग के तीजा ठाणा उद्देश तीसरा में कहा कि हिंसादि अकार्य करते हुए को उपदेशादिक धर्म की प्रेरणा करके प्रेरणा करे पाप से छोड़ावे और तुम्हारे गुरु जीतमलजी कृत भ्रम विध्वंसन के पत्र ५४ मा पैं लिखा भी है (अथ अठेपण कयो हिंसादि अकार्य करना देखी उपदेश देइ समझावणो) अब देखो भाइ जीतमलजी तो कहते हैं कि हिंसादि अकार्य यानी जीव को मारना देखके, या

और भी कोई पाप को करता देखके कोई उपदेश देवे कि जीव मत मार. या और कोई पाप मत कर. ऐसा कहे तो उस कहने वाले को धर्म होता है और भीषमजी तो कहते हैं कि कोई गृहस्थ के पैरादि करके जीव मरता हो तो नहीं चेतावणा. जीव मत मार ऐसा नहीं कहना. कहे तो कुगुरु समझना और जीतमलजी कहते हैं कि हिंसा करता देखके उपदेश देके समझावणा. सो फिर श्रावक के पग नीचे जनावर आता देखके साधु उपदेश देके जीव बचाया. श्रावक का पाप टरा. इसमें पाप भीषमजी ने कैसे बताया. हा ! हा !! परस्पर विरुद्धता का हाल लिखा नहीं जावे. अब भीषमजी की श्रद्धा के लेखे तो जीतमलजी कुगुरु ठहरे. क्योंकि जीतमलजी तो हिंसा करते को उपदेश देना कहा. अब कहो भाई भीषमजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो कि जीतमलजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो. और भी तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा को प्रगट करते हैं ध्यान लगा के सुनो. अनुकंपा की ढाल दूसरी २ ॥

(चेड़ाने कोणी करी वार्ता. निरावली का भगोती साखरे. मानवमुरा दोय संग्राम में एक कोड़ ने असी लाखरे ॥ ३९ ॥ भगवंत अनुकंपा आणी नी. पोते न गया न मेलया साररे. थाने पेला पिण वर्ज्यो नहीं ने तो जीवा री मण विरायरे. जीवा० ४० ॥ एमा नो दया अनुकंपा जाणता. तो वीर वटीने जायरे. सनत्कुमार साना उरमारुना एतो थोरा में देता मिटायरे. जीवा० ४१ ॥ कोणक भगत भगवान रो. चेड़ो बारे व्रत धाररे. इन्द्र भीर आया नेट समदृष्टी. तो किम विध न्होपता काररे. जीवा० ॥ ४२ ॥ इति: ॥

और भी कोई पाप को करता देखके कोई उपदेश देवे कि जीव मत मार. या और कोई पाप मत कर. ऐसा कहे तो उस कहने वाले को धर्म होता है और भीषमजी तो कहते हैं कि कोई गृह-स्थ के पैरादि करके जीव मरता हो तो नहीं चेतावणा. जीव मत मार ऐसा नहीं कहना. कहे तो कुगुरु समझना और जीत-मलजी कहते हैं कि हिंसा करता देखके उपदेश देके समझावणा. तो फिर श्रावक के पग नीचे जनावर आता देखके साधु उप-देश देके जीव बचाया. श्रावक का पाप टरा. इसमें पाप भीषम-जी ने कैसे बताया. हा ! हा हा ! परस्पर विरुद्धता का हाल लिखा नहीं जावे. अब भीषमजी की श्रद्धा के लेखे तो जीत-मलजी कुगुरु ठहरे. क्योंकि जीतमलजी तो हिंसा करते को उपदेश देना कहा. अब कहो भाई भीषमजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो कि जीतमलजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो. और भी तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा को प्रगट करते हैं ध्यान लगा के सुनो. अनुकंपा की ढाल दूसरी २ ॥

(नेहाने कोयी करी वार्ता. निरावली मा भगोती सालरे. मानवमुवा दोय संग्राम में एक कोड़ ने यसी लाखरे ॥ ३९ ॥ भगवंत अनुकंपा आणी नहीं. पाँव न गया न मेल्या सारे. याने पेला पिन रखी नहीं ने तो जीवा री जाण विराधरे. जीवा० ४० ॥ एला नो दया अनुकंपा जाणना. तो वीर बचीने जायरे. मारतां माता उजनारा एना थोग वे देना निमयरे. जीवा० ४१ ॥ केवलिक ज्ञान भगवान ना. चेडो थारे व्रत धारंर. इन्द्र और जाता नर मदद्दानी नो दिन विर जीवरा कारंर. जीवा० ॥ ४२ ॥ इति: ॥

अब देखो भीषमजी की श्रद्धा है कि कोई राजा परस्पर संग्राम करते होवे तो भी उपदेश दे मेंट नहीं करना. संग्राम करते पहिली भी नहीं वर्जना. क्योंकि कोणिक राजा और चेड़ा राजा की लड़ाई हुई वहां उपदेश देने को भगवंत नहीं गये. पहिले भी मनाई नहीं करी इस वास्ते उपदेश देके संग्राम मेटे लड़ाई छोड़ावे तिसमें भी पाप होता है. और जीतमलजी सूत्र ठाणांग की साक्षी देके भ्रमविध्वंसन के पत्र ५४ मा पर लिखा कि (अठे पण कह्यो हिंसादिक अकार्य करतो देखी उपदेश देई समझावणो) अब देखो जीतमलजी तो कहते हैं कि उपदेश देके हिंसादि अकार्य करतो देखी समझावणो. हिंसा छोड़ावणी. और भीषमजी ने अनुकंपा की दूसरी ढाल में लिखा कि जो संग्राम छोड़ने में दया अनुकंपा भगवान जाणता तो विशाला नगरी जाता. परन्तु भगवान् नहीं गये. जिससे उपदेश देके संग्राम मेटवा में भी पाप है. परन्तु दया अनुकंपा नहीं. अब बुद्धिमान विचारो कि प्रथम तो जीतमलजी और भीषमजी के कथन में बड़ा भारी फरक पड़ा कि भीषमजी तो हिंसा करते को उपदेश देने में पाप श्रद्धते थे. और जीतमलजी ने धर्म लिखा. जरूर परस्पर ही अत्यन्त विरुद्ध है तो फिर सिद्धांत से तो अत्यन्त विरुद्ध है ही क्योंकि सिद्धांत का इसके ऊपर मूलपाठ श्री भगवतीजी का लिखा कि जरा साक शंखजी श्रावक के ऊपर दूसरे श्रावक क्रोधभाव लावे. तिसको भी लाभ जाण के परमेश्वर ने उसी वक्त रोका तो बड़ा भारी संग्राम हुआ कि जिसमें १ क्रोड़ ८० लाख मनुष्यों का धमसाण हुआ अतिक्रोध वधा

तिस क्रोध मेटने में लोकों को शांत करने में परमेश्वर धर्म क्यों नहीं माने. अपि तु निश्चय ही माने और नहीं मानते तो श्रीमुख से श्रावकों को क्रोध करते हुए को क्यों रोकते नहीं २ परमेश्वर तो संग्राम रोकने में क्लेश मेटने में उपदेश देने में धर्म श्रद्धते हैं परन्तु पाप नहीं श्रद्धते हैं.

पूर्वपक्ष—जेकर भगवान् धर्म श्रद्धते तो फिर विशाला नगरी में जाके संग्राम करते हुए चेड़ा और कोणिक राजा को क्यों नहीं वर्जे. या संग्राम होते पहिले ही क्यों नहीं मना किये. क्योंकि चेड़ा और कोणीक राजा दोनों भगवान् के भक्त थे. तो फिर भगवान् समझाने को क्यों नहीं गये.

उत्तरपक्ष—हे भाई यह तुम्हारा कहना अत्यन्त अल्पप्रज्ञा का है. क्योंकि जैन सिद्धान्त का थोड़ा साभी ज्ञाता को भी ऐसी शंका नहीं होती है. परन्तु अब उत्तर एकाग्रचित्त करके सुनो कि हे मित्र भगवान् चेड़ा कोणीक का संग्राम मेटने में धर्म जाणते थे. परन्तु भगवान् केवल ज्ञानी होने से ऐसा भी जानते थे कि यह अवश्य भावी मिट नहीं सक्ती है इससे भगवान् नहीं पधारे तथा तुम जैनी नाम धराते हो हम तुमसे पूछते हैं कि संग्राम करने में धर्म हुआ कि पाप.

पूर्वपक्ष-संग्राम में तो एकांत पाप है.

उत्तरपक्ष—जेकर एकान्त पाप होता तो फिर पाप छोड़ाने का उपदेश देने में तो तुम्हारे गुरुजी भी धर्म मानते है कि नहीं.

पूर्वपक्ष—पाप छोड़ने में तो धर्म मानते हैं. परन्तु आगामी काल में पाप करने की मनाई करते हैं.

उत्तरपक्ष-तो भगवान् को जिस दिन से केवल ज्ञान उपजा है तिस दिन से ज्ञान से जानते थे कि अमुक दिन चेड़ा कोणीक के संग्राम होवेगा तो फिर भगवान् ने चेड़ा कोणीक को तारणे वास्ते एक महीना पेस्तर आके ऐसा उपदेश या त्याग क्यों न कराये कि अमुक दिन तुम्हारे हार हाथी के निमित्त से संग्राम होवेगा सो तुम लड़ाई मत करना. वैर क्रोध नहीं वधाना. ऐसा क्यों न कहा.

पूर्वपक्ष-भगवान् ज्ञान में जाणते थे कि अवश्य भावी नहीं टरे. जिससे संग्राम करने का त्याग का उपदेश नहीं दिया मनादि करने को महिने पहिले नहीं आये.

उत्तरपक्ष-तो भाई कहो महीने पहिली संग्राम का त्याग कराने को भगवान् नहीं आये. तो संग्राम के त्याग कराने में धर्म है कि नहीं.

पूर्वपक्ष-धर्म तो है परन्तु निश्चय ज्ञानवान् श्री भगवान् जैसे ज्ञान में करना देखे वैसे करे. क्योंकि हमारे गुरुजी ने भी इसी ढाल की ४३ मी गाथा में लिखा कि (ज्ञानदर्शन चारित्र को किणरे वध तो जाणे उपाय रे. करे अनुकंपा जीवरी. वीर विगर बुलाया जायरे) ४३ ऐसा कहना हमारे गुरुजी का है.

उत्तरपक्ष-तो कहो भाई चेड़ा कोणीक भगवान् के भक्त थे. तो इनको संग्राम के होते एक महीने पहिली आके भगवान् संग्राम करने का त्याग कराते तो ज्ञानदर्शन की वृद्धि होती कि नहीं.

पूर्वपक्ष ज्ञान दर्शन की वृद्धि तो संग्राम के त्याग कराने

फिर घर २ में जीवों को क्यों नहीं बचाने को जावो या बाज़ार में या जंगल में चातुर्मास में ढांढां के पैर नीचे अनेक गजायां मरे उनको सोज २ के इकट्ठे करके क्यों नहीं लावो. जेकर धर्म होवे तो आपको यह काम करना चाहिये.

उत्तरपत्त–हे भाई जीव बचाने में तो साधू को लाभ ही है. परन्तु तुमने कहे वह काम तो साधु का व्यवहार नहीं. सो वह तिससे नहीं कर सक्ते हैं. तिसका हेतु सुनो. प्रथम तो साधू नहीं हनने का उपदेश देना अच्छा समझते हैं परन्तु घर २ में जाके मत हणो इत्यादिक उपदेश घर २ में विस्तार पूर्वक कहने का कल्प नहीं अगर गृहस्थों के घर २ जाके विस्तार पूर्वक उपदेश देवे तो तीर्थंकर की आज्ञा का भंग होवे.

पूर्वपत्त–घर २ में साधू को विस्तार से धर्म कथा कहने की मनाई कहां करी है.

उत्तरपत्त–सूत्र वृहत्कल्प में है सो लिखते हैं ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्रपाठ–नो, कप्पइ, निग्गंथाणवा, अंतरागहंसिवा, जावचउगाहंवा, पंचगाहंवा, आइक्खित्तएवा, विभावित्तएवा, कीट्टित्तएवा, पवेइत्तएवा, नन्नत्थ, एगणाएणवा, एगवागरणेणवा, एगंगाहाएवा, एगसिलोएणवा, सेवियाट्ठिचे, नोचेवणं, अट्ठिचा, इति ॥ २२ ॥

अस्यार्थः–साधु साध्वी को गृहस्थ के घर में विस्तार पूर्वक चार या पांच गाथा का कथन नहीं करना धर्म नहीं सुनाना. किन्तु कोई समय में सुनाना पड़े तो खड़े खड़े एक श्लोक का अर्थ संक्षेप से सुना देवे. सो वह भी खड़े खड़े सुनावे परन्तु

में होती है. परन्तु उस वक्त श्री भगवान् ने अपने ज्ञान में चेड़ा कोणीक के लाभ की फरसना नहीं देखी. जिससे त्याग कराने नहीं आये.

उत्तरपक्ष–तो हे मित्र इसी से ही हम कहते हैं कि भगवान् चेड़ा कोणीक की लड़ाई मेटने में धर्म जानते थे. परन्तु मिटने की फरसना नहीं देखी जिससे भगवान् मेटने को नहीं आये. परन्तु तुम्हारे गुरु भीखमजी जीवदया से द्वेष धार के यह बात क्योंकर लिखदी कि भगवान् ने संग्राम होते पहिले भी उपदेश नहीं दिया. या साधों को उपदेश देने को नहीं भेजे. या आप खुद नहीं गये. क्या तुम्हारे भीखमजी आगम्य काल में क्लेश मिटाने में भी धर्म नहीं मानते थे जो ऐसी अनुचित ढाल जोड़ के लोकों के हृदय से दया उठाने के निमित्त यह चेष्टा करी.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरु भीखमजी तो आवता काल में क्लेश मिटाने में पाप छोड़ाने में धर्म मानते थे क्योंकि क्लेश मिटाने का उपदेश उनकी बनाई हुई जोड़ में बहुत है.

उत्तरपक्ष–हे मित्रो तो तुम सोचो कि पाप मेटने का उनका उपदेश था तो फिर ऐसा क्यों कथन किया कि संग्राम नहीं करने का उपदेश चेड़ा कोणीक को संग्राम करते पहिले भगवान् ने पाप जानके नहीं दिया. हा ! हा ! हा ! तुम्हारे मत की विरुद्धता का कथन कहां तक कह सकें परन्तु हे बुद्धिवानो ज्ञाननेत्र से देख के निर्णय करो पक्षपात में मत पड़ो.

पूर्वपक्ष–आप लोक जीव बचाने से धर्म समझते हो तो

वेत्र के नहीं वृहत्कल्प उद्देशा तीसरा सूत्र २२ मा ॥

तो अब देखो सूत्र में विस्तार से धर्मोपदेशना गृहस्थ के घर में सुनाने की भगवंत की मनाई है. तो धर्मोपदेश सुनाने में तो लाभ ही है. धर्मोपदेशना पाप में नहीं. परन्तु गृहस्थी के घर में ज्यादा देर तक ठहर के धर्मोपदेशना सुनाने में साधू की लोकों में मलनीन होती है. लोक निंदा करे. साधू को गृहस्थ के घर ज्यादा बैठने से दूसरे भिक्षुक की भिक्षा की अंतराय होवे. गृहस्थ की स्त्री से राग उत्पन्न होवे. इत्यादिक अवगुण की उत्पत्ति होवे. जिससे साधू को गृहस्थ का घर में विस्तार से धर्मोपदेशना नहीं देनी कल्पे. ऐसे ही साधूजी जीव बचाने में धर्म समझते हैं परन्तु घर घर से जीवों को चुन २ के लावें से साधू की मलीन उडे. और गृहस्थ लोकों में साधू की निंदा होवे जिससे जीव चुन २ के नहीं लावें गृहस्थ के घर उपदेश देनेवत्.

पूर्वपक्ष-गृहस्थ के घर में तो एक श्लोक का उपदेश साधू खड़ा थका कह सक्ता है.

उत्तरपक्ष-हां ऐसे तो गृहस्थ के घर में साधू गोचरी आदिक गयां थकां गृहस्थ को जीव बचाने का भी कह सकें हैं. हरेक भी बचावणे लायक होय तो बचाय लेते हैं.

पूर्वपक्ष-कोई गृहस्थ त्याग पचक्खाण करने को साधू को बुलावें तो साधू जावे कि नहीं.

उत्तरपक्ष जेकर कोई गृहस्थ साधू के समीप आने समर्थ नहीं होवे तो त्याग करावें को जाय

पूर्वपक्ष कोई गृहस्थ कहे कि ह महाराज अमुक ठिकाने

जीव मरते हैं आप जाके बचावो. तो जावे कि नहीं जावे.

उत्तरपक्ष–हां जो जीव गृहस्थ से बचते नहीं होवें और साधू के ही उपदेश से बचते होवें तो अवश्य बचाने को जावे.

पूर्वपक्ष–कोई आके कहे कि अमुक ठिकाने ईलियां बिखरी हुई पड़ी हैं. आप जाके बचावो तो जावे कि नहीं.

उत्तरपक्ष–ईलियांदिक तो गृहस्थ भी बचा सक्ता है तो फिर साधू की क्या जरुरत है. क्या ईलियां बचाने में उपदेश देना पड़े जो साधू को बुलाने आवे. ऐसे छोटे जीव को तो गृहस्थ भी बचा सक्ता है साधू को बुलाने के लिये क्यों आवे. हां अलबत्तां कोई मोटा पंचेन्द्री जीव गृहस्थ मारता होवे. और गृहस्थी उस जीव को छोड़ाने समर्थ नहीं होवे. और साधू के उपदेशादि करके छोडने को संभव होवे तो जरूर जाके छोड़ावे परन्तु जो काम गृहस्थ सहज से कर सके उसमें साधू को जाने की जरूरत क्या है.

पूर्वपक्ष–कोई जगह लटधनोरया प्रमुख बहुत जीवों का गंज है उसको कोई गृहस्थ ने नहीं देखा तहां साधू ने देखा तो उस जीवां का गंजकु खोज के पात्रे प्रमुख में भर भर करके एकांत छायादिक में छोड़े कि नहीं.

उत्तरपक्ष–हे भाई जीवों की करुणा में तो धर्म है परन्तु साधू का व्यवहार खोजे नहीं इस वास्ते नहीं खोजे. सो ऐसे ही हम तुमसे पूछते हैं कि तुम्हारे गुरुजी धर्म सुनाने में धर्म समझते हैं तो दो चार पंथ मिले तहां खड़े हो के ईसाई पादड़ियों की नाई उपदेश गली गली में चौक चौक में क्यों नहीं सुनावे.

पूर्वपक्ष–साधू को तो योग्य स्थान में बैठ के उपदेश सुनाना

योग्य है. परन्तु गली गली में चौक चौक में ईसाई पादरियों की तरह नहीं सुनाते हैं.

उत्तरपक्ष-क्यों नहीं सुनाते धर्म का काम है. इससे तुम्हारे जितने साधू होय उतने सर्व गली गली में सुनावे तो वहुत लाभ होवे कि नहीं.

पूर्वपक्ष-व्याख्यान सुनाने में तो लाभ ही होता है परन्तु ऐसे गली गली चौक चौक में खड़े होके सुनाना साधू का व्यवहार नहीं शोभे.

उत्तरपक्ष-बस भाई इसी तरह से समझ लेवो कि जीवदया में साधू धर्म समझते हैं. मौका होवे तो बचाने का उपदेश देते हैं. स्वयं बचाते भी हैं परन्तु झोलियां का गंज नहीं खोजे इसका कारण तो यह है कि जैसे व्याख्यान भी गली गली में सुनाने का व्यवहार नहीं शोभे ऐसे यहां भी समझ लेवो. जीव दया से छोड़ना अच्छा है. और करुणाभाव रखना चाहिये जिससे आत्मा का कल्याण होवे. प्राणी की अनुकंपा से साता वेदनी का बंधना सूत्र भगवतीजी का पाठ से है. सो पाठ लिखते हैं सुनिये.

सूत्र-कहणं, भंते, जीवा, साया, वयणिज्जा, कम्मा, कज्जई, गो, पाणाणु कंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए, इति ॥

अब देखो यहां भी कहा कि प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से साता वेदनी बंधने का कहा. तथा सूत्र ज्ञाताजी का पहिला अध्ययन में मेघकुमार ने हस्ती का भव में प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकंपा करने से संसार को

पड़त करा.

पूर्वपक्ष–मेघकुमार ने तो हस्ति के भव में एक ससले की दया पाली जिससे संसार पड़त करा. परन्तु दूसरे मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव से संसार पडत नहीं करा.

उत्तरपक्ष–हे भाई ससले को बचाने से तुमने संसार पड़त करना रूप फल मान लिया तो जीव बचाने से लाभ तो तुम्हारे कहने से ही सिद्ध हुवा. और ससले के सिवाय जो एक योजन का मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव की करुणा से मेघकुमार का जीव ने संसार पड़त नहीं करा यह कहना भी तुम्हारा अपने स्वच्छंदपने का है क्योंकि सूत्र का अभिप्राय तो ऐसा है कि ससले के कारण से सर्व जीवों पर दया करी. ससला तो मुख्यता में है परन्तु गौणता में तो सर्व जीव मंडल के लेना ऐसा संभव होता है.

पूर्वपक्ष–ऐसा सूत्र ज्ञाताजी में कहां लेख है.

उत्तरपक्ष–हां भाई ऐसा ही सूत्र ज्ञाताजी में खुलासा लेख है. सो ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्र–तंससयं. अणुपविट्ठं. पासइ २ त्ता. पाणाणुकंपयाए. भूयाणुकंपयाए. सत्ताणु कंपयाए. सेपाए. अंतरा. चेव. संधारिए. णोचेवणं. णिक्खित्ते. तएणं. तुमं. मेहा. ताए. पाणाणु. कंपयाए. जावसत्ताणुकंपयाए. संसार परित्तीकए.—इति.

अस्यार्थः–ते ससये पेठ थर्ते देखे. देखी ने प्राणी बेइन्द्रियादिक जीवनी दया थी. सत्व पृथ्वी. पाणी. अग्नि वायु तेहनी दया थकी अंतरवीचाले निश्चे उंचो निमन पग राखे. चेव निश्चय धरती पें धमनूके नहीं. विचार पछी तू हे मेघ ने

माणीनी अनुकंपा दया थकी जाव सत्व पृथिव्यादिक नी दया थकी शशा जीवनी दयाये करी संसारनो परीत कीधो. इति सूत्रार्थः.

अब देखो प्रकट पाठ में ऐसा कहा कि (पाणाणु कंपीए) परन्तु ऐसा न कहा कि (सस अनुकंपीए) जेकर केवल ससले की ही दया का कथन होता तो सूत्रकार (सस अनुकंपीए) ऐसा ही क्यों नहीं कह देते. परन्तु नहीं ससले के कारण से समस्त जीवों पर करुणा आई. जिससे संसार पड़त किया तथा जहां एकही जीव की करुणा करी. वहां पाठ भी एकही कहा है. जैसे सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वा में जहां भगवान् ने गोशाले को बचाया है. तहां ऐसा पाठ है.

सूत्र-तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए, इति ॥

यह देखो श्री भगवान् ने एक गोशाले की ही दया करी तो एक गोशाले का हीज नाम कहा. तैसे ही जो एक ससले की ही दया मेघकुमार ने हस्ती के भव में करी होती तो ऐसा पाप पाठ होता कि (सस्स, अणुकंप, ट्ठयाए) परन्तु ऐसा पाठ सूत्र में नहीं. सूत्र में तो (पाणाणु, कंपयाए) इत्यादि पाठ है. इससे ससले का निमित्त से घणे जीवों पर करुणा आई ऐसा संभव होता है. इति.

अब देखो तुमतो कहते हो कि जीवणो वंछे तो एकांतपाप होवे. और भगवंत तो ठाम ठाम सूत्र में जीव बचाने से संसार का पड़त करना आदिक महा लाभ कहा है.

पूर्वपक्ष-जीव का दया रूप जीवणा वंछे सो धर्म में है ऐसा

माणीनी अनुकंपा दया थकी जाव सत्व पृथिव्यादिक नी दया थकी शश जीवनी दयाये करी संसारनो परीत कीधो. इति सूत्रार्थः.

अब देखो प्रकट पाठ में ऐसा कहा कि (पाणाणु कंपीए) परन्तु ऐसा न कहा कि (सस अनुकंपीए) जेकर केवल ससले की ही दया का कथन होता तो सूत्रकार (सस अनुकंपीए) ऐसा ही क्यों नहीं कह देते. परन्तु नहीं ससले के कारण से समस्त जीवों पर करुणा आई. जिससे संसार पड़त किया तथा जहां एकही जीव की करुणा करी. वहां पाठ भी एकही कहा है. जैसे सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वा में जहां भगवान् ने गोशाले को बचाया है. तहां ऐसा पाठ है.

सूत्र–तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए, इति ॥

यह देखो श्री भगवान् ने एक गोशाले की ही दया करी तो एक गोशाले का हीज नाम कहा. तैसे ही जो एक ससले की ही दया मेघकुमार ने हस्ती के भव में करी होती तो ऐसा पाप पाठ होता कि (ससस, अणुकंप, ट्ठयाए) परन्तु ऐसा पाठ सूत्र में नहीं. सूत्र में तो (पाणाणु, कंपयाए) इत्यादि पाठ है. इससे ससले का निमित्त से घणे जीवों पर करुणा आई ऐसा संभव होता है. इति.

अब देखो तुमतो कहते हो कि जीवणो वंछे तो एकांतपाप होवे. और भगवंत तो ठाम ठाम सूत्र में जीव बचाने से संसार का पड़त करना आदिक महा लाभ कहा है.

पूर्वपक्ष–जीव का दया रूप जीवणा वंछे सो धर्म में है ऐसा

कहा परंतु (परिग्गह, रक्खण, ठयाए) पाठ नहीं कहा. यानी परिग्रह की विरती रूप व्रत की रक्षा का पाठ है. परंतु परिग्रह को राखने का पाठ नहीं. पहिला संमरद्वार का और पांचवां संमरद्वार का सरीसा पाठ नहीं. तो हे भाई तुम अच्छी तरह से विचार लेवो कि पहिला संमरद्वार का और पंचमा संमरद्वार का पाठ में यह मत्यक्ष फेर है परंतु एक सरीसा नहीं है.

पूर्वपक्ष–जैसे यहां भी परिग्रह की निवृत्ति रूप व्रत को राखने का है तैसेही पहिले संमरद्वार में माणातिपात वेरमण. उसकी रक्षा यानी हिंसा से निवृत्तरूप व्रत की रक्षा करने का कथन समझ लेना.

उत्तरपक्ष–हे अल्पज्ञ मित्र अनंत ज्ञानी श्रीमहावीर प्रभुजी का श्रीमुख का कथन से व्यतिरिक्त वर्तने वाली तुम्हारी स्वच्छंदपणा की कथनी को कौन बुद्धिमान पुरुष मानेगा. अपितु संसार समुद्र से डरने वाला तो परमेश्वर के हीज वचनों को मानेगा क्योंकि श्रीभगवान ने तो सर्व जगत के जीवों की रक्षा करनी फरमाई है (सव्व, जग, जीव, रक्खण, ठयाए,) ऐसा पाठ है कि सर्व जीवों की रक्षा निमित्ते परमेश्वर ने सूत्र रचे हैं परन्तु केवल यूं हीज नहीं कहा कि माणातिपात वेरमण की रक्षा वास्ते सूत्र कहे तो फेर तुम जीव दया से द्वेष क्यों रखते हो. परमेश्वर ने तो जीवरक्षा ठाम ठाम कही है. और जीवना वंछे विदून जीव रक्षा होनी ही नहीं. कारण विना कार्य नहीं होता है जैसे मृत्तिका विना घट भी नहीं होता है. तैसेही जीवना वंछे विना जीवरक्षा कभी नहीं होती है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो कहते हैं कि परिग्रह रक्षा करने

से भी परिग्रहा अनर्थ करे हैं. वैसेही असंयती जीव की रक्षा करने से भी असंजती जीव अनर्थ करते हैं इसलिये जीवरक्षा और परिग्रह रक्षा सरीसी कहते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई यह कहना अत्यन्त विरुद्ध है. क्योंकि प्रथम तो हमने सूत्र का पाठ दिखलाया है कि (सव्व, जग, जीव, रक्खण, दयाए,) ऐसा पाठ तो सूत्र में है. परंतु (परीग्गह, रक्खण, दयाए,) ऐसा पाठ कहां भी नहीं है. जेकर (परीग्गह, रक्खण, दयाए,) ऐसा पाठ को भी सिद्धांत में बता देवो तो हम तुमको धन्यवाद देवें. और तुमको ठीक समझें परंतु सिद्धांत में तो कहां पि नहीं है तो परिग्रह सरीसी जीवरक्षा भी कहणी मिथ्या है. क्योंकि परिग्रह की रक्षा तो सूत्र में कही नहीं. और जीवरक्षा तो ठाम ठाम सूत्र में कहीं है और फिर हम तुम से पूछते हैं कि एक भाई ने तो कीड़ी पर पग नहीं दिया. और एक जणे ने पैसे पर पग नहीं दिया. तो कहो नफा किसको हुवा.

पूर्वपक्ष–नफा तो जीव पै पग नहीं देनेवाले को हुवा परंतु पैसे पर पग नहीं देने वाले को क्या नफा हुवा. क्योंकि जीव पै पग नहीं देणे से तो प्रत्यक्ष करुणा आई. जिससे करुणा का नफा हुवा. परंतु पैसे पर पग नहीं देने से तो करुणा होवे ही नहीं और सूत्र में भी (पाखणु, कंपीए) कहा. परन्तु परिग्गहाणु, कंपीए नहीं कहा. और मेघकुमार को भी पाखणु, कंपीए से संसार पड़त करने का कहा. परन्तु ऐसा कहां भी कथन नहीं कि पैसा आदि पै पग नहीं देने से संसार पड़त कोई ने भी करा.

उत्तरपक्ष—तो फिर हे भाई तुम्हारे गुरुजी का कहना ऐसा था कि जैसे परिग्रह की रक्षा वैसेही जीव की रक्षा यह कहना अनंत तीर्थंकर केवली साधु साध्वी की श्रद्धा से विपरीत श्रद्धा का हुवा.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो ऐसा दृष्टांत देते है कि जैसे कोई चोर चोरी करता हुवा को साधु उपदेश देवे तो धन राखण को नहीं देवे. परंतु चोर को तारणे को देवे. तथा कोई कसाई बकरा मारे तो बकरे बचाने को साधु उपदेश नहीं देवे परन्तु कसाई को तारणे वास्ते उपदेश देवे क्योंकि धन बचाने को उपदेश देवे तो धन से संसारी पाप करे तो साधु को उसकी अनुमोदना रूप पाप लगे तथा बकरे बचाने को उपदेश देवे तो बकरा बचे तो अनेक हरी खावे. कचा पाणी पीवे इत्यादिक बकरा पाप करे तिसकी अनुमोदना रूप पाप बकरे को बचाने वाले को भी आवे. इस वास्ते जीव बचाने में हमारे गुरुजी पाप कहते है.

उत्तरपक्ष हे भाई वास्तव में तुम्हारे गुरु भीषमजी और जीतमलजी ने तुम्हारे ग्रंथों में ऐसा दृष्टांत भोले लोकों को निर्दय करने को कहा है तथा तुम्हारे गुरु ऐसे विश्राम के पाने तथा कंकरमेल के ओलों को भरमाते है और एकान्त मिथ्या कहते है सो ध्यान देके सुनो कि प्रथम तो यह दृष्टान्तही तुम्हारे गुरु ने अपनी श्रद्धा से ही विपरीत लोकों को भरमाणे के लिये कहा है. क्योंकि तुम्हारे गुरु की श्रद्धा तो वर्तमान काल में जीव मारता हुवा को चोरी करते हुए को उपदेश देने से पाप यानी धर्माई करने में पाप कर्म लगना कहते है इसका कथन

हमने ऊपर तुम्हारे गुरुजी की ढाल्ों में ही लिखा है. क्योंकि
जेकर कसाई को मारते हुए को तारणे में उपदेश देने में धर्म
समझते हो तो श्रावक को तारणे निमित्त उसके पग के नीचे
जीव मरावे उसमें पाप क्यों कहा. या चेड़ा कोणीक राजा का
संग्राम भगवान ने पाप जानके नहीं मिटाया ऐसा क्यों कहा.
तो निश्चय हुआ कि तुम्हारी श्रद्धा तो बकरे मारते हुए कसाई
को उपदेश देने की है नहीं तो फिर यह दृष्टांत का देना चित्राम
आदि का दिखाना फक्त लोकों को बहकाने के लिये ही. इतना
तथापि हम इसका उत्तर देते हैं सुनिये कि बकरे को बचाने
का उपदेश तो प्रत्यक्ष करुणा में ही है और कसाई भी तिरता
है. इसलिये साधु कसाई को तारणे को और बकरे को बचाने
को उपदेश देते हैं जैसे कि कोई शीलवती सती का कोई दुष्ट
पुरुष शील खंडन कर रहा है. तो साधु उस शीलवती सती
का शील बचाते है और दुष्ट पुरुष को भी पाप से बचाते है
वैसे ही जीवदया में समझ लेवो और परिग्रह की रक्षा में तो
करुणा का कारण नहीं तो फिर अनहुनी बातों का कथन क्यों
करना कि परिग्रह की रक्षा वास्ते उपदेश नहीं देना फिर यह
भी प्रत्यक्ष दीखता है कि जीव बचाने का उपदेश देवें उस
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उत्तरपक्ष तो फिर हे भाई तुम्हारे गुरुजी का कहना ऐसा था कि जैसे परिग्रह की रक्षा वैसेही जीव की रक्षा यह कहना अनंत तीर्थंकर केवली साधु साध्वी की श्रद्धा से विपरीत श्रद्धा का हुआ.

पूर्वपक्ष हमारे गुरुजी तो ऐसा दृष्टान्त देते हैं कि जैसे कोई चोर चोरी करता हुआ तो साधु उपदेश देवे तो धन रखाने को नहीं देवे परन्तु चोर को तारने को देवे. तथा कोई कसाई बकरा मारे तो बकरे बचाने को साधु उपदेश नहीं देवे परन्तु कसाई का तारने वास्ते उपदेश देवे क्योंकि धन बचाने का उपदेश देवे तो धन से संसारी पाप करे तो साधु को उसकी अनुमोदना रूप पाप लगे तथा बकरे बचाने का उपदेश देवे तो बकरा बचे तो अनेक हरी खावे. कच्चा पानी पीवे इत्यादिक बकरा पाप करे जिसकी अनुमोदना रूप पाप बकरे को बचाने वाले को भी लागे इस वास्ते जीव बचाने में हमारे गुरुजी पाप कहते हैं

उत्तरपक्ष हे भाई शास्त्र में तुम्हारे गुरु भीखमजी और जीतमलजी ने कुहेतु ग्रन्थ में ऐसा दृष्टान्त भोले लोकों को लिखकर [illegible] तुम्हारे गुरु पंथ निकाल के पीछे तथा [illegible] है और एकान्त मिथ्या [illegible] तुम्हारे गुरु [illegible] अनन्त के लिये [illegible] काल में [illegible] करते हैं उसका उत्तर

उत्तरपक्ष—हे भाई यह बात असत्य कही. क्योंकि जीव बचाने का उपदेश देनेवाला तो जीव की करुणा करने वाला है. परन्तु उस जीव को पाप कराने का कामी नहीं. जैसे कि कोई पुरुष ऊपर से छटक के पड़ता है. और कोई पुरुष ने झेल लिया. पड़ने वाला पुरुष बच गया. वह पुरुष चोरी आदि पाप करे तो सजा चोरी करने वाला पावे. परन्तु बचाने वाला नहीं पावे. बचाने वाले ने तो अपना धर्मरूप लाभ वास्ते करुणा करी तो फल ही हुवा. जैसे मेघकुमारजी ने जीवों की करुणा करी तो उनको तो धर्म का फल ही हुवा. और जीव पाप करेगा तो वह भुगतेगा. परन्तु बचाने वाले को पाप नहीं. तथा जेकर बचाने वाले को पाप लगे तो मेघकुमार हाथी का भव में चार कोस का मंडल बनाया था. वहां अनेक सिंह सियाल मृगादिक जंगल के जीव अग्नि के दव से बच गए. और जीव जीवते रह गये. तो फिर बचाने का फल तो परमेश्वर ने बताया. परन्तु जो जीव जीवते रहे उनका पाप हाथी को लगता होता तो फिर भगवान् पाप क्यों नहीं बता देते. सो तो सूत्र में कहीं भी नहीं कहा. सो निश्चय जानो कि तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध नहीं क्योंकि जीव बचाने में पाप नहीं बल्कि दया धर्म है जीव की रक्षा करनी इसी का नाम दया सूत्र में कहा है और इसी [illegible] लिखा है [illegible] [illegible] [illegible]

उत्तरपक्ष–हे भाई यह बात असत्य कही. क्योंकि जीव बचाने का उपदेश देनेवाला तो जीव की करुणा करने वाला है. परन्तु उस जीव को पाप कराने का कामी नहीं. जैसे कि कोई पुरुष ऊपर से छटक के पड़ता है. और कोई पुरुष ने झेल लिया. पड़ने वाला पुरुष बच गया. वह पुरुष चोरी आदि पाप करे तो सजा चोरी करने वाला पावे. परन्तु बचाने वाला नहीं पावे. बचाने वाले ने तो अपना धर्मरूप लाभ वास्ते करुणा करी सो फल ही हुवा. जैसे मेघकुमारजी ने जीवों की करुणा करी तो उनको तो धर्म का फल ही हुवा. और जीव पाप करेगा तो वह भुक्तेगा. परन्तु बचाने वाले को पाप नहीं. तथा जेकर बचाने वाले को पाप लगे तो मेघकुमार हाथी का भव में चार कोश का मंडल बनाया था. वहां अनेक सिंह सियाल मृगादिक जंगल के जीव अग्नि के दव से बच गए. और जीव जीवते रह गये. तो फिर बचाने का फल तो परमेश्वर ने बताया. परन्तु जो जीव जीवते रहे उनका पाप हाथी को लगा होता तो फिर भगवान् पाप क्यों नहीं बता देते. सो तो सूत्र में कहीं भी नहीं कहा. तो निश्चय जानो कि तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध नहीं क्योंकि जीव बचाने में पाप नहीं बल्कि दया धर्म है जीव की रक्षा करणी उसी का नाम दया सूत्र में कहा है और हमने प्रश्न व्याकरण का पाठ टीका सहित ऊपर लिखा है. तथा फिर भी तुमको याददास्ती के लिये लिखते हैं सो याद रखना दया [illegible] यह साठ नाम पहिले संवरद्वार के हैं इनमें का [illegible] मा नाम है. इसकी टीका [illegible] दया देहि रक्षा [illegible] दया कहिये देह के धारने वाले देही यानी जीव जिनकी रक्षा

करना उसको दया कहते हैं. इति. अब देखो जीवरक्षा करने को ही दया कही तो फिर तुम दया के द्वेषी होके जीवदया में, जीव बचाने में, जीवरक्षा में पाप क्यों कहते हो.

पूर्वपक्ष—तुमने सिद्धांत के पाठ दिखाये हो परन्तु हमारे गुरुजी तो बहुत दृष्टांत देके कहते हैं कि मरती गाय को बचाई अब वह गाय पानी पीने को गई वहां पानी में बहुत कीड़े थे गाय पानी पी गई. या जीव सहित अन्न खा गई. अब देखो के तो एक गाय मरती. अब गाय को बचाई तो वह गाय जहां तक जीवे तहां तक अनेक जीवों को मारेगी. जिससे उस गाय का पाप गाय बचाने वाले को भी लगे. इसमें जीव बचाने में बड़ा पाप कहते हैं वह हमारी शंका कैसे दूर होवे.

उत्तरपक्ष—भाई तुम्हारे गुरुजी ने जरूर ऐसे दृष्टांत कथन करके और चित्र के पाने में कि जिसमें गाय का आकार जीवों का कुंडे का आकार बना के लोगों को बना के ही लोगों को निर्दयी करे हैं परन्तु एकाग्र चित्त करके इसका समाधान सुनो कि प्रथम तो गाय बचाने वाले की अपेक्षा करुणा दया करने की है. परन्तु गाय को पाप कराने की नहीं. तथापि तुम्हारे गुरुजी जीव बचावे उसमें ही बचाने वाले को पाप लगना बतावे तो उनसे यह पूछना है कि कोई कसाई बकरे आदि पंचेन्द्री जीवों का मारनेवाला था उसको तुम्हारे गुरुजी ने उपदेश दिया. जिस से उस कसाई ने जीवहिंसा छोड़ दी और तुम्हारे गुरु का भक्त हो गया. अब के तो वह कसाई जीव मारके नरक में जाता और अब तुम्हारे गुरुजी ने हिंसा का त्याग उसको कराने से वह कसाई. तुम्हारा श्रद्धा [illegible]

बडा ऋद्धिवान देव हुवा अनेक हजारों कलश पानी ढोल के अभिषेक स्नान किया हजारों देवांगना से भोग विलास किया. अनेक पल्योपम सागरोपम लगे. यानी असंख्य वर्षों तक देवलोक में क्रीड़ा विनोद हास्य आनंद जल क्रीड़ादिक करके अनेक त्रस स्थावर जीव को वेदना उपजावे पाप करे तो देवता का पाप तुम्हारे गुरुजी को लगे कि देवता पाप करे उसको लगे जेकर कहो कि गुरुजी को लगे तब तो इस पंचम काल के जन्मे आराधिक साधु तो सर्व देवलोक में ही जाते हैं या. आराधिक श्रावक तो देवलोक में ही जाते हैं तो फिर जो कोई उपदेश देके साधु श्रावक को करे तो फिर वह उपदेश देने वाले महापाप क्यों ठहरे. क्योंकि इस मनुष्य लोक का थोड़े काल का काम भोग छोड़ाया. और तुम्हारी श्रद्धापूर्वक अनेक असंख्य वर्षों के देवलोक के काम भोग में शामिल करने से तुम्हारी श्रद्धानुसार उपदेश देनेवाले को तुम्हारे गुरु हैं वह सब महापाप करके डूब जावेंगे.

दूषक-हमारे गुरुजी तो उपदेश देवे तो तारने के वास्ते देवे परन्तु देवलोक के [illegible] बैठाने वास्ते नहीं देवे. इसने हमारे गुरुजी का अभिप्राय यानी मन देवलोक में भेजने का है नहीं तो उनको पाप कैसे लगे. जिससे हमारे गुरुजी को [illegible] का धर्म है परन्तु देवलोक का पाप हमारे गुरुजी को नहीं.

[illegible]

उत्तरपक्ष–वैसेही जीव बचाने में धर्म है इस वास्ते अवश्य जीव को बचाना चाहिये जिससे श्रावक भी उपदेश देते हैं अनेक राजसभा में प्रत्यक्ष दृष्टांत से प्रतिबोध करते हैं जैसे जितशत्रु राजा को सुबुद्धि प्रधान ने खाई के पानी का दृष्टांत देके प्रतिबोधित किया. सूत्र ज्ञाताजी का १२ मा अध्ययन में कहा है. वैसेही अनेक उपाय से जीवों को भी बचावे और साधूजी उपदेश देते हैं परन्तु जैसे सुबुद्धि प्रधान ने जल का प्रत्यक्ष दृष्टांत दिखलाया वैसा नहीं दिखा सकते हैं परन्तु योग भूमि में उपदेश अवसर देख करके देते हैं वैसेही जहां योग देखते हैं वहां साधू जीव भी बचाने का उपाय अवश्य करते हैं.

पूर्वपक्ष–ऐसे जीव बचाने में धर्म होवे तो सकेन्द्रीजी महाराज बड़े सामर्थ हैं जो धारे तो सर्व मनुष्य लोक के जीवों को कसाई प्रमुख से हर उपाय से बचा सक्ते हैं तो फिर वह ऐसा धर्म का काम क्यों नहीं करे.

उत्तरपक्ष–हे भाई जीव का बचाना तो धर्म का काम है परन्तु सकेन्द्रीजी तुम्हारे सरीसे तुच्छ बुद्धिमान् नहीं है. किन्तु तीन ज्ञान करके सहित है सो लोक की स्थिति होनहार जैसा जानते हैं वैसा करते हैं. परन्तु खैर जीवदया से तो तुम्हारा द्वेष है. परन्तु तुम लोग तेरेपंथी का धर्म बढ़ाने में श्रावक करने में धर्म मानते हो कि नहीं.

पूर्वपक्ष–हां हम बड़ा उपकार धर्म मानते हैं कि जो कोई तेरेपन्थी हो जावे तो हम उसकी अच्छी तरह से दल्लाली करते हैं.

उत्तरपक्ष–तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तो तेरेपंथी

उत्तरपक्ष-हे भाई बहुत से महापुरुषों ने किया है. जिन-का अधिकार सिद्धांतों में साफ़ खुलासा लिखा है. जिनका वर्णन श्री नेमीनाथजी के पशु के छोड़ने का हमने ऊपर सि-द्धांत टीका सहित लिखा है. तथा एक और भी यहां हम खुलासा साक्षी लिखते हैं कि सूत्र उपासक दशा का अध्ययन १० मा में श्रेणिक राजा ने पड़हा बजाया. यानी ढंढी फिराई कि कोई जीव को मारो मत वह पाठ लिखते हैं एक चित्त से श्रवण करो.

सूत्र—तेणं, रायगिहे, णयरे, अण्णया, कयाइ अमाघाए, घुट्टयावि, होत्था, इति ॥

अस्यार्थः-तिवारे राजगृही नगर ने विषे एक वार स्थारने विषे एहवो प्रकार वर्ताव्यो श्रेणिक राजा कोई जीवने हिंसा सो मती ऐसो हुक्म हार करावे. इति सूत्रार्थः.

अस्य टीका अमाघातो रूढ़ शब्दत्वात् अमारिनिर्घोषः ॥

टीकार्थः-अमाघात रूढ़ी शब्द है जिनसे इसका अर्थ जीव को मत मारो ऐसी अमारी बजाई ॥

कोई जीव मत मारो ऐसा हुक्म हुआ करावे. देखो भाई यह प्रत्यक्ष सूत्र का पाठ है कि राजा श्रेणिक ने जीव नहीं मारने का ढंढेरा फिराया क्योंकि राजा श्रेणिक सम्यग्दृष्टि श्री वीर भ-गवान का परम भक्त था सो इसने एसी [illegible] के सर्व प्रकार के पंचेन्द्रियादि जीव का [illegible] क्योंकि अमाघात नाम जीव [illegible] [illegible] [illegible] का बन्ध [illegible] ।

पूर्वपक्ष–अमारी नाम मरते जीव को छोड़ाने का कहां कहा है.

उत्तरपक्ष–प्रथम तो यहां ही सूत्र अर्थ टीका में कहा है कि राजा ने मरते जीव को अमारी कराई. यानी जीव को मत मारो ऐसा ढंढेरा पिटाया. तथा फिर सूत्र प्रश्न व्याकरण के पहिला संमरद्वार में भी कहा है. सो हमने ऊपर तो लिखा है परन्तु यहां फिर लिखते हैं (अमाघाश्रो) ५४ अस्यार्थः (अमारी राखवा नेमिनाथ नी पेरे. देखो यहां भी कहा कि नेमीनाथ की पेरे अमारी वर्तावे. यानी मरते जीव को छोड़ावे उसका नाम अमारी है. ए दोनों सूत्रों का एकसा पाठ है और अर्थ का आशय भी एकसा ही है क्योंकि जैसे नेमीनाथजी ने जीव छोड़ाये वैसे ही श्रेणिक ने ढंढेरा फेरा के जीवों को बचाये तो है भाई तुम जीव बचाने में द्वेष क्यों कर नहीं छोड़ते हो.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो कहते हैं कि ढंढेरा पिटाया तिसमें भगवान् ने धर्म नहीं कहा. सराया भी नहीं. इससे यह तो कोई राजनीति का काम है. जिसकी हमारे गुरुजी भीषमजी ने अनु- कंपा की ढाल पंचमी गाथा.

(सेणिक राय पड़हो । फेरियोये तो जाणो हो मोटाराजां री रीत. भगवंत न सरायो तेहने तो किम आवे तिणरी मतीत. भ. ३७ पड़हो फेरयो हणो मती. इनरी छत्रो सूत्र में बात. कोई धर्म कहे सेणक तणो. तेतो बोले छे चोड़े झूंठ मिथ्यात्. भ. ३८ ॥) इत्यादिक कह के यह बात हमारे गले उतारते हैं कि श्रेणिक ने जीव छोड़ाया सो धर्म मे नहीं.

उत्तरपक्ष-तुम कहते हो वैसे ही तुम्हारे गुरुजी कहते हैं. सिद्धांत के वचनों को ठेप लगा के बोलते हैं सो एकांत विरुद्ध है. क्योंकि प्रश्न व्याकरण के पहिले संमरद्वार में कहा कि—(अमायाओ) अमरी राखवा नेमिनाथ नी परे. ऐसा लेख प्रश्न व्याकरण में है. और वहां प्रश्न व्याकरण में भी इस कार्य का फल भी चतुर्गति संसार तिरणे का कहा है. और वैसे ही राजा श्रेणिक ने भी (अमायाए, घुट्टयावि, होत्था,) ऐसा कहा है. अब देखो प्रश्न व्याकरण में (अमायाओ) यानी अमरी वर्तानें से चतुर्गति संसार का तिरणा कहा और उसी प्रमाणे राजा श्रेणिक ने अमारी का ढंढेरा पिटाया. तो फिर तुम्हारे गुरूजी का कहना असत्य है कि नहीं. जो कहते हैं कि श्रेणिक को धर्म नहीं हुवा. हे भाई गुरुजी का कथन तो देखो कि प्रश्न व्याकरण का (अमायाओ) पाठ और उपासक दशा का (अमाया) पाठ दोनों सरीसे हैं. और दोनों का अर्थ भी सरीसा है कि जैसे नेमिनाथजी ने जीव बचाये. वैसे ही श्रेणिक ने जीव बचाये. तो फिर तुम्हारे गुरुजी प्रश्न व्याकरण का पाठ तो निरवद्य दया में कहते हैं. और श्रेणिक का (अमाया) पाठ को सावद्य दया में कैसे कहते हैं.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी रेणा देवी की अनुकंपा की साक्षी देते हैं.

उत्तरपक्ष-हे भाई रेणा देवी का कथन में भी अनुकंपा का पाठ नहीं. वहां तो (समुपन, कलुण, भावे) ऐसा पाठ है सो मोह विकार का है. सो हम पहिले कह चुके हैं परन्तु हम तो अनुकंपा की या कोलुण वडिया की साक्षी का पाठ नहीं पूछने

हैं हमतो (श्रमाघा श्रो) ऐसा पाठ कोई मोहराग में या सांसारिक वस्तु का कथन में किसी सूत्र में आया होवे तो बतावो. याद रखो किसी सूत्र में कोई जगह ऐसा पाठ नहीं है. फक्त परमेश्वर की आज्ञा दया का प्रयोजन रूप काम है, वहां ही (श्रमाघा श्रो) शब्द आया है. और उसी माफिक कार्य को राजा श्रेणिक ने किया है. तो जाणो कि भगवंत ने तो सराया ही है. श्रमाघा श्रो कार्य अमारी करणे की तीर्थंकर की आज्ञा है. और वोही राजा श्रेणिक ने करी है तो अमरी का कार्य तीर्थंकर की आज्ञा में है तो राजा को लाभ हुवा. यह सूत्र से ही खुलासा है तो तुम्हारे गुरुजी का दया पे द्वेष का कथन सत्य नहीं. किन्तु सूत्र का प्रमाण सत्य है. हम ऐसेही मानते हैं तुम्हारी आत्मा का कल्याण चाहो तो तुम भी ऐसा ही कार्य करो जिससे संसार से तिरो.

पूर्वपक्ष–जेकर धर्म का कार्य था तो श्री भगवान् ने ऐसा क्यों नहीं कहा कि श्रेणिक तैंने अच्छा काम किया. या गणधरों ने सूत्र में क्यों नहीं खोल दिया. कि श्रेणिक का जीवहिंसा का रोकणा धर्म में है.

उत्तरपक्ष–हे भाई सूत्र मे तो (श्रमाघाओ) शब्द कहा. जहां से ही दया का अर्थ धर्म मे हो ही चुका. परन्तु दया की श्रद्धा उठाने से तुमको मालूम नहीं पड़ता है. जैसे कि अमृत कहा तो मीठा हो ही चुका तैसे ही (श्रमाघाओ) कहा तो धर्म में होही चुका और सूत्र में कई जगह क्रिया और फल दोनों का वर्णन होता है. और किसी जगह क्रिया का ही वर्णन होता है. परन्तु जैसी क्रिया वैसा फल समझ लेना सो ही हम दिखाते

है कि इसी राजा श्रेणिक ने सूत्र दशा श्रुतस्कंध के अध्ययन नवमे में ऐसा ढंढेरा पिटाया कि जिसकोही के राजगृह नगर में फासुक मकान (उपासरा) पाट पाटला. या डाभादिक के संथारे जो मुनि के कल्पनीय होवे उसकी जो भगवान् महावीर स्वामी जो पधारे तो उनको आज्ञा दी जो ऐसा राजा श्रेणिक तुमको जनाता है आज्ञा देता है इत्यादिक बहुत विस्तार से सूत्र में कथन है कि जो राजा श्रेणिक ने ढंढेरा पिटाया. परन्तु वहां सूत्र में तो ऐसा कथन नहीं आया कि राजा ने शय्या संथारा मुनि को दिलाने की दलाली करी. तिसका अमुक फल हुवा.

पूर्वपक्ष–यह तो प्रकट है कि मुनि को १४ प्रकार का दान देवो, दिवावो. देते हुए को भला जाणो तो महालाभ होता है. यहां सूत्र में नहीं कहा. तो क्या परन्तु अन्य सूत्र में बहुत ठिकाने कहा है.

उत्तरपक्ष–हे भाई वैसे ही समझ लेवो कि राजा ने अमारी का जीव बचाने का ढंढेरा फिराया उसका भी प्रत्यक्ष लाभ है के जीव दया पालो, पलावो. पालते हुए को भला जाणो समें महा लाभ है. तो यहां उपासक दशा में नहीं खुला तो ा. परन्तु प्रश्न व्याकरणादिक बहुत से सिद्धांतों में वर्णन ो हमने पहिले खुलासा लिखा है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहते हैं कि श्रेणिक ने जीव बचाया ो राजा की रीत है. कोई राजा के पुत्रादिक का जन्म वाहादिक कारण से यह कार्य किया है. परन्तु धर्म में निस विषय में इसी पंचमी ढाल में ऐसी गाथा है.

(एतो पुत्रादिक जाया परखिया. उत्सवादिक होवणरो सीतला जाण. एहवे कारण कोई ऊपने श्रेणिक राजा हो फेरी नगर में आण. भ. ४० ॥ ते तो रुकिया नहीं क्रम आवतां नहिं कटि हो तिणरा आगला कर्म. वले नरक जातो रखो नहीं. न सिखायो हो भगवंत यह धर्म. भ. ॥ ४१ ॥)

इत्यादिक कथन हमारे गुरुजी श्रेणिक के जीव छोड़ाने के विषय का कहते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई देखो २ तुम्हारे गुरुजी ने कैसा अंधाधुंध कथन जीव दया से द्वेषी होके करा है जिसका पार नहीं. कहो भाई तुम्हारे गुरुजी का कहना यह है कि कोई पुत्रादिक का जन्मोत्सव में या विवाहोत्सव में जीव छोड़ाये. यह किस सिद्धांत में है. देखो पुत्र जन्म महोत्सव का विवाह का अधिकार राजा श्रेणिक का पुत्र मेघकुमार का सूत्र ज्ञाताजी का पहिला अध्ययन में बहुत विस्तार पूर्वक संपूर्ण जन्ममहोत्सव विवाह महोत्सव का वर्णन चला है. तो वहां जीव छोड़ाने का कथन क्यों नहीं चला. या और भी सूत्र भगवतीजी में महावल कुमार का अधिकार. और अंतगढ दशांगजी में अनेक राजकुमार के जन्म विवाहादि महोत्सव अधिकार चले जहां जीव नहीं हनने का ढंढेरा फेराने का अधिकार क्यों नहीं चला. तो फिर निश्चय हुवा कि तुम्हारे गुरु भीषमजी ने फक्त जीव बचाने से द्वेषातुर हो के. जो कहा भी कथन नहीं था. उसकी असत्य हाके जोड़ने नहीं डरे. हा ! हा ! हा ! मिथ्यात्व का माहात्म्य है. और राजनीति में जीव छोड़ाये यह भी कहना. सर्वथा कल्पित है. क्योंकि राजनीति होती तो

उसका फल नरक नहीं जाने का क्यों नहीं हुआ. नरक में कैसे गये.

पूर्वपक्ष–धर्म के फल से तो तीर्थंकर गोत बांध्या आवते काल में मोक्ष जावेगा. परन्तु नारकी का तो पेलानीकाचित् बंध पड़ गया उससे गये.

उत्तरपक्ष–हे भाई अब निपक्षपणे से तोलो कि राजा श्रेणिक ने जीवदया का भी ढंढेरा फिराया था. और साधू को शय्या उपासरा देने का भी ढंढेरा फेराया था. तो यह तो दोनों काम धर्म के है तो फिर तुम्हारे गुरुजी ने ऐसी मिथ्या जोड़ क्यों करी कि जीव बचाने से राजा की नारकी बंध नहीं हुई. जिससे राजा का जीव बचाना धर्म में नहीं. किन्तु पाप में है क्या उनको मालूम नहीं था कि राजा श्रेणिक नरक में गये. इससे राजा श्रेणिक का जीव बचाना पाप में कथन करता है परन्तु कोई मेरे से पूछेगा कि राजा श्रेणिक ने भगवान् की भक्ति करी वो भी क्या पाप में है. क्योंकि राजा श्रेणिक नरक में गये इससे.

पूर्वपक्ष नहीं श्रेणिक राजा ने भगवान् की भक्ति करी वो पाप में कभी नहीं. वंदना नमस्कारादि भगवान की भक्ति करने में तो धर्म ही है और नरक का तो निश्चय बंध पड़ गया था. उससे गये. परन्तु भक्ति आदि का फल तो आगामी काल में अच्छा ही होवेगा

उत्तरपक्ष तो हे भाई भीखनजी को यह ख्याल क्यों नहीं आया. तो और दया में श्रद्धा उठाने वास्ते ऐसा लिख दिया कि श्रेणिक राजा नरक में गये जिससे राजा का जीव छोड़ाने

में धर्म नहीं. किन्तु पाप है ज्ञान नेत्र खोल के ऐसा
भीषमजी ने क्यों नहीं किया. कि जीव बचाने का
अच्छा ही है. परन्तु नारकी तो पहिला बंध पड़ जाने
है. सो भीषमजी का जीवदया पर अत्यन्त द्वेष था.
जीव बचाने में पाप बताना तो द्वेष करने का काम नहीं.
राजा श्रेणिक का ढंढेरा जीव बचाने का तीन जने को अ
नहीं लगता है. एक तो मांसाहारी, दूसरा कसाई, ती
जिसकी श्रद्धा जीव बचाने से उठ जावे इन तीन जने को
इस काम में पाप दीखता है. बाकी तो सर्व बुद्धिमान इस का
को धर्म में समझते हैं.

पूर्वपक्ष–जेकर ऐसे जीव बचाने के ढंढेरे फेरने में धर्म
होता तो जैनधर्मी तो अनेक राजा हुये हैं तो उन सर्व ने
ऐसा ढंढेरा क्यों नहीं फिराया.

उत्तरपक्ष–हे भाई और ने नहीं फिराया ऐसा कथन सूत्र
तो है ही नहीं. परन्तु यहां वर्णन एक श्रेणिक राजा का ही
चला है. तो जिसका मतलब आवे उसका कथन चले. परन्तु
सूत्र में तो नहीं कहा कि राजा श्रेणिक के सिवाय अन्य कोई
राजा ने जीवदया का ढंढेरा नहीं फेराया.

पूर्वपक्ष–हमको तो दूसरे राजा ने ढंढेरा नहीं फेराया इससे
इस काम में सन्देह है कि धर्म का काम का कथन शास्त्र में
क्यों नहीं चला.

उत्तरपक्ष हे भाई सूत्र ज्ञाताजी के ५ मा अध्ययन में श्री-
कृष्ण महाराज ने थावच्चापुत्र के दीक्षा के अवसर पर दीक्षा
की दलाली करी. कि दीक्षा लेवे उसको मेरी आज्ञा है. पिछले

कुटुंब की सार संभार मैं करूंगा ऐसा ढंढेरा फिराया. तिससें एक सहस्र पुरुषों ने दीक्षा ली. तो कहो भाई दीक्षा की दलाली श्रीकृष्ण महाराज ने करी. ढंढेरा फिराया. तो फिर अन्य राजा तो बहुत से जैन धर्मी हुए उनका ढंढेरा फेराने का कथन क्यों न चला. तथा इसी राजा श्रेणिक का कथन दशा श्रुतस्कंध के नवमें अध्ययन मे चला कि महावीर जी के साधू को शय्या संथारादिक देने का ढंढेरा फेराया. तो अन्य राजा भी बहुत से जैनी थे उनका कथन नहीं चला तो कहो भाई दीक्षा की दलाली मे या शय्या संथारादिक दान की दलाली में धर्म है कि नहीं.

पूर्वपक्ष इन कामों मे तो धर्म है. अन्य राजा का अधिकार का कथन न[illegible] चला तो क्या परन्तु यह तो प्रत्यक्ष लाभ का कार्य है. कि दीक्षा दिलाना शय्या संथारादिक दान का दिलाना.

उत्तरपक्ष [illegible] तरह से विचार लेवो कि जीवदया का भी मूल मे [illegible] करा है. परन्तु कथन तो कोई का नहीं [illegible] इसमें जानो कि अन्य राजाओं का [illegible] चला. तो क्या परन्तु राजा श्रेणिक का [illegible] ढंढेरा फेराने का भी धर्म का कार्य है. [illegible] हुआ ॥ इति ॥

तेरां [illegible] ॥

यह इसने [illegible] शिक्षा अर्थ से जीव के बचाने मे [illegible] पाठ मन्न न्या- [illegible] श्री भगवान सिद्धांत भी

सर्व जगत् के जंतु की रक्षा के लिये फरमाये हैं या और भ
मेघकुमार ने नेमीनाथजी ने राजा श्रेणिक ने इत्यादिक करुणा
वान पुरुषों ने जीव बचाये ऐसा मूल सूत्रों का पाठ अर्थ टीका
सहित दिखाया है उसको मध्यस्थता ग्रहण करके तुम लोक
समझु होवो तो समज लेवो कि जीव का जीवन वंछे विदून
जीव दया पल ही नहीं सकती है. और जीव बचाने में धर्म
स्पष्ट रीति से सिद्धांतों से सिद्ध है और हमने ऊपर लिख
दिया है. तो अब तुम्हारा लिखना प्रश्नोत्तर के १२ मा पृष्ट में
है कि जो साधू श्रावक त्रस जीव का जीवना वंछते हैं और
अनुमोदते हैं उन दोनों के विषय में श्री भगवान् ने चौमासिक
प्रायश्चित्त आना कहा है यह तुम्हारा लिखना तो एकांत मि-
थ्या है. क्योंकि प्रथम तो त्रस जीव का जीवना वंछने का
प्रायश्चित्त किसी सूत्र में है ही नहीं. और तुमने जीवना वंछने
का चौमासिक प्रायश्चित्त लिख दिया सो मिथ्या है और नसीथ
की साक्षी देते हो वह भी मिथ्या है. जिसका खुलासा हमने
पहिले अच्छी तरह से किया है क्योंकि नसीथ का १२ मा
उद्देश में तो दयावणी दृष्टि करके साधू कोई त्रस जीव पशु
आदिक को खोले तो चौमासिक प्रायश्चित्त आवे सो साधू को
कहा. परन्तु श्रावक का तो नाम भी नहीं और तुमने श्रावक
को भी चौमासिक प्रायश्चित्त आना लिखा. तो फिर तुम तेरे-
पंथी श्रावक बहुत से त्रस जीव गाय भैंसादिक को बंधन से
खोलते हो बांधते हो तो फिर प्रतिदिन चौमासिक प्रायश्चित्त
का काम करके तुम चतुष्पदों को खोलने बांधने वाले सर्व
कि तुम्हारी गुरु की श्रद्धा के लेख से तुम सर्व श्रावकपना

रहित और जिन आज्ञा बाहिर ठहरे हा ! हा ! हा ! सूत्र में नहीं लिखा उसको भी सूत्र के नाम ले के लिखते नहीं डरे. इतना भी नहीं समझते हैं कि कोई सूत्र का लेख पूछेगा तिसवक्त क्या उत्तर देवेंगे. तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के पंचमे अध्ययन के छठे उद्देश में श्री भगवान ने ऐसा कहा कि आज्ञा के बाहिर उद्यम, और आज्ञा में आलस यह दोय बात मत होवो. शिष्य से गुरु का यह कथन है. तिसका उत्तर, यह तुमने व्यर्थ काला पत्र किया. क्योंकि जीव बचाने की परमेश्वर की आज्ञा है. सो हमने सिद्धांत से सिद्ध करी है तो फिर यह साक्षी बनजानी निरर्थक है. यहां ऐसा लेख नहीं है कि हे शिष्य तू जीव बचाने का उद्यम मत कर. जीव बचाने की ठाम ठाम परमेश्वर की आज्ञा है. (रक्खा) ऐसा सूत्र प्रश्न व्याकरण का पाठ है. रक्खा नाम रक्षा करने का है. सो भगवान की आज्ञा है. तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के दूसरे अध्ययन के दूसरे उद्देश में कहा कि श्री वीतराग की आज्ञा के बाहिर धर्म इच्छा करे वह तप संयम से भ्रष्ट है.

(इसका प्रत्युत्तर) यह भी लिखना व्यर्थ है ॥ क्योंकि यहां भी ऐसा नहीं कहा कि जीव रक्षा करने वाला भ्रष्ट है जीवरक्षा की तो परमेश्वर की आज्ञा है. नाहक इतने लोकों को देखाने वास्ते हास्य रूप लेख लिखा. ३ तथा तुम्हारा लेख है कि सूत्र उवाई के २० में प्रश्न में कहा है कि श्रावक को केवली प्ररूपे धर्म विना अन्य धर्म नहीं मानना चाहिये. (इसका प्रत्युत्तर) यह भी तुम्हारा लिखना हमारे प्रश्न विषय में

निरर्थक है. क्योंकि यहां भी ऐसा नहीं कहा कि श्रावक को जीव बचाने का धर्म नहीं मानना. जीव बचाने का तो श्रीमुख से कहा है. कि मैंने सिद्धांत सर्व जीव की रक्षा वास्ते रचे हैं. सो पाठ दिखाते हैं सुनिये.

सूत्र–सव्व, जग, ज्जीव, रक्खण, दयाए, पावयणं, भगवया, सुकहियं,–इति.

तो फिर जीवरक्षा तो करणे का ही भगवान् का उपदेश है. हां अलबत्ता इस उवाई का बीसमां प्रश्न में श्री भगवान् ने श्रावक को (धम्मीया, सुसीला, सुव्वया, सुपड़िया, यंदा, सहुहिति,) इत्यादिक पाठ से श्रावक को श्री भगवान् ने धर्मा सुशीली कहे हैं. परन्तु तुम्हारे गुरुजी तुम तेरेपंथी श्रावकों को कुपात्र और जहर के टुकड़े समान कहते हैं. सो गुरुजी से समझ लेवो. कुपात्र पणे के कलंक से दूर होवो ॥ ४ ॥ तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के दूसरे अध्ययन में श्री भगवान् ने कहा कि साधू की आज्ञा के बाहिर धर्म श्रद्धे उसको काम भोग में लुता कहना चाहिये. और हिंसा करने वाला कहना चाहिये (इसका प्रत्युत्तर) यह भी साची लिखनी सींग के ठिकाने पूंछ बतानी रूप है. क्योंकि जीवरक्षा का प्रश्न में ऐसा उत्तर देना अनुचित है. जीव बचाने की तो श्री परमेश्वर की भी आज्ञा है. तो फिर साधू की क्यों नहीं अपितु निश्चय ही है (५) तथा तुमने लिखा कि सूत्र उत्तराध्ययन का २८मा अध्ययन की ३१ मी गाथा में कहा है कि समकिति को चाहिये कि केवली के प्ररूपे धर्म बिना अन्य धर्म नहीं माने (इसका प्रत्युत्तर) यह भी लिखना तुम्हारा है तो ठीक परन्तु

तुम्हारी आस्ता उलटी है कि जीव को बचाने की केवली की आज्ञा नहीं. क्योंकि सूत्र प्रश्नव्याकरण का पहिला संवरद्वार का १४ मा नाम (समत्ताराहणा) कहा है. यानी दया है. सोही समकित की आराधना है. तो फिर जीव बचाने का प्रश्न में यह उत्तर देना विरुद्ध है. जीवदया तो केवली का परम धर्म है. परन्तु इस उत्तराध्ययन सूत्र की ३१ मी गाथा से तुम्हारी श्रद्धा ही उलटी है सो हम ३१ मी गाथा मूल अर्थ टीका सहित लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुनो.

सूत्र निस्संकिय, निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा, अमूढ, दिट्ठिय, उववूह, थिरीकरणे, वच्छल्ल, पभावणे, अट्ठ ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः तत्त्व नी शंका न आणे १ अनेरो धर्म न वांछे २ फल प्रति संदेह न आणे ३ मिथ्यात्वी ना धर्म नी महिमा देखीने वांछा न करे. ४ समकेत ना गुण करे. ५ धर्म थकी सीदाता ने मार्ग देइ निश्चल करे. ६ साधर्मिक जनने भक्त पानादि के करी उचित भक्ति नो करवुं ते वात्सल्य कहिये ७ प्रभावना पोताने तीर्थंकर ने विषे यथाशक्ति प्रभावना करे ८ इति सूत्रार्थ

देखो यहां तो साधर्मी की भक्ति भक्तादिक करके करे तो समकित का आचार कहा और तुम्हारे गुरुजी कहते हैं कि धर्म निमित्त श्रावक को खाना देने का महान कोई श्रावक देवे तो उसको वेश्या को देना और खाना देने समान कहते हो. ऐसा कहते हैं तो यह उत्तराध्ययन सूत्र का २८ मा अध्ययन की ३१ मी गाथा से तुम्हारी श्रद्धा विरुद्ध यानी खोटी होती है परन्तु सिद्ध यहां पर इस गाथा का टीका में भी वत्सलता में साधर्मी का भक्ति करना समकित का आचार है ॥

तुम्हारी समझ में विपरीत है. क्योंकि श्री भगवान् ने तो जीव-दया जीवरक्षा की आज्ञा ठाम ठाम सूत्र में दी है. तो फिर प्रश्न पूछा तो जीव बचाने का. और उत्तर आज्ञा में धर्म का दिया. तो हम तुमको प्रत्युत्तर में कहते हैं कि परमेश्वर की जीव बचाने की सूत्र में ठाम ठाम आज्ञा है सो आत्मा का हित चाहो तो पक्ष छोड़के हमने ऊपर सूत्र की साखी बताई सो मध्यस्थता से तोल के सत्यमार्ग की आस्ता लावो. बस हमारा प्रश्न यह था कि गायों को लाय से बाहिर काढ़ने में तुम पाप बताते हो सो सूत्र का पाठ दिखाओ. तिसका उत्तर में तुमने ऊटपटांग सूत्र का नाम ले के साखी लिखी वह एक भी इस प्रश्न के उत्तर विषय में सत्य नहीं जिसका हमने प्रत्युत्तर में मूलपाठ अर्थ टीका सहित विस्तार से लिखा है सो बुद्धिमान् होवो तो बुद्धि-बल से अच्छी तरह से विचार करके सत्यपथ की धारणा करणी चाहिये. इति प्रत्युत्तर दीपिकायां पंचम प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥

(प्रश्न ६)

असंयती पोषणिया पन्द्रवां कर्मादान कहते हो सो और सिद्धान्त हो सो पाठ दिखलाओ.

उत्तर तेरापंथियों का—सूत्र में पाठ (असई जण है) और इसका अर्थ असतीजन है. और असतीजन का भावार्थ असं-यती है. और असंयती को पोषने में श्री भगवान ने एकांत पाप बताया है जिसके लिये पाठ ऊपर लिख आये हैं.

इसका प्रत्युत्तर हम्मा भाई यह तुम जानते हो कि सूत्र में (असइ, जण, पोसणया, पाठ है या फिर तुम्हारे गुरु ने

असंजती पोसणया. एक जकार और सकार के अनुस्वार अधिक क्यों किया क्या तुम नहीं जानते कि जो कोई जाए के एक मात्रा यानी ह्रस्व दीर्घ भी लिखे तो परमेश्वर के वचनों का उत्थापक है. वो फिर तुम जानते हो कि सूत्र में असइजण पाठ है वो फिर असंजती क्यों किया. यानी एक तो सकार कोरा था जिसपर अनुस्वार तुमने लगाया और दूसरा जकार ज्यादा लगाया तो यह प्रत्यक्ष परमेश्वर की आज्ञा का भंग किया. और मिथ्यात्व का उपादान किया. क्योंकि वीतराग के वचनों से न्यून प्ररूपे वो भी मिथ्यात्व. और अधिक प्ररूपे तो भी मिथ्यात्व. तथा आवश्यक सूत्र में भी १४ ज्ञान का अतिचार कहा. वहां भी ऐसा पाठ है कि (हीणक्खरं) (अच्चक्खरं) हीन अक्षर बोले अधिक अक्षर बोले तो ज्ञान में अतिचार लागे. जेकर अजाणपणे अधिक न्यून अक्षर बोले तो अतिचार लागे वो फिर जान के सूत्र से अधिक अक्षर मतपक्ष के लिये बोले वह तो ज्ञान के विराधिक ही हैं. और जाण के मतपक्ष के लिये अधिक अक्षर सूत्र के पाठ में घाले वह तो संसार वृद्धि के करने वाले हैं. समकित और ज्ञान दोनों से रहित है और समकित के विना साधूपणा श्रावकपणा होताही नहीं. वो फिर जो लोग (असइजण) का पाठ को लोप के असंजती का पाठ पढ़ते हैं पढ़ाते हैं. और फिर इसी को पुष्टि करते हैं उनका क्या होगा. हे भाई तुम जाण गए हो कि सूत्र में (असइंजण) पाठ है तो फिर इस पाठ को असंजती ऐसा उलट्य क्यों मरोड़ो सूत्र का भय रक्खो यह जिन वाणी है.

पूर्वपक्ष—(असंजती. पोसणी. अ.कम्मे) ऐसा पाठ हमने कहां बनाया है.

उत्तरपक्ष -प्रथम तो तुमने प्रश्नोत्तर में छपाया है. परन्तु कदाचित तुम कह देवो कि यह तो हमने अर्थ लिखा है. तो तुम्हारी पुस्तक तेरेपंथी कृत देवधर्म की उलखाण उसके पृष्ठ २१३ पे सातवां व्रत का अतिचार का पाठ है, तहां ऐसा लिखा है. (असंजती, पोसणीअ, कम्मे) देखो भाई ऐसे खोटे पाठ बनाने का क्या फल मिलेगा.

पूर्वपक्ष असंजति और असाहजण का अर्थ एकही है इस से यह पाठ हमारे गुरु भीखनजी ने बदल दिया तो क्या दोष है.

उत्तरपक्ष हे मित्र क्या गणधर भगवान जो सूत्र के पाठ बनाने वाले उनसे भी तुम्हारा गुरु भीखमजी को अधिक ज्ञान था. जो गणधर कृत पाठ को उत्थाप के अपना कपोल कल्पित पाठ धर दिया और दोनों पाठ का एकसाही अर्थ था तो फिर गणधर कृत पाठ को फिरने का क्या प्रयोजन था. जो तुम्हारे गुरुजी ने [illegible] लोभ किया अधिक न्यून कीन करे. परन्तु निश्चय जाना कि अर्थ का अनर्थ करने वाले ही भीखमजी ने (असाहजण.) इस मूलपाठ को उत्थाप के (असंजती, पोसणीअ, कम्मे) ऐसा पाठ लिखा है.

पूर्वपक्ष बताइये कि (असाहजण) और असंजति शब्द के पाठ का अर्थ में क्या फरक है

उत्तरपक्ष सुनिये भाई तुम्हारे गुरु भीखमजी ने जो (असंजति, पोसणी, अ कम्मे) पाठ था के [illegible] अर्थ साधु [illegible] हैं [illegible] तुम्हारे गुरु भीखमजी की बनाई १२ [illegible] हैं. [illegible] [illegible] की [illegible] में ऐसा [illegible] है. साधु [illegible] [illegible] [illegible] असंजती

प कहीजे) इति देवगुरु ओलखाण पुस्तक का पृष्ठ २१ मा.
व देखो तुम्हारे गुरु का तो यह अर्थ है. अब सूत्र का
र्थ सुनो—

(असती, जन. पोषणीया, कम्मे).

अस्यार्थः—लाभ ने अर्थे असती जे कुशील हिंसक जीव-
मंजार श्वानादिक जीव तथा दास दासी तेनो भाडो कमावा
पोखे. तेनो नाम असती. जण. पोसणीया. कम्मे. जाणवा इति.
तथा टीका में भी कहा है सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा
उद्देशे पंचमा की टीका-असइपो सणयाव. दास्यासत्याद्री ग्रह-
णाय. अनेन च कुक्कुड मार्जारादि क्षुद्र जीव पोषण मप्या दिते
ख्यातमिति ॥

तथा उपासक दशा का अध्ययन पहिला की टीका—
असइ. जण, पोसणीया.-असती जनस्य दासी जनस्य पोषणं
तद्भाटिकोपजीवनार्थं यत्तथा. एवमन्यदपि क्रूरकर्म कारिणः
प्राणिनः पोषण मसतीजन पोषण मेवेति ॥ १५ ॥

टीकार्थः—असती जन जो व्यभिचारिणी दासी. इनका
पोषण करना अर्थात् इनका शरीर का नाश से आजीविका
(कमाई) करने को पोषण करना. ऐसी आजीविका निमित्त
और भी क्रूर कर्म करने वाले प्राणी का पोषण करना. इनको
असती जन पोषण कहते हैं. अब देखो दोनों टीका का मतल
है कि असती दासी व्यभिचारादि कर्म की कमाई लेने वास्ते
जिनने कुकर्म करा के उनका देह नाश की आजीविका व्या-
पार करने को नहि पोषना तथा हिंसक किसी कुक्कुटादिक
को मार्जार नहि पोषना यों के १५ वा कर्मादान को यह

सिद्धांतों का टीका सहित लेख है. तो फिर तुम्हारे गुरुजी ने साधू सिवाय सर्व को असंजती अर्थ किस मूत्र टीका दीपिका से किया है. हे भाई निश्चय जानो कि (असंजती, पोसणीम्, फम्मे,) ऐसा पाठ इसी खोटा अर्थ के स्थापना के लिये किया है नहीं गणधरजी महाराज कृत (असइ, जण, पोसणिया) ऐसा पाठ है उसको पलटे ही क्यों. परन्तु जिसको परलोक का भय नहीं होवे. और भोले लोकों को भ्रम में पाड़ने के लियही मूत्र के मूलपाठ. और अर्थ को छोड़ के नवीन पाठ और अर्थ बनाए हैं. परन्तु बुद्धिमान होवो तो निर्णय करना. और तुम्हारा लिखना भी है कि केवली की मरूपणा विना अपने मन के मते मरूपणा करे जिसको किंचित मात्र भी जाणपणा नहीं. तो जेकर इस बात पर तुम्हारा सचा ध्यान होवे तो विचारना कि जो मूत्र के पाठ को फरफार करके नवीन पाठ घड़के मनमान्या अर्थ तुम्हारे गुरुजी ने किया है उसको क्या समझना. सो विचार लेना.

पूर्वपक्ष–साधू सिवाय और कोई भी ५ महाव्रत को पालने वाला नहीं. इसमें हमारे गुरु उनको असंजति कहते हैं और असंजति को पोषे तो श्रावक को १५ वां कर्मादान लागे.

उत्तरपक्ष–हे भाई प्रथम तो पनरमा कर्मादान में असंजति का नाम [illegible] मूत्रपाठ में अर्थ में टीका में कदापि नहीं तो गुरुजी का लेख को तुम कैसे सत्य मानते हो. दूसरा यह भी कहना मिथ्या है कि साधू के सिवाय सर्व असंजती हैं. ऐसा किसी मूत्र में नहीं है. क्योंकि जब साधू के सिवाय सर्व को असंजति कहोगे तो फिर श्रावकों को तो श्री भगवान ने संजता

संजती कहे हैं. परन्तु असंजती किसी सूत्र में नहीं कहे
फिर साधू सिवाय सर्व को असंजती कहने में असंख्य
के माथे असत्य आल कलंक चढ़ना है. ऐसा समझना च
तीसरी वार्ता यह है कि जेकर साधू सिवाय सर्व को अ
मानोगे. और उनके पोषणे में १५ वां कर्मादान समझोगे.
जिस श्रावक के १५ ही कर्मादान के त्याग होवे और वह
के सिवाय अन्य को पोषे तो उसका सातवां व्रत भांगा य
खंडन हुवा. ऐसा मानना पड़ेगा. तो फिर भगवान के श्रा
दादिक १० श्रावक १५ ही कर्मादान के त्यागी थे. और उ
सर्व श्रावकों के हजारों गायां थी. दास दासी थे न्यातादि
को जिमाते थे. तो उनका व्रत तुम्हारी श्रद्धा के लेख से भग्न
हुवा होगा. क्योंकि १५ ही कर्मादान का तो भगवान् के बारे
व्रतधारी श्रावक को करणा, कराणा, अनुमोदना इन तीनों
कामों में वर्जित किये हैं तो फिर आनंदादिक उत्कृष्ट श्रावकों
के तो १५ ही कर्मादान के करणे, कराणे, अनुमोदने का त्याग
था. और गवादिक पोषते थे. न्यातादिक को जिमाते थे. और
उनका सातवां व्रत कैसे रहा. सो कहो—

पूर्वपक्ष-पंदरेही कर्मादान श्रावकों को करणे कराणे अनु-
मोदने का त्याग है ऐसा किस सूत्र में है सो बतावो.

उत्तरपक्ष-प्रथम तो सूत्र उपासक दशा के पहिला अध्य-
यन में ही है. कि जहां आनंदादिक ने व्रत धारण किया है.
वहां ही भगवान ने फरमाया है -

सूत्र इन्गालं, वन्णोकम्मं. साडीकम्मं, भाडीकम्मं,
फोडीकम्मं. न समायरियव्वाइं.—

आस्ता लावो जिससे आनंद पावो. इति. यह तुम्हारा छठा प्रश्न का उत्तर देना विरुद्ध है. सो हमने सूत्रपाठ टीका से प्रत्युत्तर में लिखा है ॥ इति प्रत्युत्तर दीपिकायां छठा प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तरं संपूर्णम् ॥

(प्रश्न ७)

असंजति का जीवना नहीं वंछते हो सो पाठ दिखलाओ.

उत्तर तेरेपन्थियों का—असंजती का जीवना असंयम जीवितव्य कहा है. और असंयम जीवितव्य का वंछना तथा वाल मरण वंछना. श्री भगवान ने सूत्रों में ठाम ठाम में वर्जित किया है उसको संक्षेप से सूत्र साक्षी दे के लिखते हैं सो एकचित्त हो के श्रवण करिये.

(इसका प्रत्युत्तर)—यह तुम्हारा लिखना अत्यंत विरुद्ध है. क्योंकि हमारा तो प्रश्न यह है कि असंजती का जीवना नहीं वंछते हो सो पाठ दिखलावो. क्योंकि जीवना वंछे विदून दया होती ही नहीं है और दया विना धर्म ही नहीं है. और तुम ...त्तर में लिखते हो कि असंयम जीवितव्य का सूत्र में ठाम ठाम ...र्जित किया है. और असंयम जीवितव्य का जहां जहां सूत्र ... नहीं वंछना लिखा है वहां वहां तो मुनि को काम भोग सं... ...र के नहीं वंछने का नाम असंयम जीवितव्य है. परन्तु मरते ... का जीवना नहीं वंछना नहीं बचाना ऐसा कहांपि नहीं ...ला है. क्योंकि जीव के जीवन वंछे विदून तो दया होती ... इससे सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संमरद्वार में कहा ... दया) देही यानी जीव की रक्षा करना नाम दया का है. ... ठाम ठाम दया पालने का उपदेश सूत्र में है तो फिर तुमने

मिथ्याही सूत्रों का नाम ले के ऊटपटांग लिख दिया. सिद्धांतों में तो जहां जहां असंयम जीवितव्य नाम काम भोग की आशा तृष्णा का निषेध किया है तो यह निषेध जैनमत में तो मुख्य ही है परन्तु जैनमत के सिवाय दूसरे मत के ग्रंथों में भी है. परन्तु जीव रक्षा नहीं करणी जीव को नहीं बचाना धर्म जान के जीव बचावे जिसको १८ पाप लागे ऐसा कहना तो जैन-सिद्धांत के ग्रंथ भाष्य टीका प्रकरण आदिक में कहां भी नहीं है. केवल भीषमजी की कल्पना से ही यह बात उत्पन्न हुई है. परन्तु भूत भविष्यत वर्तमान कालके तीर्थंकरादि महापुरुषों का यह कहना नहीं है. तीर्थंकरों ने तो ठाम ठाम जीवरक्षा के धर्म का उपदेश दिया है ॥

(महणो महणो) ऐसा उपदेश सर्व तीर्थंकरों का है कि किसी जीव को मत हणो.

पूर्वपक्ष–मत हणो ऐसा उपदेश तो है. परन्तु जीव की रक्षा करो करो ऐसा तो नहीं कहा.

उत्तरपक्ष–हे भाई मत हणो ऐसा कहना तो रक्षा के लिये ही है कि यह जीव गरीब है इनको मत हणो यह तो उन जीवों की रक्षा का ही उपदेश है. सूत्र सूयगडांग का अध्ययन १६ वे में (माहणेतिवा) त्रस अने थावर जीव मत हणो ऐसा जिनका उपदेश है. तिनको माहण कहिये. टीका में भी ऐसा साफ लेख है ॥

तथा च टीका–प्राणिनः स्थावर जंगम सूक्ष्म वादर पर्याप्तक भेद भिन्नान (माहणत्ति) प्रवृत्तिर्यस्या सौ माहनो–

टीकार्थः–प्राणी जो स्थावर सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता

इनके भेद करके मिले हुए जो जीव उनको मत हणो ऐसा कहने की है प्रवृत्ति जिसकी उसको माहन कहिये. इति.

यह देखो स्थावर जंगम सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता सर्व जीव को मत हणो ऐसी जिनकी प्रवृत्ति होवे उसको माहन कहिये. तो विचारो कि जीव का जीवन बंछे बिना सर्व जीव की रक्षा का उपदेश होता ही नहीं है. और जीवों को मत मारो. या जीव की रक्षा करो एकही परमार्थ है. जैसे कोई हिंसक पशु आदिक जीवों को मार रहा है. जिसको किसी दयावान ने कहा कि इनको मत मार. दूसरे ने कहा कि इनकी रक्षा कर तीसरे ने कहा इनको दुःख मत उपजा इन सबका एकही मत-लब है सर्व जीव बचाने की ही कोशिश है.

पूर्वपक्ष-इसको सूत्रपाठ बता या दिखलाओ.

उत्तरपक्ष-यह बताया सो सूत्रपाठ ही है. तथा फिर दि-खलाते हैं सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संवरद्वार में (रक्खा)

अस्य टीका. जीवरक्षण स्वभावत्वात् [illegible]:-जीवरक्षा का स्वभाव होने से रक्षा कही है तथा पुनः (सव्व, जग, जीव, रक्ख, ण, दयाए, पावयणं, भगवया, सुकहियं) यह देखो भी सूत्र का वचन है कि सर्वजगत् जीव जन्तु की रक्षा के लिये भगवान ने सूत्र फरमाये हैं. तो फिर यह कहना कुतर्क कैसे सत्य होवे कि जीव का जीवन नहीं बंछना परन्तु रक्षा नहीं होवे

पूर्वपक्ष [illegible] सूत्र की साखी लिखी है

उत्तरपक्ष–हे भाई यह १४ साचियां तुम्हारी ऐसी हैं कि जैसे कोई पुरुष ने किसी को पूछा कि रत्न अमोलक पदार्थ है तिनको तुम खोटे कैसे कहते हो. तब उस रत्न नष्ट करने वाले ने उत्तर दिया कि जैसे बिलोरी पत्थर कठिन होता है तैसे रत्न भी कठिन होते हैं तिससे एकही सरीसे हैं तो कहो भाई रत्न को बिलोरी पत्थर के तुल्य का उत्तर कभी ठीक नहीं. तैसेही असंयति जीवों की दयारूप जीवणा वंछने में पाप कहते हो ऐसा प्रश्न हमारा है. तिसके उत्तर आशा तृष्णा नहीं वंछनी ऐसा देना अति विरुद्ध है. प्रश्न तो जीवों का जीवन वंछने का और उत्तर तुमने आशा तृष्णा का दिया. तो यह अति विरुद्ध उत्तर है. क्योंकि असंयम जीवितव्य का उत्तर लिखने से. असंयम जीवितव्य नाम तो आशा तृष्णा का है. इससे तथापि हम तुम्हारे उत्तर साथही प्रत्युत्तर लिखते हैं सो सुनो (क) १ सूत्र ठाणांग के दशवें ठाणे में दश वांछा वर्जी जिनमें असंयति का जीवना मरणा वंछना वर्जा है. असंयम जीवितव्य आसरी (इसका प्रत्युत्तर) देखो भाई तुम्हारी विपरीत वार्ता का कहां तक कथन करिये. सूत्र में तो जीवों का जीवना नहीं वंछना ऐसा नाम मात्र भी नहीं है. हा ! हा ! हा ! मिथ्या साक्षी लिखते नहीं डरे उनको क्या कहें.

पूर्वपक्ष-सूत्र में क्या अधिकार है.

उत्तरपक्ष–सूत्र में दश प्रकार की इच्छा यानी तृष्णा का व्यापार उद्यम नहीं करणा कहा. सो यह पाठ है ध्यान लगा के सुनो—

सूत्र- दसविहे, आसंस, पउगे, पन्नत्ते ॥

अस्यार्थः—इस प्रकारे आसंसा इच्छा नेहनो प्रयोग यानी व्यापार करवो इत्यर्थः.

देखो सूत्र में तो ऐसा कहा है कि १० प्रकार की इच्छा तृष्णा जगत में होती है. जिसकी चौथी और पंचमी आसंसा का पाठ यह है (जीविया. संसप्पओ. मरणा. संसप्पओ,) अस्यार्थः—मैं चिरंजीवी होउं तो शीघ्र मुझने मरण हुओ. इति.

अब देखो सूत्र में तो ऐसा लेख है कि ऐसी तृष्णा नहीं करनी. मैं बहुत काल जीता रहूं. या शीघ्र मर जाऊं। परन्तु ऐसा नहीं कहा कि किसी जीव की अनुकंपा दयाल जीवना नहीं वंछना. तो फिर तुमने उववाई सूत्र से विरुद्ध लेख क्यों लिखा. तथा यहां सूत्र में तो संयति असंयति श्रावकादिक किसी का नाम नहीं. यह तो समुच्चय सर्व जीव के वास्ते कहा है कि बहुत जीवने की या शीघ्र मरने की तृष्णा नहीं रखनी. और तुमने लिख दिया कि इसके ठाणे में असंयति का जीवना मरणा नहीं वंछना कहा है. हे भाई इसके ठाणे में तो असंयति का नाम मात्र भी नहीं. वहां तो (जीविया. संसप्पओ.) यह पाठ है तो अपने जीवितव्य की तृष्णा का कथन है. तो अपने जीवितव्य मरण की तृष्णा नहीं करनी. ऐसा लेख जैन सिद्धांत में तो है ही. परन्तु जैन से अन्य अन्य मतावलम्बि में भी कहा है. (नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवितम्) इति. तो यह तो प्रसिद्ध बात है कि तृष्णा रोकने का उपाय है कि हे चेतन तेरे ज्यादा जीवने की भावना से तू ज्यादा नहीं जीता है. तो फिर क्यों तृष्णा करता है यह तो विद्वान क्या परन्तु साधारण लोक भी समझते हैं परन्तु जीवों की रक्षा करनी

तो जीवों की जीवना वंछे विना होती ही नहीं इस से जीवों की करुणा करने की वांछा का निषेध कोई सूत्र में नहीं है तो फिर तुम वृथा कल्पना करके हठवाद क्यों करते हो. बस इस एक साक्षी मुताबिक तुम्हारी चौदेही साक्षी है. तथापि लिखते हैं. (ख) सूत्र सूयगडांग के तेरहवें अध्ययन की २३ मी गाथा में असंयती का जीवन मरण वंछना वर्जा है. (प्रत्युत्तर) यह भी मिथ्या है. सूत्र में तो यह पाठ है.

सूत्र-णोजीविय, णोमरणाव, कंखी.

अस्यार्थः-साधू पूजा सत्कार नी प्राप्तियें करी जीवितव्य न वांछे अने उपसर्ग परिषह ऊपने थके मरण न वांछे. इति ॥

देखो यहां सूत्र में तो साधू को सुख दुःख में जीवना मरण वंछना वर्जा है. और तुम मिथ्या सूत्र का नाम ले के असंयती का जीवना मरणा वंछना वर्जा. ऐसा असत्य कथन क्यों करते हो जरा परलोक का डर रखो. इसके आगे जो तुमने फेर सूयगडांग का नाम ले के (ग) (घ) (ङ) (च) (छ) के चिन्ह की पांच साक्षी लिखी वह सर्व ऊपर सरीसी है. सो व्यर्थ काला कागज किया. और तिन पांच साक्षियों में तीसरी साक्षी जो लिखी कि सूयगडांग के तीसरे अध्ययन के पहिले उद्देश की तीसरी गाथा में असंयम के अर्थी को बाल अज्ञानी कहा है. (इसका प्रत्युत्तर) यह है कि यह बात तो ठीक है कि साधू को असंयम यानी कामभोग को नहीं वंछना. परन्तु सूत्र सूयगडांग का तीसरा अध्ययन का पहिला उद्देश का नाम लिखना व्यर्थ है. क्योंकि वहां पर तुम्हारा लेख का नाम मात्र भी नहीं है. इससे विदित होता है कि तुमने ऊटपटांग

में आर्द्रकुमार ने कहा है कि भगवान् उपदेश देवे वह अनेरे को तिराने और अपने खुद के कर्मों का क्षय करने को देवे. परन्तु असंयति के जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे. इति. (इसका प्रत्युत्तर) हे अल्पज्ञ पुरुषों तुम यहां तो अपनी संपूर्ण अविद्या को दर्शाई है. क्योंकि तुम लिखते हो कि इसी सूत्र की गाथा में कहा है कि जगत् के जीव की रक्षा निमित्त परमेश्वर उपदेश देवे. और तुमने लिखा कि असंयति के जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे हा ! हा ! हा ! यह ऐसा हुवा कि कोई बालक सूर्य को ढाक के कहे कि सूर्य किसी को नहीं दीखता है. ऐसे बालक की चेष्टा से क्या सूर्य ढक सक्ता है. नहीं नहीं कभी नहीं ढक सकता है. हां अलबत्ता वह बालक अपनी आखों को मीच लेवे तो उसके भाने तो सूर्य का दीखना अदृश्य हो जावे. परंतु औरों को सूर्य नजर आना उस बालक की चेष्टा से नहीं रुक सक्ता है. तैसेही जीवों को बचाने का उपदेश परमेश्वर देवे उसको तुमने अपनी अज्ञान रूप बालभाव की चेष्टा से चाहते हो कि औरों को यह बात नहीं दीखे तो अपना मनमान्या होजावे जिसको छती अच्छती लिखते हो. परन्तु ऐसा कभी नहीं होता. क्योंकि सूत्र का खुलासा पाठ है कि जीव बचाने को महावीर स्वामी उपदेश देवे. हां अलबत्ता तुमने अपनी ज्ञान दृष्टि पर अज्ञान का आच्छादन कर लिया. उससे तुमको जीव बचने का पाठ है तो भी नहीं दीखे. अब हम तो तुम्हारे ज्ञाननेत्र खोलने के लिये अज्ञान का आच्छादन मेटने के लिये सूत्र का मूलपाठ लिखते हैं सो एकाग्र चित्त होकर सुनो. गोशाला ने आर्द्रकुमार को मेरा. तब आर्द्रकुमार कहते भये सो सूत्रपाठ—

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी बड़े विद्वान् हैं सो (खेमंकर) शब्द का अर्थ कोई दीपिका में और होगा सो हमको उस आशय से बतलाया होगा——

उत्तरपक्ष—सुनिये भाई सूगडांग की दीपिका भी लिख दिखाते हैं.

तथा च दीपिका—लाभार्थं देशनां करोती स्यांई समेत्य लोकं यथा वस्थितं ज्ञात्वा त्रस स्थावराणां क्षेमं करो रक्षकः श्रमणो द्वादश धा तपः मवृत्तः माहणत्ति मवृत्तिर्यस्य स माहनः ॥ इति.

दीपिकार्थः—लाभ के अर्थ देशना उपदेश करते हैं. इसी बात को कहते हैं प्राप्त होकर यथावस्थित लोक को जाण करके त्रस स्थावर जो प्राणि उनका क्षेम कारक अर्थात् रक्षक. बारा प्रकार की तपस्या में प्रतिष्ठित मत हणो ऐसी प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहते हैं ॥ इति दीपिकार्थः ॥

अब देखो दीपिका में भी स्पष्ट लिखा कि भगवान् त्रस स्थावर जीव, के रक्षक हैं. रक्षा का उपदेश देने से तो फिर तुमको तुम्हारे गुरुजी ने कैसे सिखा दिया कि असंयति जीव को जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे.

पूर्वपक्ष—न जाणे हमारे पूज्यजी ने सिलांगाचार्य कृत टीका के आशय से हमको सिखाया होगा. क्योंकि हमारे भ्रमविध्वंसन में हमारे पूज्य जीतमलजी ने बहुतसी जगह सिलांगाचार्य कृत टीका की साखी दी है. तो हमारे पूज्य डालचंदजी भी जीतमलजी के पाटानुयायी हैं. इससे टीका से हमको सिखाया होगा.

उत्तरपक्ष—हां भाई तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने सिलांगा-

चार्य कृत टीका की साक्षी कई जगह दी है. अब हम वही टीका लिख के दिखाते हैं.

तथा च टीका—एतद्धर्म देशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारो-भवत्युत नवेति भवतीत्याह (समिच्च लोय मित्यादि) सम्यग् यथावस्थितं लोकं षड् द्रव्यात्मकं मत्वाऽवगम्य केवला लोकेन परिछिद्य त्रस्यंतीति त्रसास्त्र सनाम कर्मोदया द्वीन्द्रियादय स्त-थातिष्ठंतीति स्थावराः स्थावर नाम कर्मोदय । त्स्थावराः पृथि-व्यादयस्तेषामपि जंतूनां क्षेमं शांती रक्षा तत्करणशीलः क्षेमं-करः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादश मकार तपोनिष्टप्त देहस्तथा माह-णत्ति प्रवृत्तिर्यस्या सौ माहनो ब्राह्मणोवा इति ॥

अथ टीकार्थः—इस धर्म करणे से प्राणियों को कोई उप-कार होता है या नहीं होता ? इस बात को कहते हैं अच्छी तरह से यथावस्थित जो लोक ६ द्रव्यरूप उसको मान करके अर्थात् केवल ज्ञान से जाण करके, विवेचन करके, त्रास पावे उसको त्रस कहते हैं. त्रस नाम कर्मोदय से द्विइन्द्रिय आदिवाले प्राणि स्थित रहे उसको स्थावर कहिये. स्थावर नाम कर्मोदय से स्थावर पृथिव्यादिक जाणने वह दोनों त्रस स्थावर जंतु हैं. उनका क्षेम शांति रक्षा करने का स्वभाव होय उसको क्षेमंकर कहते हैं तपस्या विषयक परिश्रम करे उसको श्रमण कहते हैं. १२ प्रकार की तपस्या उसमें तपाया है देह जिसने तैसेही मत हणो ऐसी है प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहते हैं ॥ इति टीकार्थः ॥

अब उत्तर कारजी अच्छी तरह से विचारो कि टीका में तो सिल्लांगाचार्य जी अच्छी तरह से व्याख्या करते हैं कि श्री

'महावीर स्वामी त्रस स्थावर सर्व जीवों की क्षेम शांति रक्षा करने का स्वभाव है जिनका ऐसे हैं और जीवना, वंछे विना जीवरक्षा होती ही नहीं. तो कहो भाई अब गुरुजी ने तुमको यह ऊटपटांग अर्थ का कथन कहां से सिखाया. कि जीव के जीवन वास्ते श्री महावीर जी उपदेश नहीं देते हैं. वाहरे समझ. खैर अब भी गुरु जी के कथन के साथ मत चलो और शास्त्र देख के मति शुद्ध करो.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि भगवान् उपदेश देवे सो गुण वास्ते देवे. तो त्रस स्थावर के गुण क्या हुवा, गुण तो हिंसा नहीं करे उसको हुवा.

उत्तरपक्ष-हे भाई त्रस स्थावर की रक्षा शांति को करे तब ही रक्षक के गुण होवे त्रस स्थावर जीव के तो अपने प्राण बचने का गुण हुवा. और त्रस स्थावर को बचाने वाला को करुणा दया हुई. और दया से संसार पइत करनादिक गुण हुवा. जिसमे सूत्र के मूलपाठ में लिखा कि श्री महावीर त्रस्र स्थावर जीव को क्षेमशांति रक्षा के कारण हारे हैं. और दूसरे को भी क्षेमशांति रक्षा करने रूप धर्म उपदेश देते हैं सो जेकर तुमको भगवान् का उपदेश की आस्ता होवे तो जीवरक्षा का धर्म श्रद्धो परन्तु जीव रक्षा से द्वेष भाव करके जीव रक्षा में पाप मत कहो. जैसे जीव मारणे वाला जीव के प्राण वियोग करणे रूप त्रस स्थावर जीव के अवगुण करता है. तिससे हनने वाले को भी दुख दुर्गति रूप आदिक संसार में परिभ्रमण का अवगुण होता है वैसे ही त्रस स्थावर जीव की रक्षा करने वाला त्रस स्थावर के प्राण बचाने का गुण करता है तो

रक्षा करने वाला भी संसार समुद्र से तिरता है ऐसी शुद्ध श्रद्धा भव्य प्राणी को धारन करना चाहिये तथा तुम्हारा लेख है कि (८) ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे के तीसरे उद्देश में कहा कि कोई जीव किसी जीव को मारता देखे तो धर्म उपदेश देकर समझावे अथवा मौन रक्खे तथा उठकर एकांत चला जावे यह तीन बोल कहे हैं परंतु जबरन छोड़ाना नहीं कहा है (इसका प्रत्युत्तर) यह लेख भी तुम्हारा तुम्हारी श्रद्धा को काटने वाला है क्योंकि तुम्हारे गुरु भीषनजी ने तो कहा है कि कोई जीव पर पग रखता होवे और दूसरा उसको चेता देवे कि जीव मत मारे तो उस चेताने वाले को तुम्हारे गुरु भीषनजी पाप लगना बताते हैं तो तुम्हारी पुस्तक में अनुकंपा की ढाल चौथी भीषनजी कृत में लिखा है सो देख लेना और तुम्हारा लेख तो मरते जीव को उपदेश देके छोड़ाने का सूत्र ठाणांगजी के तीसरा ठाणा से तुमने लिखा है और भीषनजी का मानना मरते जीव को छोड़ाने का उपदेश देवे उसमें भी पाप है जिसका कथन खुलासा वार हमने भीषनजी कृत ढालो से ही नम्बर पांचवा में लिखा है सो हे भाई तुम अपना ही लेख पर कायम रहके जीव बचाने में धर्म की श्रद्धा करो और अनर्थ श्रद्धा को दूर हटावो और उपदेश दे के जीव को बचाना ठीक है परंतु उपदेश भी जैसे को जैसा दिया जाता है क्योंकि देखो जब कोई श्वान साधु के ऊपर भचक्क करने को आवे तो उसको क्या उपदेश देवे तथा साधु की गोचरी कुत्ता खावे तो उस वक्त क्या कहे कि हे भाई कुत्ता साधु की गोचरी मत खा. या साधु का भचक्क मत कर क्या यह उपदेश श्वान को लगे

पूर्वपक्ष—श्वान को तो धुत्कारा देनादिक ही उपदेश होता है.

उत्तरपक्ष—बस ऐसे ही जीव बचाने में भी जो उपदेश से समझ सके तो उपदेश देवे और धुत्कारादिक से भी जीव छूटता देखे तो वह भी जीव के बचाने में उपदेश रूप है करुणा रूप है.

पूर्वपक्ष—धुत्कारादिक से उसकी आत्मा दुःख पावे और जीव के छुड़ाने में गुण क्या होवे,

उत्तरपक्ष—जीव छुड़ाने वाले को तो करुणा का भणाम है परन्तु दुःख देने के नहीं क्योंकि कोई लड्डवादिक खाते होवे तो नहीं छोडावे किन्तु जीव मरता छोडावे तो छोडाने वाले को लाभ हुवा जैसे कोई माता पुत्र को कठिन कह के दवा पिलाती है तो भी वह माता कहलाती है. किन्तु वैरण नहीं. तथा जैसे कोई हकीम बीमार को धमकी दे के कडुवी दवा देवे तो वह उपकारी है. किन्तु वैरी नहीं वैसे जीव बचाने वाला भी कठिन धमकी दे के उसकी हिंसा छोडावे तो गुण का ही कारण है. उस छोडाने वाले को शत्रु नहीं समझना चाहिये तथा तुम्हारा लेख है कि (८) सूत्र उपासक दशा के पहिला अध्ययन में ५ अतिचार श्रावक को बताये जिसमें जीवनामरणा वंछना वर्जा है. तथा (८) साधु और श्रावक दोनों वक्त प्रातःकाल सायंकाल पडिकमणों करे जिसमें पांच संलेषणा की यह पाठी पढ़ी जाती है इह, लोगा, संसभोगा, परलोगा, संसभोगा, जीवियासंसे, संसभोगा, मरणासंसे, संसभोगा, कामभोगा, संसभोगा, मह्य, मुज्ज, हुज्ज, मरणंते, तस्स, मिच्छामि, दुक्कडं, ॥ इस में अपना जीवना मरना तथा अन्य लोको का जीवना मरना वंछा होवे तो मिच्छामि दुक्कडं लेवे है. यदि जीवने मरणे

की वांछा में किसी प्रकार का प्रायश्चित न होता तो संलेषणा में मिच्छामि दुक्कडं लेने की क्या जरूरत है (इन दोनों उत्तरों का प्रत्युत्तर) हे मित्रो यह गोलमाल कथन कुछ सूत्र का पाठ छिपा के अर्थ को अनर्थ करके तुमने लिख दिया परन्तु हम तुम से पूछते हैं कि तुम्हारे साधूजी जीवना वंछे कि नहीं.

पूर्वपक्ष—हमको तो कहते हैं कि जीवना वंछने में पाप है तो वह कैसे वंछते होवेंगे.

उत्तरपक्ष—हे मित्र इतना भी तुमको ज्ञान नहीं कि जो तुम्हारे साधू की जीवने की आशा नहीं तो फिर अन्न क्यों खावे धूप से छाया में क्यों आवे सिंह सांड सर्पादिक को देख के इधर उधर क्यों टरे जिसके जीवने की वांछा नहीं होवे तो फिर इतने काम क्यों करे रोग आवे तो दवा क्यों लेवो.

पूर्वपक्ष—यह काम तो संयम पालने को करते हैं.

उत्तरपक्ष—जेकर आहारादिक नहीं करे तो क्या संयम नष्ट होजाता है भगवंत ने तो जो साधू वैराग्य भाव से अन्न त्यागे तो महा निर्जरा कही है तो फिर तुम्हारे साधू आहार क्यों करते हैं देखो रोज आहारादिक जीवने वास्ते खाने और जीवना वंछने में पाप की श्रद्धा रक्खो इस से तो रोज पाप जान जान के करवा और सांम को मिच्छामि दुक्कडा लेना यह साधूपना कैसे रहवे. फिर तुम्हारे साधू की तो यह प्ररूपणा है कि जाण के एक दोष भी लगावे उस में साधूपना नहीं तो फिर तुम्हारे साधू जाण जाण के रोज आहार करते हैं चेले चेली को करते हैं दवा आदिक खाते हैं सांड सर्पादिक से झटपट टल जाते हैं तो यह जाण जाण के जीवना वंछते हैं

और जीवना वंछने में पाप भी कहते हैं तो फिर तुम्हारी श्रद्धा॰ नुसार तो तुम्हारे गुरु में साधुपणा कैसे रहा और जो साधू भी जीवने के लिये आहारादिक कायपत्न करते हैं तो फिर श्रावक का क्या कहना इससे श्रावकपना भी कैसे रहा वाहरे वाह श्रद्धा तुम्हारी कि जिससे अपणे कहने से ही अपने मत में साधू श्रावक का अभाव करा.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो संयम जीवितव्य वंछते हैं इस॰ लिये आहार करते हैं.

उत्तरपक्ष–हे मित्र एक बात तो तुम्हारे मुख से ही विपरीत ठहरी कि जो तुमने लिखा कि साधू जीवणा वंछे नहीं वंछे तो मायाश्चित्त का मिच्छामि दुकडा लेते हैं और यहां कहते हो कि हमारे गुरु संयम जीवितव्य वंछते हैं यह विपरीत और विरुद्ध ठहरी.

पूर्वपक्ष–आहार पानी दवा वगैरह तो श्रीभगवान के शिष्य साधु मुनि भी करते थे और साधू सर्पादिक से डरते थे तो वह क्या जीवणे के वास्ते करते थे.

उत्तरपक्ष–हां भाई जीवने के लिये भी आहारादिक करते थे सांई सर्पादिक से डरते थे.

पूर्वपक्ष–तो अब हमको सूत्रपाठ से दिखलावो कि साधू को जीवने वास्ते आहार करना.

उत्तरपक्ष हां भाई सुनिये दिखलाते हैं सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संवरद्वार का चौथी भावना का पाठ.

भुंजेज्जा, पाणधारण, ठ्याए, इति ॥ अस्यार्थः आहार लिये प्राण धारवाने अर्थे.

टीका–तथा भोजने कारणांतर माह-प्राणधारणार्थं तथा-जीवितव्य संरक्षणायेत्यर्थः ॥

टीकार्थः–तैसेही और भी भोजन करणे का कारण कहते हैं प्राण धारण पूर्वक जीवन आयुष्य की रक्षा करने वास्ते । इति टीकार्थः ॥

अब देखो यहां खुलासा पाठ है कि साधु को प्राण धारणार्थ यानी जीवने के वास्ते आहार करना तो फिर तुम साधु को जीवणा वंछने में पाप कैसे कहते हो तथा सूत्र उत्तराध्ययन के २६ में अध्ययन की ३३ मीं गाथा में भी यह अधिकार है कि मुनि को जीवितव्य के निमित्त आहार करना. तथा च सूत्रपाठ (तहपाण वत्तियाए) यहां भी कहा कि प्राण धारने के अर्थे साधु आहार करे तथा सूत्र ठाणांग का पांचवा ठाणा में ॥ सूत्रपाठ ॥ हयाणवा, गयस्सवा, दुट्ठस्सवा, आगच्छ, मास्सभीय, रायंत, उरमणु, पवेसेझा, इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः–घोड़ा हाथी दुष्ट विकराल आवतो थको देखे ते थी वीहतो थको राजारा अंतेउर में पैसे इति ॥

देखो यहां भी कहा कि साधु घोड़ादिक दुष्ट को देख के डरता हुवा राजा का अंतपुर में प्रवेश करे तो आज्ञा उल्लंघे नहीं तथा ठाणांग के पांचवे ठाणे दूसरा उद्देशा में पांच कारणे साधु चोमासो बैठां पिछे इस्यादिक पडिकम्या पिछे पछे विहार कर जाय तो आज्ञा उल्लंघे नहीं ॥ तथा च सूत्रपाठ.

सूत्र भयंसिवा दुब्भिक्खं सिवा अस्यार्थः ॥ राजादिक के भये तथा वैरी के भय तथा दुर्भिक्ष के अन्दर भिक्षा नहीं मिले तो मुनि देखो यहां भी कहा कि भय के वास्ते तथा भिक्षा न

मिले तो चौमासा में विहार कर जाना कहा तो जीवना नहीं बंधने हो वे तो फिर विहार क्यों कर जावे तथा ठाणांग सूत्र का पंचम ठाणे का उद्देश दूसरा में पाठ है सो लिखते हैं सूत्र निग्गंथे सेयंसिवा, पंकंसिवा, पणगंसिवा, उदयंसिवा, उकस माणिवा, उवुज्झमाणिवा, गिण्हमाणेनिग्गंथी माणेवा, अवलंब माणेवा, णाइक्कमइ ७ इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः साधु साध्वी को जल सहित जेकादानीसा वृद्धिये (पंकंकना) का दाने विषे (पणगं के) अनेरा ठामनी भाविनी पानलो अने ढीलो कादव अथवा फुलण (उदगं के) पाणी माहीं (उकस्समाणी के) पंकने विषे अनइ पत्रकने विषे लपसती (उवु० के०) उदक ने थोजे ताणी ती ग्रहितो अवलंबन देतो थको आज्ञा उल्लंघ नहीं इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में तो ऐसा पाठ है कि डूबती थकी साध्वी को साधु पकड़ लेवे तो भगवान की आज्ञा उल्लंघे नहीं. पर देखो प्रत्यक्ष साध्वी के जीवने के वास्ते साधु साध्वी को जल में पकड़े अब यह सूत्र साध्वी इसने साधु को जीवना बंधने में दिखाई है सो समझ के सत्यस्वरूपना ग्रहण करो.

पूर्वपक्ष—तुम तो सूत्र से जीवना बताते हो और हमारे गुरुजी ने मनेरला का पाठ बताया यह कैसा है क्योंकि सूत्र विरुद्ध तो होता ही नहीं जो एक जगह तो कह दिया कि जीवना बंद तो प्रायश्चित और दूसरी जगह कह दिया कि जीवने के वास्ते आहार करे तो इसको यह मंनेरला का पाठ टीका सहित दिखाओ

उत्तरपक्ष—हाँ भाइ सूत्र विरुद्ध नहीं होता है. परन्तु जो

तुमने उपासक दशा की आवश्यक की साक्षी गोलमाल लिख दी वह सूत्र से विरुद्ध है क्योंकि संलेषणा तो मरणांतक काल की यानी मृत्यु आवे उस अवसर की कही है और तुम ने हमेश का लिख दिया और है तो अपना सुख दुख का विशेषण से तुमने लिखा जीवना मरणा नहीं वंछना सो विरुद्ध है अब हम सूत्र का पाठ टीका सहित लिखते हैं सो श्रवण करो.

सूत्रपाठ—अपच्छिम, मारणंतिय, संलेहणा, ज्झूसणा, राहणाए, पंच, अइयारा, जाणियव्वा, न, समायरियव्वा, तंजहा, इहलोगा, संसप्पओगे, १ परलोगा, संसप्पओगे, २ जीविया, संसप्पओगे, ३ मरणा, संसप्पओगे, ४ कामभोगा, संसप्पओगे, ५ इति उपासक दशा का अध्ययन पहिला ॥

अस्यार्थः—अपच्छिम छेहडलो आउखे पूर्ण होता संलहणा कहीजे. तिणझुसणा अण सण अराद्धिवाने विषे श्रमणोपासक श्रावक ने ५ अतिचार जाणवा. परं अंगीकार करणा नहीं. ते केहा इहलोके अण सण थको चिंतवे मनुष्य में राजमंत्री हुइं. ज्यो परलोकरे विषे चिंतवे हुं इन्द्र होइज्यो ? अणसणा लीधे पूजा सत्कार देखी जीववुं वांछे. जे हुं घणुं जीवुं तो श्लाघा घणी होवे. सरीरे पीड़ा देखी ने चिंतवे. मरण वेगो आवे तो भलो. शब्द रूप रस गंध स्पर्श ५ प्रकारना काम भोग चिंते. इति सूत्रार्थः ॥

अब टीका कहते हैं सो ध्यान लगा के श्रवण करिये ।

टीका जीविना शंसा प्रयोगो जीवितं प्राणधारणं तदा शंसयो स्तदभिलाषस्य प्रयोगो यदि बहु कालं मह जीवेयं मिति अयं हि संलेखनावान् कश्चिद्वस्त्रमाल्य पुस्तक वाचनादि पूजा

दर्शनाद्बहु परिवारा वलोकना ल्लोक श्लाघा श्रवणा च्चैवं मन्ये यथा जीवित मेव श्रेयः प्रतिपन्नानशन स्यापि यतएवं वि मदुदेशन विभूतिर्वर्त्तत इति ३ मरणा शंसा प्रयोगः उक्त स्वरू पूजाद्य भावे भावे यन्यसौ. यदि शीघ्र म्रीयेह मिति स्वरू इति टीका ॥

अस्यार्थः –जीवित नाम प्राणधारण तिसकी जो अभिला पा तिसका जो प्रयोग यानी बहुत काल मैं जी जाउं ऐसा मं मानना उसको प्रयोग कहते हैं. यह जो संलेखना वाला (संथा रावाला) कोई वस्त्र माल्य पुस्तक स्तुत्यादियों की पूजा देख से और बहुत परिवार के देखेने से लोक की श्लाघा सुनने से कोई संलखना वाला ऐसा मानता है प्राप्त किया है अनशन (संथारा) जिसने उस पुरुष को जीवना ही कल्याण कारक है. इस प्रकार का विचार से विभूति नहीं बनेती है (सिद्धि रूप ऐश्वर्य नहीं बनता है) ३ पहिले कहा है स्वरूप जिसका उस पूजा के अभाव में भावना करना है संलेखनावान् यदि शीघ्र मरजाऊं ऐसी भावना करता है ॥ ४ ॥ इति टीकार्थः।

अब देखो आठ सूत्र का पाठ अर्थ टीका का तो यह लेख है कि पूजा श्लाघा के लिये जीवना नहीं वाञ्छना संथारा वाले को और पूजा श्लाघा नहीं होने से या दुःख उत्पन्न होने से मरण नहीं वाञ्छना मथारावान यानी अनशनवान को। अब देखो सूत्र का पाठ अर्थ टीका का तो यह लेख है कि सुख दुःख में आशा तृष्णा नहीं करणी और तुमने हे भाई ऐसा गोलमाल लिख दिया है कि जीवना वंछने से ही साधु श्रावक को अधर्म आता है और इस लेख से तुम्हारे मत में साधु

श्रावक का ही अभाव होता है परन्तु तात्पर्य यह है कि पूजा श्लाघा कामभोगादिक न से तो जीवना नहीं वंछना. ऐसा अर्थ सूत्रों का परमार्थ सहित है. और दया के वास्ते परजीव की करुणा रूप जीवना वंछना वोही अपना संयम जीवितव्य वंछना है. बस यह लेख सिद्धांत से यथार्थ है और जो तुम्हारे सरीसे स्वकपोल कल्पित अर्थ करने से अनेक सूत्र के पाठ को धक्का लगता है और साधु श्रावक का अभाव होता है. सो विचार कर के सूत्रार्थ टीका से सापेक्ष अर्थ करना उचित है.

पूर्वपक्ष–संयम जीवितव्य तो हमारे गुरुजी भी इच्छते होंगे. क्योंकि आहार औषधादिक बहुत से यत्न करते हैं.

उत्तर पक्ष–हे भाई तुम्हारे गुरुजी का मानना ऐसा है तो फिर तुमने लिखा कि साधु अपना जीवना वंछे तो प्रायश्चित्त आवे. तो वह लिखना असत्य ठहरेगा. और साधु को जीवना वंछना नहीं मानोगे तो साधु जीवने के लिये आहार करते हैं और औषध लेते हैं हाथी घोड़ादिक से टरते हैं उनमें तुम्हारी श्रद्धा से, साधुपना का अभाव होजावेगा यानी तुम्हारी श्रद्धा परस्पर विरुद्ध होजावेगी और सिद्धांत का सापेक्ष अर्थ है वह श्रद्धेगा और अपनी छपाई हुई अशुद्धि को मेटेगा सो संसार समुद्र से तिरेगा. इति तथा तुम्हारा लेख है कि श्री भगवान के दस श्रावक उत्कृष्ट एका भवतारी हुये जिन में से चूलनी पिया सुरदेव चूल शतक मकडाल यह ४ श्रावक पोषा में थे जिनको चलायमान करने के लिये मिथ्या दृष्टि देवताओं ने माया से उकलते तेल में इनके पुत्र माता स्त्री आदिक को पड़ते दिखाये जिससे यह चलायमान हुए उस वक्त उनको माता वा स्त्री ने

पलायमान होने का शब्द सुनके उनके निकट आके कहा कि (भग्ग, पौषा, भग्ग, नेमा,) जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तेरा पौषा भांगा. यहां करुणा करने से व्रत और पौषा भांगने का कहा है फिर प्रायश्चित्त ले के शुद्ध हुए (आपके प्रश्नों का उत्तर तो सूत्रों के प्रमाण देकर के ऊपर लिख आये हैं वह आप लोग सरल भाव से पक्षपात रहित होकर अवश्य मानेंगे) इति यह तेरेपंथियों का लेख है. (इस का प्रत्युत्तर) हे भाई यह तुम्हारा लिखना सूत्र से अत्यन्त विरुद्ध है. सूत्र में ऐसा कहीं भी पाठ अर्थ टीका में नहीं कि करुणा करने से तुम्हारा व्रत भांगा और तुमने लिख दिया कि करुणा करने से व्रत और पौषा का भंग होना है यह सूत्र का नाम ले के मिथ्या ही लिख दिया.

पूर्वपक्ष जब भग्ग पौषा सूत्र में कैसे कहा. किस कारण से उनका पौषा भंग होना कहा.

उत्तरपक्ष हे भाई तुमने प्रथम तो सूत्र का मूल पाठ संपूर्ण लिखा ही नहीं और किंचित लिखा सो भ्रमकर है क्योंकि (भग्गवया) यह पाठ तो छोड़ ही दिये और (भग्गणियमे) पहिले का पाठ है और (भग्गपोसहे) यह पीछे का पाठ है सो तुमने न जाने क्या जान के उलट पलट यानी पहिले का पीछे और पीछे का पहिले लिखा है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुओं क्या सूत्रपाठ नहीं पढ़े हैं जो इसको उलट पलट लिखाया

उत्तरपक्ष गुरुओं की विद्या तो सूत्र देखने से मालुम हो जायेगी कि सूत्र में उलट पलट है कि नहीं या तुम्हारे गुरु

वृत्तान्त कहा तब माता बोली कि हे पुत्र तेरे को विपरीत देव का दर्शन हुवा सो अब पाठ से कहते हैं.

सूत्र पाठ–एसखं, तुमे, विदरिसणे, दिठे, तएणं, तुमं, इयाणि, भग्गवया, भग्गणियमे, भग्गपोसहे, विहरासि ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अस्य टीका–एतच्चत्वया विदर्शनं विरूपाकारं विभीषिकादि दृष्ट मवलोकित मिति भग्गवइति भग्नव्रतः स्थूलप्राणातिपात विरतेर्भावतो भग्नत्वाच द्विनाशनार्थं कोपेनोध्द्रावनात् सापराधस्यापि व्रत विषयी कृतत्वात् भग्न नियमः कोपोदये नोत्तर गुणस्य क्रोधाभिग्रह रूपस्य भग्नत्वात् भग्नपोषधो व्यापार पोषध भंगात् ॥ इति टीका ॥

अथ टीकार्थ–ऐ जो तैंने विरूपाकार भयंकर डरावने वाला देखा इससे भग्नव्रत स्थूलप्राणातिपात की जो विरति यानि निवृत्तिपणा उसके होने से यानी स्थूल जीव का हनने का नियम तुम्हारे होने से उसको यानी माता का विनाश करने वाले पुरुष को विनाश करने वास्ते कोप से दौड़ने से अपराध करके सहित वह पुरुष था तो भी व्रत में कोप करने से (भग्नः) कोप का उदय करके उत्तर गुण जो क्रोध का दूर करने वाला नियम उसका भग्न होने से हनन व्यापार करके पोषा का भंग होने से इत्यर्थः इति टीकार्थः अब देखो सूत्र में तो ऐसा खुलासा है कि चुलनी पीता श्रावक को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होने से उस माता को विनाश करने वाला पुरुष को हनने को दौड़े वो पुरुष अपराधी था तो भी पोषा में नहीं मारणा करने और मारणे को उठे जिससे व्रत भांगा और तुमने लिख दिया कि जीवन

विषय तेरा व्रत भांगा यानी करुणा करने से व्रत पौंषा भांगा ऐसा बेढंग ऊटपटांग अर्थ कहां से लाये. तुम्हारे भ्रम विध्वंसन के कर्ता ने भी ऐसा अर्थ नहीं करा कि जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तो तुम क्या नवीन अलौकिक विद्वान उठे. वाह रे भाई क्या तुमको कहें तुमने सिद्धांत विरुद्ध भाषण करने में पूर्ण कमर बांधी. परन्तु थोड़ासा तो इस लोक परलोक का भय रक्खो. यदि कोई पूछेगा कि ऐसा अर्थ कहां लिखा है तो तिस वक्त क्या उत्तर देवोगे. या इस असत्य अर्थ का फल हमको परलोक में कैसा होवेगा. वाहरे भाई तुम्हारी समझ.

पूर्वपक्ष–क्रोध करके मारने को उठने से पौषा भांगा. ऐसा अर्थ मूलपाठ से निकलता है कि नहीं.

उत्तरपक्ष–हे भाई मूलपाठ बोल रहा है कि महया २ सद्देणं, कोलाहले कए ऐसा पाठ है कि मोटे २ शब्द से चुलनी पिया ने कोलाहल शब्द किया. यह तो स्पष्ट रीति से थोड़ासा समझदार भी समझ सक्ता है कि क्रोध आया विना मोटा २ शब्द से कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तथा पुरुष के भरोसे स्थंभ पकड़ के कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तो निश्चय जानो कि यह तो सर्व काम क्रोध उत्पन्न होने से ही हुये हैं. सो ही मूलपाठ की टीका में लिखा है कि स्थूल प्राणातिपात की वृत्ति श्रावक के थी. और सापराधी को मारणे की वृत्ति नहीं थी परन्तु चुलनी पियाजी पौषा करे हुये थे. और पौषा में सापराधी को भी मारणा नहीं कल्पे. और चुलनी पियाजी माता को मारणे वाला ऐसा सापराधी पुरुष को मारने को उठे इस

से उनका व्रत भांगा और पौंपा में नियम था सो भी क्रोध करने से भग्न हुवा. ऐसे ही पौंपा भी भग्न हुवा. सो ही मूत्र का सत्य अर्थ है. परन्तु जीवन विषय तेरा व्रत भांगा. यानी करुणा करने से व्रत नियम पौंपा भांगा. ऐसा तो मूत्र अर्थ टीका में नाम मात्र भी नहीं है. तो तुम्हारा लिखना ऊटपटांग अर्थ कभी नहीं मिलता. और करुणा करके व्रत भंग कहणा ऐसा है कि जैसे अमृत पीने में मरणा कहना तथा तुम हठ करके कहो कि माता की रक्षा करने से व्रत भांगा तो यह किसी प्रमाण से सिद्ध होता ही नहीं क्योंकि रक्षा तो दश ही श्रावक कुटुम्ब परिवार दास दासी आदिक के करते थे. तो फिर उन की रक्षा से व्रत क्यों नहीं भांगे कदाचित तुम व्रत भांगणे से एक पौंपा ही भांगा कहो तो वह भी नहीं मिले. क्योंकि टीका में स्थूल प्राणातिपात वेरमण व्रत का भंग हुवा लिखा है और मूल सूत्र में भी व्रत नियम और पौंपा तीनों अलग २ किये हैं और तीनों का अलग अलग भंग होना लिखा है. इससे व्रत भंग से स्थूल प्राणातिपात वेरमण का ही ग्रहण होता है और स्थूल प्राणातिपात वेरमण का भंग तो मारणे से ही होता है परन्तु रक्षा करने से कभी सिद्ध नहीं होता. बस सत्य तो यही है कि क्रोध वश हो के चुलनी पीताजी मारणे को उठे जिनसे ही उनका व्रत भांगा है परन्तु करुणा से नहीं. इति ॥

अब अच्छी तरह से विचारो कि तुम्हारी सूत्र की साक्षी बतलानी सर्व विरुद्ध है उसको हमने अच्छी तरह से मत्युत्तर में लिखी है मूलपाठ टीका टीपिकादिक से लिखी है. तो यह तुम्हारा लेख है कि आपका प्रश्न का उत्तर तो हम सूत्रों का

प्रमाण देकर ऊपर लिखे आये हैं यह लिखना तुम्हारा है. परन्तु यह तुम्हारा सूत्रों का प्रमाण देना सिद्धांतों से अत्यन्त विरुद्ध है केई बातें तो सूत्र में हैं ही नहीं तो भी तुमने सूत्र का नाम लेके लिख दी. केई विरुद्ध लिखी. केई जिसप्रश्न का उत्तर से कुछ ताल्लुक ही नहीं. ऐसी साक्षी लिखी है. सो प्रश्नों का उत्तर तो एकभी नहीं आया है. किन्तु आलपाल है. तथा तुम्हारा लेख है कि धर्म को समझना यह काम बुद्धिमान विवेकी पुरुषों का है. यह बात हमने बहुत अच्छी समझी है इससे हम इन प्रत्युत्तरों में तुम्हारी तर्फ से पूर्वपक्ष उठा उठा के कथन विस्तार से किया है. खूब खुलासा किया है. सूत्र का पाठ अर्थ टीका से प्रश्नोत्तर का प्रत्युत्तर लिखा है तिसको जरूर बुद्धिमान पुरुषों तुम धर्म के प्रेमी होवो तो अच्छी तरह से पढ़के सत्य धर्म की श्रद्धा को धारण करना चाहिये. यह ही आत्मा का परम कल्याण कारक मार्ग है. इतिश्री प्रत्युत्तर दीपिकायां सप्तम प्रश्नका उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥ ॥ श्री वीतरागो जयति इति सप्तम प्रश्न समाप्तः ॥ तथा प्रथम भाग संपूर्ण ॥ इस में भूल चूक रही होवो अनंत सिद्ध भगवान की साख से मिच्छामी दुकडं है ॥

तेरापंथियों के दिये उत्तर बिलकुल मिथ्या है उसका १ दूसरे फरेक के साधूजी का किया हुवा फैसला ।

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥ अब पाठक जन सज्जन पुरुषों से बाइस समुदाय के श्रावकों का आखिरी निवेदन है कि हमारे सात प्रश्नों के उत्तर जो तेरेपंथियों की तर्फ से प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में छपवाये हैं वह उत्तर सिद्धांत से विपरीत है. यानि असत्य है जिसका खुलासा वार सिद्धांत के मूलपाठ अर्थ टीका दीपिका आदिक के प्रमाण से प्रकट इस पुस्तक में दिखलाया है कि इस वजह से तेरापंथियों का उत्तर विपरीत है और तिसमें भी विशेषता यह है कि तेरेपंथियों ने जो उत्तर दिये हैं तिसमें सूत्र की साक्षियें केवल नाम रूप ही लिखी है तिसमें भी कई एक साक्षियों में तो सूत्र का अच्छता ही नाम लिख दिया है और हमारी तरफ से जो प्रत्युत्तर में साक्षियें दी है वह मूलपाठ अर्थ टीका दीपिका का प्रकट लेख दिखलाया है. तिससे भव्य जनों से और हमारे मित्र तेरेपंथियों से हित पूर्वक निवेदन है कि हे भव्यों तुम पक्षपात छोड़ के मध्यस्थ दृष्टि से हमारे प्रत्युत्तर को देख के विचारना कि तुम्हारा उत्तर का देना सिद्धांत से विपरीत है कि नहीं और फिर एक प्रत्यक्ष प्रमाण से विचारना कि जो तुमने प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में शुरु शुरु पहिला प्रश्न का उत्तर में श्रीभगवान के चूकने के विषय में लिखा है कि श्रीभगवान महावीर स्वामी ने दश स्वप्न देखे वह स्वप्न भगवान को मोहनी कर्म के उदय से आये. जिससे

भगवान चूके जिसका सत्यासत्य का निर्णय के लिये मारवाड़
देश का जयतारण शहर में तुम्हारे तेरापंथियों के मत के माने
हुये तुम्हारे पूज्य डालचंदजी के चेले फौजमलजी कि जिनको
तुम विद्वान गिणते हो जिनके साथ हमारे बाईस सम्प्रदाय में
के श्रीहुकमीचंदजी महाराज के सम्प्रदाय के पूज्यजी महाराज
श्री श्रीलालजी महाराज के साधुजी महाराज श्रीमोतीलालजी
श्रीजवाहिरलालजी कि जिनका नाम तुमने तुम्हारे प्रश्नोत्तर
नामक पुस्तक में लिखा है उनने शास्त्रार्थ यानी चर्चा संवत्
१९६० का पौष वदी पंचमी से लेके पौष सुदी पूर्णिमा तक
दोनों मत के ४ सभ्यों को मुकर्रर करके लेख द्वारा न्याय
कलम के कायदे से शास्त्रार्थ किया जिसका आखीर फैसला
यानी हार होने के वास्ते दोनों तर्फ से चारोंही सभ्यों ने पूछ
लिया कि यह आप दोनों का सवाल जबाब को कोई सिद्धांत
का जानकार पंडित के पास भेज के फैसला मंगावे वह और
दोनों तर्फ मंजूर करेंगे जिसपर यह बात मंजूर हुई कि कोई
जिन जैन सिद्धांत का जानने पंडित से इसका फैसला करावे
और जो वह पंडित फैसला करें वह हम को मंजूर है तब चारों
सभ्यों ने जयपुर शहर निवासी पंडित श्री शिवजीरामजी
मंत्रीजी से [illegible]
दोनों पक्ष के सवाल जबाब को भेज के [illegible] जिसने पंडित
मंत्रीजी शिवजीरामजी ने [illegible] ने फैसला या यह [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उसी माफीक लेख पर हस्ताचर करके सर्व सभा को दुट यानी खुलासा सुनाया. दोनों तरफ लेख लिख के दिये हैं तिसका संपूर्ण हाल सर्व जैतारन वालों को मालूम है सो जान लेना. और पत्त छोड़ के विचारना कि जब तुम्हारा प्रश्नोत्तर का पहिला प्रश्नका उत्तर देना भी प्रत्यत्त शास्त्रार्थ करके दूसरे फिरके के पंडित से भी हमने गलत कर दिया है. तो हे भव्यों ! अबतो तुम पत्त छोड़ के विचारना कि पहिला पश्न का उत्तर जो तुमने दिया. वह असत्य यानी गलत होगया. तो अब आगे के प्रश्न के उत्तर सत्य कहां से होंगे. जैसे चांवल के हंडे का ऊपर का कण कचा है तो फिर नीचे के चांवल पके यानि सीजे कहां से होंगे. ऐसे ही आपने हमारे प्रश्नों का पहिला उत्तर भी गलत दिया तो आगे के तुम्हारे उत्तर सत्य कहां से है अपितु नही सो इस पुस्तक में अच्छी तरह से दिखलाये हैं. तिससे हमारा आप लोगों को हित दृष्टि से कहना है कि जो आप लोगों को संसार समुद्र दुःखों से पारावार करे ऐसा श्री सर्वज्ञ वीतराग देव का प्ररूपा जैन धर्म तिसकी सत्य श्रद्धा को धारन करने की इच्छा होवे तो इस पुस्तक को सरलता से देखना और सत्य को धारन करना परंतु जो सत्य बातों को आप लोगों के हित के लिये यथा योग्य दिखलाई है वह आप के हित के लिये है. परन्तु आप लोग उस सत्य बात को उलटी समझ के हित दृष्टि छोड़ के द्वेषभाव को प्राप्त मत होना. क्योंकि प्रथम तो जैनधर्म की यह रीति नहीं है कि किसी को विरुद्ध वाक्य कहके रंज पहुंचाना. तो फिर आप लोग तो जैनी नाम धारक होने से हमारे प्रिय मित्र हो तो आपके लिये तो हम विरुद्ध

वाक्य कहें काहे को. परन्तु सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने का तो धर्म का कायदा ही है. सो वैसेही इस पुस्तक में दर्शाया है. तिसपर भी आप को असह्य लगे तो हम अपनी तर्फ से तुमको चमाते हैं यानी क्षमा मांगते हैं ॥

अथ दूसरा भाग ।

अव बाईस संप्रदाय की तर्फ से तेरेपंथी श्वेतांबरियों को विदित होवे कि हमारे सात प्रश्न का उत्तर तो तुम्हारी तर्फ से संतोष कारक कुछ भी नहीं दिया. सो हमने प्रत्युत्तर में दिखलाया है. अब हमारे सात प्रश्नों का उत्तर संतोष कारक नहीं दिया तथापि हमसे जो तुमने ऊटपटांग सात प्रश्न पूछे है उनका उत्तर देते है और यह भी दिखाते है कि तुम्हारा लेख तुम्हारी प्रतिज्ञा से भी कैसा विरुद्ध है सो प्रश्नकर्ताजी मध्यस्थ भाव से अवलोकन कर सत्य धारन करनाजी. प्रथम तुम्हारा प्रश्न पूछने की आदि में यह लिखना है कि हमारी तर्फ से यानि तेहरे पंथियों की तर्फ से आपही के प्रश्नों के यानि बाईस संप्रदाय के प्रश्नों के अंतर्गत हम प्रश्न पूछते है ॥

"समीक्षा" हे तेरे पंथियों जरा सोचना कि तुमने प्रतिज्ञा तो यह करी कि हम आपके प्रश्नों के अंतर्गत ही प्रश्न पूछते हैं और प्रश्न हमारे प्रश्नों से तुमने विलक्षण यानि और ही तरह के किये हैं यानि पूछे है तो हमको निश्चय हुवा कि तुम लोगों को सत्य असत्य उलट पलट अपनी प्रतिज्ञा से विरुद्ध लेख लिखने का भी ख्याल नहीं कि अपनी प्रतिज्ञा तो किस प्रश्न पूछने की करी है और लेख में कैसा प्रश्न लिखते है तथापि खैर. हमने सोचा कि विपरीत ज्ञान का स्वभाव ऐसाही होता है अब तु-

म्हारा प्रश्न और तुम्हारी प्रतिज्ञा से तुम्हारा पतित होना. तिसकी समीक्षा. और तुम्हारा प्रश्नों का उत्तर नीचे दिखाते हैं ॥

प्रश्न पहिला–छद्मस्थपने में नहीं चूकने का सूत्रपाठ आप लोग बतलावो—

समीक्षा–देखो भाई यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा हमारे प्रश्न से विरुद्ध है. क्योंकि हमारा प्रश्न तो ऐसा था कि श्री भगवान् महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में चूके बतलाते हो सो सूत्र का पाठ दिखलावो. और अब आप लोगों ने प्रतिज्ञा तो हमारे प्रश्न के अंतर्गत प्रश्न पूछने की करी. और पूछा समुच्चय कि छद्मस्थ नहीं चूकने का पाठ दिखलावो. तो यह तुम्हारा तुम्हारी प्रतिज्ञा से पतितपना है. क्योंकि हमारा प्रश्न का अंतर्गत प्रश्न तो ऐसा होना है कि महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में नहीं चूकने का पाठ दिखलावो सो ऐसा सीधा लेख को छोड़ के अपनी प्रतिज्ञा से पतित होके समुच्चय छद्मस्थ नहीं चूकने का प्रश्न करा तो निश्चय हुवा कि तुमलोक दंभयुक्त बातें लिखते नहीं डरते हो परंतु तुम जैनी नाम धारक हो इसलिये ऐसा दंभ करना युक्त नहीं तथापि तुम्हारी मर्जी अब प्रश्न का उत्तर एकाग्र चित्त करके श्रवण करो–

प्रश्न पहिला का उत्तर छद्मस्थ जीव दो प्रकार के हैं एक तो वीतरागी छद्मस्थ. दूसरे सरागी छद्मस्थ, तिसमें वीतरागी छद्मस्थ तो इग्यारमें बारमे गुण स्थान वाले जीव है. और वह छद्मस्थ वीतरागी कोई प्रकार का प्रायश्चित नहीं सेवते हैं तिससे उनका चूकने का तो अभाव है यह कथन सूत्र भगवती जी का शतक २५ मा उद्देशा छठा में है अब रहे सरागी छद्मस्थ. तिनके

तीनभेद, एक तो सराग संयति. यानी सरागी साधु दूसरे संय-
ता संयति. यानी श्रावक. तीसरे असंयति. इनमें से असंयति के
तो व्रत पचक्खाण है ही नहीं. जिससे उनका तो चूकने नहीं
चूकने का कथन ही नहीं. क्योंकि चूकणा नहीं चूकणा तो, व्रत
प्रत्याख्यान वाले को होता है. लोक युक्ति में भी कहते हैं कि
घोड़ा आदि पे चढ़े तो पड़े, परन्तु बिन चढ़े पड़े, क्या. और
जो संयता संयति श्रावक जन हैं. वह अपने नियम यानि व्रत
प्रत्याख्यान जीतने लिये उस व्रतने शुद्ध पाले तो. वह नहीं
चूकते हैं. और जो व्रत को खंडन करेतो चूक भी जावे. और
जो सराग संयमी छद्मस्थ मुनि हैं वह तीन प्रकार के हैं. एक
तो स्थीवरकल्पी. दूसरे जिन कल्पी. तीसरे कल्पातीत जिसमें
स्थिवरकल्पी. और जिनकल्पी मुनि तो. अपने कल्प के माफिक
चलें तो वह नहीं चूकते हैं और कल्प को उल्लंघन करे तो चूक
भी जाते हैं. अब जो सरागी कल्पातीत छद्मस्थ मुनि हैं वह नहीं
चूकते हैं. क्योंकि वह मुनि कषाय कुशील (निर्ग्रंथ) निर्ग्रंथ
होते हैं. और वह मुनि मूल गुण उत्तर गुण में दोष नहीं लगाते
हैं इससे कल्पातीत सरागी मुनि का चूकना भी आगम प्रमाण से
नहीं है यह कथन मूल भगवती का [illegible] का उद्देशा छठे
से है ॥ अब विचारना चाहिये कि कल्पातीत मुनि नहीं चूकते
हैं तो [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

यह हमारा प्रश्न था और तुमने प्रश्न कुछ उलटा ही किया है. और इस प्रश्न में तुम्हारा लिखना है कि असंयती अव्रती अन्य तीर्थी को दान देने में एकांत धर्म कहते हो सो यह तुम्हारा लिखना स्वकपोल कल्पित मनमते का है क्योंकि हमारा असंयति अव्रती का दान देने में एकांत धर्म है ऐसा एकांत मानना हमारा नहीं है जिससे यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा उलटा है अब असंयति अव्रती का दान का कथन जैन सिद्धांत में है जैसा हम दिखलाते हैं.

प्रश्न दूसरा का उत्तर–गृहस्थी असंयती अव्रती अन्यतीर्थी इनको दुखी भुखी देख करुणा भाव से जो कोई दातार दान देवे उसमें एकांत पाप सूत्र में कहांपि नहीं कहा है जिससे इस दान का साधू निषेधना या स्थापना नहीं करते हैं क्योंकि मिश्र पक्ष पुन्य पाप का सद्भाव होने से मुनि को मौन रखणी कही है. और जो इसका दान को निषेध करे तो सूत्र प्रश्न व्याकरण का दूसरा आश्रव द्वार में झुठ बोलने वाला कहा है जिसका सविस्तार कथन प्रश्नोत्तर के तौर से हमने पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है और जो तुम भगवतीजी सूत्र का आठवां शतक का छठा उद्देश का नाम ले के कहते हो कि असंयति अव्रती को दान देने में एकांत पाप है सो सूत्रों से अनभिज्ञपने का है क्योंकि वहां तो अन्यतीर्थियों के गुरु जो कुपंथ उपदेश देके कदाग्रह में डाले उनको मोक्ष के निमित्त गुरुबुद्धि से प्रतिलाभे उनका कथन है परन्तु करुणा करके देने का निषेध या एकांत पाप का कथन सूत्र में नहीं

क में और दुर्बल भिखारी दोनों का आचार में अत्यन्त है पड़िमाधारी तो मोक्ष के निमित्त किया करता है और का आराधिक भी होता है और मंगता को फक्त पेट के लिए प्रलाप करता है. तो इन दोनों का दान एक सरीखा दानी के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं कहे यह तो अजब ला आप तेरेपंथियों के मत की है. कुपात्र वेश्या चोर को ना और पड़िमाधारी श्रावक को देना इन दोनों में एकांत प कहते हो. अब हम पड़िमाधारी श्रावक का दान और दु- ल अभ्यागत का दान का निर्णय सूत्रोक्त उत्तर में दिखलाते हैं सो श्रवण करो.

उत्तर प्रश्न तीसरे का—पडिमाधारी श्रावक को तो श्रीभ- गवान ने साधू सरीखा धर्म पालने वाला कहा है सूत्र दशा श्रुतस्कंध का अध्ययन छठा में सो सूत्र पाठ लिखते हैं.

सूत्र—जे, इमे, समणाणं, निग्गंथाणं, धम्मेपएणत्ते, तं, सम्मं, काएणं, फासेमाणे, पालेमाणे इति सूत्रपाठ ॥

इस मूलपाठ में इग्यारमी पड़िमाधारी श्रावक को साधू समान शुचि पालने वाला कहा है तो अब आप समझ सके हो कि जैसा पात्र को दान देवेगा वैसा देने वाला दाता को फल होवेगा तो साधू सरीखा धर्म पालने वाला पात्र श्रावक को जो दाता प्रासुक एषणीक दान देवेगा तो देने वाले को फल भी साधू सरीखा होवेगा यह तो स्पष्ट सिद्ध है. तो फिर इससे बढ़ के आगम का प्रमाण क्या चाहते हो फिर इसका विशेष अधिकार हमने पहिले भाग में नौमरा [illegible] में लिखा है इसको देख के श्रद्धा शुद्ध करना जो और दुर्बल भिखारी

को देने में तो करुणा दान तीर्थंकर ने सूत्र स्थानांगजी के द-शवें ठाणे में कहा है और करुणा अनुकंपा दान का निषेध कोई भी अरिहंत परमेश्वर ने नहीं करा है ऐसा प्रमाण हमने सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देशा छट्ठा की साक्षी बतलाई है सो पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर में या दूसरा प्रत्युत्तर में देख लेना ॥

प्रश्न--चौथा तेरेपंथियों का। किसी मनुष्य को किसी मनुष्य ने फांसी दी. किसी मनुष्य ने खोल दी. तुम उसमें धर्म कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥

" समीक्षा " यह प्रश्न भी तुमने छल रूप पूछा है. क्योंकि तुम उसमें धर्म कहते हो ऐसा गोलमाल ही लिख दिया है. परन्तु क्या हम धर्म फांसी खोलने वाले को कहते हैं कि देने वाले को हा [illegible] यह छल तो आप लोग खूबही सीखे हो परन्तु हमारा सिद्धांतों की राह से मानना ऐसा है कि कोई दुष्ट पुरुष किसी आदमीको फांसी देवे. और कोई दयावान् पुरुष उसकी फांसी खोल देवे. तो उस खोलने वाले पुरुष को धर्म होवे. परन्तु पाप नहीं. इस का प्रमाण आगम की साक्षी सहित उत्तर नीचे लिखते हैं ॥

प्रश्न-चौथे का उत्तर ॥ सिद्धांत श्री उत्तराध्ययन जी का बाईसवां अध्ययनमें कहा है कि श्री बाईसवां तीर्थंकर नेमीनाथ जी महाराज ने बहुत से पशु जीव को बाड़े व और पींजरे व रुंधे जीवों को देखके दुःखित देखकर उन जीवों का बहार वाली सारथी [illegible] देना जानके इनको बाड़ों व पींजरों से और [illegible] का

जीव छोडने का जीव बचाने का इनाम में अपने आभूखण यानी
गहणे दिये सो सूत्रपाठ लिखते हैं।

सो, कुंडलाण, जुयलं, सुत्तगं, च, महायसो, आभरणा,
णीय, सव्वाणि, साराहिस्स, पणामए ॥ २० ॥

इसका अर्थ पाई टीका दीपिका अवचूरिका के अनुसार
लिखते हैं ॥ वह नेमिकुमार बड़े यश के धारण करने वाले ने-
मिनाथ के अभिप्राय से सम्पूर्ण जीव बंधन से छूट गए तब सं-
पूर्ण आभरण सारथी को देते हुए कौन से वह आभरण हैं.
कुंडलों का जोड़ा, फेर कंडोरा, चकार शब्द से हारादिक जो
सम्पूर्ण अंग उपांग के भूषण हैं वह भी सारथी को देते भए
इति. इनकी मूलपाठ. टीका अवचूरिका दीपिका देखना होवे
तो बहुत विस्तार से हमने पहिले भाग में पंचम प्रश्न का प्रत्यु-
त्तर में कथन किया है वहां से देख लेना. और जो तुम्हारे गुरु
जीतमलजी का बनाया भ्रमविध्वसन में लिखा है कि दीपिका
में जीवों के हितवान् नेमीनाथजी यह कथन नहीं चला है. और
नेमीनाथजी ने जीव नहीं छोड़ाये ऐसा लिखा है. जिसपें हमने
दीपिकादिक का लेख सहित सिद्ध किया है कि श्री नेमीनाथजी
का जीवों पर हित करना और जीवों को छोड़ना मूलसूत्र और
दीपिका टीका अवचूरी से खुलासा किया है. उसको देख के
हे भव्यो ! हृदय के ज्ञान नेत्र खोल के विचार पूर्वक देखना.
और ज्ञान से तोलना कि श्री नेमीनाथजी महाराज ने पशु पक्षी
को छोड़ाने में भी धर्म माना है जिससे पशु पक्षी छोडने का ही
इनाम दिया है. तो फिर सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को फांसी से
बचाने में तो धर्म होता है इसमें संदेह ही क्या है. जिस से हे प्रश्न

करनी जी जगत् दया धर्म से प्रेम लाके तीर्थङ्कर भगवान की प्ररूपणा पर ध्यान दे सत्य बात को धारन करना जी. परन्तु केवल गुरुजी का भ्रम [illegible] कल्पित ग्रंथों की आस्था करके नहीं बैठे रहना. और इस एक साक्षी से अतिरिक्त बहुत सी साक्षी जीव बचाने की विषय की मूलपाठ टीका दीपिकादिक सहित पहिले भाग के पंचम प्रश्न का अनुसार से देखके वीर प्रभु के वचनों की आस्था रखना जी ॥

प्रश्न पंचम तेरह पंथियों का । गायों से भरे हुए बाड़े में किसी दुष्ट ने लाय लगादी किसी ने किवाड़ खोल कर बाहिर निकाल दी. तुम उसमें धर्म कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥

समीक्षा यह प्रश्न भी तुमने छल से किया है. क्योंकि इसमें बाड़े के किवाड़ खोल के गायों को बाहिर निकालने वाले को गाय बचाने का धर्म कहते हैं परन्तु लाय लगाने वाले को धर्म नहीं कहते हैं किन्तु महा पाप कहते हैं. और तुमने गोलमाल ही लिख दिया कि तुम इसमें धर्म कहते हो. ऐसा छल करना तुम लोगों को उचित नहीं था फिर भी इसका उत्तर धरता हूं ।

प्रश्नकर्त्ता का [illegible] ऊपर चौथा प्रश्न का उत्तर में देखें [illegible] पशु [illegible] से नेमिनाथ जी ने छोड़ाये और उन छोड़ने वाले [illegible] का [illegible] किया तथा पाठ और टीका का [illegible] है और भी सूत्र उपासक दशांग में [illegible] है जिसका मूल सूत्र [illegible] और [illegible] भाग में पंचम अनुसार [illegible] मूल पाठ को ध्यान करना ॥

प्रश्न छठा तेरेपंथियों का–असंजती को पोषने में पोषाने में पोषते हुए को भला जानने में धर्म कहते हो सो सूत्र का पाठ दिखलाओ ॥

समीक्षा–इस प्रश्न में तो तुमने सतरमा पाप की जिसका नाम मायामोषा है. उसको अग्रेसर करा है. क्योंकि हमारा तो कहना यह था कि असंयति पोषणिया पंद्रमा कर्मादान कहते हो सो पाठ दिखलावो ॥ और तुमने प्रश्न तो हमारा प्रश्न के अंतर्गत प्रश्न करते हैं ऐसा कहा है. और प्रश्न करा ऐसा कि जिसको हम एकांत कहते भी नहीं है यानी असंयति को पोषणे में एकांत धर्म है. ऐसा एकांत कहना भी हमारा नहीं. तो फिर तुम लोगों ने असंजती को पोषण में धर्म कहते हो ऐसा अच्छता लेख क्योंकर लिख दिया. परन्तु हमने सोच लिया कि हमारे तेरेपंथी भोले मित्र इस लोक परलोक का भय छोड़ के मनमाने जो अडंगा लगा देते हैं परन्तु असंजती का पोषणे का निर्णय श्रवण करो ।

प्रश्न छठे का उत्तर– असंजती को पोषणा दोयप्रकार का है एक तो अपने स्वार्थ के वास्ते. तिससे जो कोई स्वार्थ के वास्ते असंजती जीव को पोषे. उसमें तो धर्म नहीं. परन्तु मोह ममत्वादिक करने से कर्मबंध का कारण है. इसने पाप में है. दूसरा कोई गरीब दुःखी भूखा अभ्यागत को, रोटी आदिक देवे. वह करुणा दान में है जिस का विशेष खुलासा हमने प्रथम भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर में या दूसरा प्रत्युत्तर में बहुत विस्तार पूर्वक कथन करा है. उसको देख के शुद्ध श्रद्धा धारण करना जी ।

प्रश्न सातमां तेरेपंथियों का असंयति का असंयम जीवितव्य

अर्थ–फासुक निरदोप आहार भोगवतो थको साधु आत्म-धर्म नहीं उलंघे आत्मधर्म नहीं उलंघतो थको पृथ्वी काय अपका-य तेउकाय वाउकाय, वनसपति काय त्रसकाय के जीवों का जीना वांछे।

अब विचारिये के छकाया का जीना वंछना कहा तो पृथ्वी आदिक से त्रसतक सर्व जीव संजती तो नहीं है इसलिये असंय-ति का जीना वंछना मूलपाठ में कहा है. अब भी आप लोग नहीं मानोंगे तो मोहनी कर्म का उदय है इति दूसरा भाग संपूर्ण इस पुस्तक में भूल चूक रही हो तो अनंत सिद्ध भगवंत की साख से मिच्छामि दुक्कड़ हैं॥

पाठकों को सूचना।

इस पुस्तक के प्रूफ सुधारने में भूलें रही हो तो पाठकगण क्षमा प्रदान करें और इस पुस्तक को यत्नपूर्वक पढ़ें. दीपक के उजियाले में नपढे।

प्र० कर्ता.

सूचना ।

२२ समुदाय के श्रावकों को सूचना दी जाती है कि हमारे यहां ३२ सूत्र मांहिले सूत्र और पात्रे जो कोई दीक्षा लेने वाला हो उसको बिना मूल्य लिये ही दिये जाते हैं जिस जगह दीक्षा लेने वाला हो और इन चीजों की जरूरत हो तो गांव के अग्रेसर आदमियों के हाथ की चिट्ठी हमको देने से हम भेज देवेंगे सब वार्ता ब्योरेवार लिखें अर्थात् किस साधुजी या महासत्यांजी के पास दीक्षा लेने वाला है तथा कब की दीक्षा है इत्यादि लिखें.

पता—पेमराजजी हजारीमल बांठिया,
मुकाम भीनासर पो. बीकानेर (राजपूताना)

सूचना ।

नीचे लिखी पुस्तक नीचे लिखे पते पर मिलेगी जिसको जरूरत हो मंगा लेवें. बिना मूल्य वितरण होती हैं.

१ गुणविलास २२ समुदाय.
२-सवैया और कुंडलियां कृपारामजी महाराजकृत.
३ सत्य मिथ्यार्थ निर्णय दो भाग श्री रामचन्द्रजी महाराजकृत
४ प्रश्नोत्तर समीक्षा.
५ प्रश्नोत्तर दीपिका श्री जुवारीमलजी महाराज कृत.

पता—कनीराम बांठिया सेक्रेटरी जैन भंडार
मुकाम भीनासर बीकानेर (राजपूताना)

जीव दया का स्तवन ।

दया को पाले है ज्ञानी दया में नहि समझे मानी ॥ टेर ॥
प्रथम श्री ज्ञाता सूत्र माहीं, लगी दव वन में भाई ।
पशु सर्व रहे घबड़ाई, दया दिल हाथी के आई ॥

दोहा–इस करनी परताप से, पायो समकित सार ।
श्रेणिक राजा के घर जाया, श्री श्री मेघकुमार ॥
श्रद्धी है वीर तनी वानी ॥ दया० ॥ १ ॥
दूसरा श्री मेघरथ राया, परेवा सरने में आया ।
बाज लारे से चल धाया, भक्ष मेरा दो महाराया ॥

दो०–मास अपना काट काट के, धरा तराजू मांय ।
देवयोग नहीं उठा पालना, जब शरीरी दिया चढ़ाय ॥
हुए श्री शांतिनाथ दानी ॥ दया० ॥ २ ॥
तीजा श्री नेमिनाथ स्वामी, जान चढ़ आए अंतर्यामी ।
हिंसा बहु पशुओं की जानी, छोड़ाया पशू दया आनी ।

दो०–जियेहेउ पाठ है, सोचो दिल के मांय ।
मनुष्य जमारा पा के, प्यारों दया रक्खो दिल मांय ॥
दया सर्व धर्मों में मानी ॥ दया० ॥ ३ ॥
चौथे धर्मरुची मुनिराया, पारना मास खमण आया ।
नाग श्री तूंबा बेराया, मुनीश्वर परठण सिद्धाया ॥

दो०–एक टोपा नालिया, कीडियां आई असंख ।
निर्बंध कोठा अपना जानके, किया आहार निशंक ॥
पधारे स्वारथ सिध खानी ॥ दया० ॥ ४ ॥
पंचम श्रेणिक नरेसर जाण, किया नही नौकारसी पचखाण।
घजाया अमरपड़ा गुणखान, बांधिया गोत तीर्थंकर पिछान॥

दो०–आवती चौवीसी ने विषय, होसी वीर समान ।
चारोंहि तीर्थ थापके, सिरे पासी मोक्ष सुथान ॥
दया धर्म सब में अगवानी ॥ दया० ॥ ५ ॥
ऐसे बहु हुए है अवतार, जिन्होंने दया को दिल धारे ।
निषेधे दया जो हत्यारे, सहेंगे जमों की मारे ॥

दो०–कर्म छोड़ेंगे नहिं, परखो धर्म सुजान ।
फंनीराम कहे सूत्र देख के, करलो सुगुरु पहिचान ॥
दया से तिरे है बहू प्राणी ॥ दया० ॥ ६ ॥

---:o:---
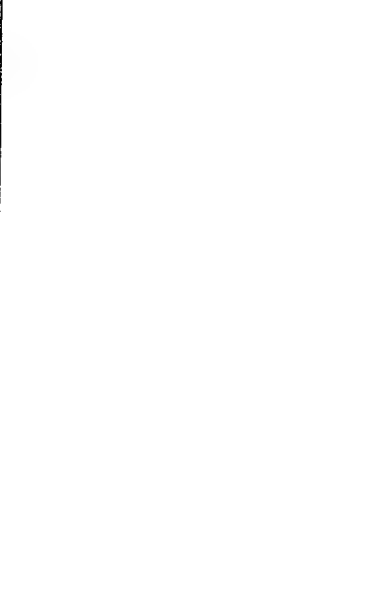
इस पुस्तक का शुद्धाशुद्ध पत्र।

पाठकगणो ! प्रथम निम्नलिखित अशुद्धियों को सुधार
फिर यत्ना से पढ़ें अबकी प्रूफ नहीं शोधने के सबब तथा औ
भी कई कारणों से अशुद्धियां बहुत रहगई तथा पदच्छेदन
बहुत गलतियां रही हैं इस कारण क्षमा करें अबकी दूसर
संस्करण में जहांतक हुवा शुद्धकर छपावेंगे अशुद्धियों को ध्या
नमें न रख विज्ञ पुरुष आशय का ही ग्रहण करें।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७८	४	पदिया	पड़िया
,,	१६	पालक	पालके
,,	२०	थोडे	थोड़े
१७६	१	था, जिससे	था, कि जिससे
,,	२१ के आगे	०	पूर्वपक्ष-इसने आनंदजी के असंयति अविरति सरीन कहां लिखा है
,,	,,	नवप	नवपा
१८०	१७	उगाडी	उगाड़ी
१८१	६	अथर्मी	अधर्मी
,,	१०	मेमार्ग तुम्हारे	सन्मार्ग सरीने तुम्हारे
१८२	५	उपश्रांत	उपशांत
,,	१८	(जैनिरक्क)	जिनरक्ख

२१३	४	जाणते है	भला भी जाणते हो
२१४	८	उलंघ	उलंघ
,,	१७	जेभिगु	जेभिक्खु
,,	२०	वंधतंवासाहज्जेइ	वंधंतंवासाइज्जेइ
,,	,,	जेभिगु	जेभिक्खु
,,	२२	,,	,,
२१५	७	अनुकंपा अर्थ	अनुकंपा का अर्थ
,,	१८	पुजवासपणवा चम-पासपणवा.	पुजवासपणवा कट्टपासपण-वासमपामपणवा
२१६	६	हैं	है
२१७	२	करणा	करुणा
,,	६	अवपत्तसइ	अवपारतइ
,,	१६	कीं	कों
२१८	४	तुम्हार	तुम्हारे
,,	१३	उसकी	उसको
२१९	१	भिक्खु	भिक्खुं
२२०	२१	होनी	होनों
२२३	७	वादिविणी	वादिविणी
,,	१४	लज्जणा	लज्जया
,,	२१	काहण	कारण
२२४	२	सिद्धांत में	सिद्धांत में नहीं कहा है न कहीं प्रायश्चित कहा है और
,,	,,	कानुणय	कानुणया
,,	९	वयण	वयणं

२७६	१०	उद्देश	उपदेश
"	१४	से छोड़ना	से द्वेष छोड़ना
२७८	६	को हो	की हो
"	१७	पाप पाठ	पाठ
२७९	२२	कहायो	कयां
२८०	१६	रत्तण	रक्तण
२८१	६	"	"
"	७	"	"
"	८	"	"
२८२	१२	पावे	पीवे
२८५	१३	दव	दव
२८७	१३	उत्तपत्त	उत्तरपत्त
२९१	१०	होत्था	होत्था
२९८	१	हुवा	हुवा
३०३	९	सुपाड़िया	सुपाडिया
३०७	१०	मिंध्यात्व	मिथ्यात्व
३१०	५	नहीं	नहीं तो
३१७	५	संसपडगे	संसपडगे
"	९	जीव की	जीव का
३२१	८	(माहणे वा.	माहणे वा
३२७	१९	करता	करना
३२९	१३	दुदस्सवा	दुडस्सवा
"	१४	रापंत	रापंते
"	२६	दुर्भिज्ञा	दुर्भिज्ञ

३३०	५	गिण्हइनिगांर्था	गिण्हइनिग्गंथी
३३१	१६	अणुसया	अणुसण
३३२	२३	हृं	हं
३३४	१७	दिंये	दिया
३३५	४	अथ	अर्थ
,,	१६	दैवने	देव ने
३३६	१३	भगनव्रत	भगवव्रत
३३७	२१	पियांजी	पियाजी
३३८	१०	आदिक क	आदिक की
३४४	३	मृत्रपाठ	सूत्रपाठ
३४५	८	प्रत्याय्यान	प्रत्याख्यान
३४८	७	इ	ई
३४६	३	मगना ' ।	मगना तो
३५१	१	आ।नयण	आनयण
३५२	१८	वाद	वाद